जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ।
त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥ २६ ॥
प्रगृह्य सहसा सीतां जगामाशु स राक्षसः ।

'उसने बलपूर्वक सीताको पकड़ लिया, मानो आकाशमें मंगलने रोहिणीपर आक्रमण किया हो। उस समय उनकी रक्षाके लिये आये हुए गृध्रराज जटायुको युद्धमें मारकर वह राक्षस सहसा सीताको साथ ले वहाँसे जल्दी ही चम्पत हो गया ॥ २६½ ॥

ततस्त्वद्भुतसंकाशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ॥ २७ ॥
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २८ ॥

'तदनन्तर एक पर्वत-शिखरपर रहनेवाले पर्वतोंके समान ही अद्भुत एवं विशाल शरीरवाले वानरोंने आश्चर्यचकित हो सीताको लेकर जाते हुए राक्षसराज रावणको देखा ॥ २७-२८ ॥

ततः शीघ्रतरं गत्वा तद् विमानं मनोजवम् ।
आरुह्य सह वैदेह्या पुष्पकं स महाबलः ॥ २९ ॥
प्रविवेश तदा लङ्कां रावणो राक्षसेश्वरः ।

'वह महाबली राक्षसराज रावण बड़ी शीघ्रताके साथ मनके समान वेगशाली पुष्पक विमानके पास जा पहुँचा और सीताके साथ उसपर आरूढ़ हो उसने लङ्कामें प्रवेश किया ॥ २९½ ॥

तां सुवर्णपरिष्कारे शुभे महति वेश्मनि ॥ ३० ॥
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

'वहाँ सुवर्णभूषित विशाल भवनमें मिथिलेशकुमारीको ठहराकर रावण चिकनी-चुपड़ी बातोंसे उन्हें सान्त्वना देने लगा ॥ ३० ½ ॥

तृणवद् भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ॥ ३१ ॥
अचिन्तयन्ती वैदेही ह्यशोकवनिकां गता ।

'अशोकवाटिकामें रहती हुई विदेहनन्दिनीने रावणकी बातोंको तथा स्वयं उस राक्षसराजको भी तिनकेके समान मानकर ठुकरा दिया और कभी उसका चिन्तन नहीं किया ॥ ३१½ ॥

न्यवर्तत तदा रामो मृगं हत्वा तदा वने ॥ ३२ ॥
निवर्तमानः काकुत्स्थो दृष्ट्वा गृध्रं स विव्यथे ।
गृध्रं हतं तदा दृष्ट्वा रामः प्रियतरं पितुः ॥ ३३ ॥

'उधर वनमें श्रीरामचन्द्रजी मृगको मारकर लौटे। लौटते समय जब उन्होंने पितासे भी अधिक प्रिय गृध्रराजको मारा गया देखा, तब उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३२-३३ ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ।
गोदावरीमनुचरन् वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ॥ ३४ ॥

'लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजी विदेहराजकुमारी सीताको खोज करते हुए गोदावरीतटके पुष्पित वनप्रान्तमें विचरने लगे ॥ ३४ ॥

आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ।
ततः कबन्धवचनाद् रामः सत्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥
ऋष्यमूकगिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ।

'खोजते-खोजते वे दोनों भाई उस विशाल वनमें कबन्ध नामक राक्षसके पास जा पहुँचे। तदनन्तर सत्यपराक्रमी रामने कबन्धका उद्धार किया और उसीके कहनेसे वे ऋष्यमूक पर्वतपर जाकर सुग्रीवसे मिले ॥ ३५½ ॥

तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ॥ ३६ ॥
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा ।
इतरेतरसंवादात् प्रगाढः प्रणयस्तयोः ॥ ३७ ॥

'उन दोनोंमें एक-दूसरेके साक्षात्कारसे पहले ही हार्दिक मित्रता हो गयी थी। पूर्वकालमें क्रुद्ध हुए बड़े भाई वालीने सुग्रीवको घरसे निकाल दिया था। श्रीराम और सुग्रीवमें जब परस्पर बातें हुईं, तब उनमें और भी प्रगाढ़ प्रेम हो गया ॥ ३६-३७ ॥

रामः स्वबाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ।
वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ॥ ३८ ॥

'श्रीरामने अपने बाहुबलसे समराङ्गणमें महाकाय, महाबली वालीका वध करके सुग्रीवको उनका राज्य दिला दिया ॥ ३८ ॥

सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ।
रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्यास्तु मार्गणम् ॥ ३९ ॥

'श्रीरामने समस्त वानरोंसहित सुग्रीवको अपने राज्यपर स्थापित कर दिया और सुग्रीवने श्रीरामके समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं राजकुमारी सीताकी खोज करूँगा ॥ ३९ ॥

आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ।
दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ॥ ४० ॥

'तदनुसार महात्मा वानरराज सुग्रीवने दस करोड़ वानरोंको सीताका पता लगानेकी आज्ञा देकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भेजा ॥ ४० ॥

तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत ॥ ४१ ॥

'उन्हीं वानरोंमें हमलोग भी थे। गिरिराज विन्ध्यकी गुफामें प्रवेश कर जानेके कारण हमारे लौटनेका नियत समय बीत गया। हमने बहुत विलम्ब कर दिया। हमारे अत्यन्त शोकमें पड़े-पड़े दीर्घकाल व्यतीत हो गया ॥ ४१ ॥

भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान् ।
समाख्याति स्म वसतीं सीतां रावणमन्दिरे ॥ ४२ ॥

'तदनन्तर गृध्रराज जटायुके एक पराक्रमी भाई मिल गये, जिनका नाम था सम्पाति। उन्होंने हमें बताया कि सीता लङ्कामें रावणके भवनमें निवास करती है ॥ ४२ ॥

सोऽहं दुःखपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ।
आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ।
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ॥ ४३ ॥

'तब दुःखमें डूबे हुए अपने भाई-बन्धुओंके कष्टका निवारण करनेके लिये मैं अपने बल-पराक्रमका सहारा ले सौ योजन समुद्रको लाँघ गया और लङ्कामें अशोकवाटिकाके भीतर अकेली बैठी हुई सीतासे मिला ॥ ४३ ॥

कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम्।
तया समेत्य विधिवत् पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥ ४४ ॥
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाङ्कुलीयकम्।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥ ४५ ॥

'वे एक रेशमी साड़ी पहने हुए थीं। शरीरसे मलिन और आनन्दशून्य जान पड़ती थीं तथा पातिव्रत्यके पालनमें दृढ़तापूर्वक लगी थीं। उनसे मिलकर मैंने उन सती-साध्वी देवीसे विधिपूर्वक सारा समाचार पूछा और पहचानके लिये श्रीरामनामसे अङ्कित अँगूठी उन्हें दे दी। साथ ही उनकी ओरसे पहचानके तौरपर चूड़ामणि लेकर मैं कृतकृत्य होकर लौट आया ॥ ४४-४५ ॥

मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ॥ ४६ ॥

'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामके पास पुनः लौटकर मैंने वह तेजस्वी महामणि पहचानके रूपमें उन्हें दे दी ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशंसे च जीवितम्।
जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वामृतमिवातुरः ॥ ४७ ॥

'जैसे मृत्युके निकट पहुँचा हुआ रोगी अमृत पीकर पुनः जी उठता है, उसी प्रकार सीताके वियोगमें मरणासन्न हुए श्रीरामने उनका शुभ समाचार पाकर जीवित रहनेकी आशा की ॥ ४७ ॥

उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे लङ्कावधे मनः।
जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वाँल्लोकान् विभावसुः ॥ ४८ ॥

'फिर जैसे प्रलयकालमें संवर्तक नामक अग्निदेव सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत हो जाते हैं, उसी प्रकार सेनाको प्रोत्साहन देते हुए श्रीरामने लङ्कापुरीको नष्ट कर डालनेका विचार किया ॥ ४८ ॥

ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत्।
अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥ ४९ ॥

'इसके बाद समुद्रतटपर आकर श्रीरामने नल नामक वानरसे समुद्रपर पुल बँधवाया और उस पुलसे वानरवीरोंकी सारी सेना सागरके पार जा पहुँची ॥ ४९ ॥

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५० ॥

'वहाँ युद्धमें नीलने प्रहस्तको, लक्ष्मणने रावणपुत्र इन्द्रजित्‌को तथा साक्षात् रघुकुलनन्दन श्रीरामने कुम्भकर्ण एवं रावणको मार डाला ॥ ५० ॥

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च।
महेश्वरस्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥ ५१ ॥

'तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण, महादेवजी, ब्रह्माजी तथा महाराज दशरथसे मिले ॥ ५१ ॥

तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतैः।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परंतपः ॥ ५२ ॥

'वहाँ पधारे हुए ऋषियों तथा देवर्षियोंने शत्रुसंतापी श्रीमान् रघुवीरको वरदान दिया। उनसे श्रीरामने वर प्राप्त किया ॥ ५२ ॥

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतैः।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥ ५३ ॥

'वर पाकर प्रसन्नतासे भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके साथ पुष्पकविमानद्वारा किष्किन्धा आये ॥ ५३ ॥

तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥ ५४ ॥

'वहाँसे फिर गङ्गातटपर आकर प्रयागमें भरद्वाजमुनिके समीप वे ठहरे हुए हैं। कल पुष्य नक्षत्रके योगमें आप बिना किसी विघ्न-बाधाके श्रीरामका दर्शन करेंगे' ॥ ५४ ॥

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो
निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीके मधुर वाक्योंद्वारा सारी बातें सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर मनको हर्ष प्रदान करनेवाली वाणीमें बोले—'आज चिरकालके बाद मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ' ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे षड्विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः

अयोध्यामें श्रीरामके स्वागतकी तैयारी, भरतके साथ सबका श्रीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, श्रीरामका आगमन, भरत आदिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पकविमानको कुबेरके पास भेजना

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा॥ १॥

यह परमानन्दमय समाचार सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सत्यपराक्रमी भरतने शत्रुघ्नको हर्षपूर्वक आज्ञा दी—॥ १॥

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः॥ २॥

'शुद्धाचारी पुरुष कुलदेवताओंका तथा नगरके सभी देवस्थानोंका गाजे-बाजेके साथ सुगन्धित पुष्पोंद्वारा पूजन करें॥ २॥

सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा।
सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चैव सर्वशः॥ ३॥
राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः॥ ४॥
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम्।

'स्तुति और पुराणोंके जानकार सूत, समस्त वैतालिक (भाँट), बाजे बजानेमें कुशल सब लोग, सभी गणिकाएँ, राजरानियाँ, मन्त्रीगण, सेनाएँ, सैनिकोंकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा व्यवसायी-संघके मुखियालोग श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रका दर्शन करनेके लिये नगरसे बाहर चलें'॥ ३-४½॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा॥ ५॥
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः।
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च॥ ६॥

भरतजीकी यह बात सुनकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले शत्रुघ्नने कई हजार मजदूरोंकी अलग-अलग टोलियाँ बनाकर उन्हें आज्ञा दी—'तुमलोग ऊँची-नीची भूमियोंको समतल बना दो॥ ५-६॥

स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम्।
सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा॥ ७॥

'अयोध्यासे नन्दिग्रामतकका मार्ग साफ कर दो, आसपासकी सारी भूमिपर बर्फकी तरह ठंडे जलका छिड़काव कर दो॥ ७॥

ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः।
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे॥ ८॥

'तत्पश्चात् दूसरे लोग रास्तेमें सब ओर लावा और फूल बिखेर दें। इस श्रेष्ठ नगरकी सड़कोंके अगल-बगलमें ऊँची पताकाएँ फहरा दी जायँ॥ ८॥

शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति।
स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पञ्चवर्णकैः॥ ९॥

'कल सूर्योदयतक लोग नगरके सब मकानोंको सुनहरी पुष्पमालाओं, घनीभूत फूलोंके मोटे गजरों, सूतके बन्धनसे रहित कमल आदिके पुष्पों तथा पञ्चरंगे अलङ्कारोंसे सजा दें॥ ९॥

राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः।
ततस्तच्छासनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विताः॥ १०॥

'राजमार्गपर अधिक भीड़ न हो, इसकी व्यवस्थाके लिये सैकड़ों मनुष्य सब ओर लग जायँ।' शत्रुघ्नका वह आदेश सुनकर सब लोग बड़ी प्रसन्नताके साथ उसके पालनमें लग गये॥ १०॥

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः।
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः॥ ११॥
मत्तैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः।

धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र—ये आठों मन्त्री ध्वजा और आभूषणोंसे विभूषित मतवाले हाथियोंपर चढ़कर चले॥ ११½॥

अपरे हेमकक्षाभिः सगजाभिः करेणुभिः॥ १२॥
निर्ययुस्तुरगाक्रान्ता रथैश्च सुमहारथाः।

दूसरे बहुत-से महारथी वीर सुनहरे रस्सोंसे कसी हुई हथिनियों, हाथियों, घोड़ों और रथोंपर सवार होकर निकले॥ १२½॥

शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम्॥ १३॥
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यतरान्वितैः।
पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः॥ १४॥

ध्वजा-पताकाओंसे विभूषित हजारों अच्छे-अच्छे घोड़ों और घुड़सवारों तथा हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और पाश धारण करनेवाले सहस्रों पैदल योद्धाओंसे घिरे हुए वीर पुरुष श्रीरामकी अगवानीके लिये गये॥ १३-१४॥

ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः॥ १५॥
कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन्॥ १६॥

तदनन्तर राजा दशरथकी सभी रानियाँ सवारियोंपर चढ़कर कौसल्या और सुमित्राको आगे करके निकलीं तथा कैकेयीसहित सब-की-सब नन्दिग्राममें आ पहुँचीं॥ १५-१६॥

द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः॥ १७॥
शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिनन्दितः।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः॥ १८॥

धर्मात्मा एवं धर्मज्ञ भरत मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों, व्यवसायी वर्गके प्रधानों, वैश्यों तथा हाथोंमें माला और मिठाई लिये मन्त्रियोंसे घिरकर अपने बड़े भाईकी चरणपादुकाओंको सिरपर धारण किये शङ्खों और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ चले। उस समय बन्दीजन उनका अभिनन्दन कर रहे थे॥ १७-१८॥

पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम्।
शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते॥ १९॥

श्वेत मालाओंसे सुशोभित सफेद रंगका छत्र तथा राजाओंके योग्य सोनेसे मढ़े हुए दो श्वेत चँवर भी उन्होंने अपने साथ ले रखे थे॥ १९॥

उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः।
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः॥ २०॥

भरतजी उपवासके कारण दीन और दुर्बल हो रहे थे। वे चीर वस्त्र और कृष्णमृगचर्म धारण किये थे। भाईका आगमन सुनकर पहले-पहल उन्हें महान् हर्ष हुआ था॥ २०॥

प्रत्युद्ययौ यदा रामं महात्मा सचिवैः सह।
अश्वानां खुरशब्दैश्च रथनेमिस्वनेन च॥ २१॥
शङ्खदुन्दुभिनादेन संचचालेव मेदिनी।
गजानां बृंहितैश्चापि शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः॥ २२॥

महात्मा भरत उस समय श्रीरामको अगवानीके लिये आगे बढ़े। घोड़ोंकी टापों, रथके पहियोंकी नेमियों और शङ्खों एवं दुन्दुभियोंके गम्भीर नादोंसे सारी पृथ्वी हिलती-सी जान पड़ती थी। शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनियोंसे मिले हुए हाथियोंके गर्जन-शब्द भी भूतलको कम्पित-सा किये देते थे॥ २१-२२॥

कृत्स्नं तु नगरं तत् तु नन्दिग्राममुपागमत्।
समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम्॥ २३॥

भरतजीने जब देखा कि अयोध्यापुरीके सभी नागरिक नन्दिग्राममें आ गये हैं, तब उन्होंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीसे कहा—॥ २३॥

कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता।
नहि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परंतपम्॥ २४॥
कच्चिन्न चानुदृश्यन्ते कपयः कामरूपिणः।

'वानर-वीर! वानरोंका चित्त स्वभावतः चञ्चल होता है। कहीं आपने भी उसी गुणका सेवन तो नहीं किया है—श्रीरामके आगेकी झूठी ही खबर तो नहीं उड़ा दी है; क्योंकि मुझे अभीतक शत्रुओंको संताप देनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण आर्य श्रीरामके दर्शन नहीं हो रहे हैं तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं?'॥ २४½॥

अथैवमुक्ते वचने हनूमानिदमब्रवीत्॥ २५॥
अर्थ्यं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम्।

भरतजीके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जीने सार्थक एवं सत्य बात बतानेके लिये उन सत्यपराक्रमी भरतजीसे कहा—॥ २५½॥

सदाफलान् कुसुमितान् वृक्षान् प्राप्य मधुस्रवान्॥ २६॥
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान्।

'मुनिवर भरद्वाजजीकी कृपासे रास्तेके सभी वृक्ष सदा फूलने-फलनेवाले हो गये हैं और उनसे मधुकी धाराएँ गिरती हैं। उन वृक्षोंपर मतवाले भ्रमर निरन्तर गूँजते रहते हैं। उन्हें पाकर वानरलोग अपनी भूख-प्यास मिटाने लगे हैं॥ २६½॥

तस्य चैव वरो दत्तो वासवेन परंतप॥ २७॥
ससैन्यस्य तदातिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम्।

'परंतप! देवराज इन्द्रने भी श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा ही वरदान दिया था। अतएव भरद्वाजजीने सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका सर्वगुणसम्पन्न—साङ्गोपाङ्ग आतिथ्य-सत्कार किया है॥ २७½॥

निःस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम्॥ २८॥
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम्।

'किंतु देखिये, अब हर्षसे भरे हुए वानरोंका भयंकर कोलाहल सुनायी देता है। मालूम होता है इस समय वानरसेना गोमतीको पार कर रही है॥ २८½॥

रजोवर्षं समुद्धूतं पश्य सालवनं प्रति॥ २९॥
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवंगमाः।

'उधर सालवनकी ओर देखिये, कैसी धूलकी वर्षा हो रही है? मैं समझता हूँ वानरलोग रमणीय सालवनको आन्दोलित कर रहे हैं॥ २९½॥

तदेतद् दृश्यते दूराद् विमानं चन्द्रसंनिभम्॥ ३०॥
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम्।
रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना॥ ३१॥

'लीजिये, यह रहा पुष्पक विमान, जो दूरसे चन्द्रमाके समान दिखायी देता है। इस दिव्य पुष्पक-विमानको विश्वकर्माने अपने मनके संकल्पसे ही रचा था। महात्मा श्रीरामने रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर इसे प्राप्त किया है॥ ३०-३१॥

तरुणादित्यसंकाशं विमानं रामवाहनम्।
धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतन्मनोजवम्॥ ३२॥

'श्रीरामका वाहन बना हुआ यह विमान प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है। इसका वेग मनके समान है। यह दिव्य विमान ब्रह्माजीकी कृपासे कुबेरको प्राप्त हुआ था॥ ३२॥

एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ॥ ३३ ॥

'इसीमें विदेहराजकुमारी सीताके साथ वे दोनों रघुवंशी वीर बन्धु बैठे हैं और इसीमें महातेजस्वी सुग्रीव तथा राक्षस विभीषण भी विराजमान हैं' ॥ ३३ ॥

ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥

हनुमान्‌जीके इतना कहते ही स्त्रियों, बालकों, नौजवानों और बूढ़ों—सभी पुरवासियोंके मुखसे यह वाणी फूट पड़ी—'अहो! ये श्रीरामचन्द्रजी आ रहे हैं।' उन नागरिकोंका वह हर्षनाद स्वर्गलोकतक गूँज उठा ॥ ३४ ॥

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥ ३५ ॥

सब लोग हाथी, घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े तथा पृथ्वीपर खड़े हो विमानपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजीका उसी तरह दर्शन करने लगे, जैसे लोग आकाशमें प्रकाशित होनेवाले चन्द्रदेवका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ।
यथार्थेनार्घ्यपाद्याद्यैस्ततो राममपूजयत् ॥ ३६ ॥

भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि लगाये हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका शरीर हर्षसे पुलकित था। उन्होंने दूरसे ही अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा श्रीरामका विधिवत् पूजन किया ॥ ३६ ॥

मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः ।
रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवामरः ॥ ३७ ॥

विश्वकर्माद्वारा मनसे रचे गये उस विमानपर बैठे हुए विशाल नेत्रोंवाले भगवान् श्रीराम वज्रधारी देवराज इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ ३८ ॥

विमानके ऊपरी भागमें बैठे हुए भाई श्रीरामपर दृष्टि पड़ते ही भरतने विनीतभावसे उन्हें उसी तरह प्रणाम किया, जैसे मेरुके शिखरपर उदित सूर्यदेवको द्विजलोग नमस्कार करते हैं ॥ ३८ ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥ ३९ ॥

इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर वह महान् वेगशाली हंसयुक्त उत्तम विमान पृथ्वीपर उतर आया ॥ ३९ ॥

आरोपितो विमानं तद् भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीरामने सत्यपराक्रमी भरतजीको विमानपर चढ़ा लिया और उन्होंने श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचकर आनन्दविभोर हो पुनः उनके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४० ॥

तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥ ४१ ॥

दीर्घकालके पश्चात् दृष्टिपथमें आये हुए भरतको उठाकर श्रीरघुनाथजीने अपनी गोदमें बिठा लिया और बड़े हर्षके साथ उन्हें हृदयसे लगाया ॥ ४१ ॥

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः ।
अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतने लक्ष्मणसे मिलकर—उनका प्रणाम ग्रहण करके विदेह-राजकुमारी सीताको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया और अपना नाम भी बताया ॥ ४२ ॥

सुग्रीवं केकयीपुत्रो जाम्बवन्तमथाङ्गदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥ ४३ ॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥ ४४ ॥

इसके बाद कैकेयीकुमार भरतने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ और पनसका पूर्णरूपसे आलिङ्गन किया ॥ ४३-४४ ॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥ ४५ ॥

वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर मानवरूप धारण करके भरतजीसे मिले और उन सबने महान् हर्षसे उल्लसित होकर उस समय भरतजीका कुशल-समाचार पूछा ॥ ४५ ॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ ४६ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी राजकुमार भरतने वानरराज सुग्रीवको हृदयसे लगाकर उनसे कहा— ॥ ४६ ॥

त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥ ४७ ॥

'सुग्रीव! तुम हम चारोंके पाँचवें भाई हो; क्योंकि स्नेहपूर्वक उपकार करनेसे ही कोई भी मित्र होता है (और मित्र अपना भाई ही होता है)। अपकार करना ही शत्रुका लक्षण है' ॥ ४७ ॥

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद भरतने विभीषणको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—'राक्षसराज! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी सहायता पाकर श्रीरघुनाथजीने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा किया है' ॥ ४८ ॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम्।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत्॥ ४९॥

इसी समय वीर शत्रुघ्नने भी श्रीराम और लक्ष्मणको प्रणाम करके सीताजीके चरणोंमें विनयपूर्वक मस्तक झुकाया॥ ४९॥

रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम्।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन्॥ ५०॥

माता कौसल्या शोकके कारण अत्यन्त दुर्बल और कान्तिहीन हो गयी थीं। उनके पास पहुँचकर श्रीरामने प्रणत हो उनके दोनों पैर पकड़ लिये और माताके मनको अत्यन्त हर्ष प्रदान किया॥ ५०॥

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम्।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत्॥ ५१॥

फिर सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयीको प्रणाम करके उन्होंने सम्पूर्ण माताओंका अभिवादन किया, इसके बाद वे राजपुरोहित वसिष्ठजीके पास आये॥ ५१॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन्॥ ५२॥

उस समय अयोध्याके समस्त नागरिक हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीसे एक साथ बोल उठे—'माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीराम! आपका स्वागत है, स्वागत है'॥ ५२॥

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः।
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः॥ ५३॥

भरतके बड़े भाई श्रीरामने देखा, खिले हुए कमलोंके समान नागरिकोंकी सहस्रों अञ्जलियाँ उनकी ओर उठी हुई हैं॥ ५३॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्॥ ५४॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः।

तदनन्तर धर्मज्ञ भरतने स्वयं ही श्रीरामकी वे चरण-पादुकाएँ लेकर उन महाराजके चरणोंमें पहना दीं और हाथ जोड़कर उस समय उनसे कहा—॥ ५४½॥

एतत् ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥ ५५॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः।
यत् त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥ ५६॥

'प्रभो! मेरे पास धरोहरके रूपमें रखा हुआ आपका यह सारा राज्य आज मैंने आपके श्रीचरणोंमें लौटा दिया। आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जो अयोध्यानरेश आप श्रीरामको पुनः अयोध्यामें लौटा हुआ देख रहा हूँ॥ ५५-५६॥

अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम्।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया॥ ५७॥

'आप राज्यका खजाना, कोठार, घर और सेना सब देख लें। आपके प्रतापसे ये सारी वस्तुएँ पहलेसे दसगुनी हो गयी हैं'॥ ५७॥

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम्।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः॥ ५८॥

भ्रातृवत्सल भरतको इस प्रकार कहते देख समस्त वानर तथा राक्षसराज विभीषण नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ ५८॥

ततः प्रहर्षाद् भरतमङ्कमारोप्य राघवः।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम्॥ ५९॥

इसके पश्चात् श्रीरघुनाथजी भरतको बड़े हर्ष और स्नेहके साथ गोदमें बैठाकर विमानके द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रमपर गये॥ ५९॥

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले॥ ६०॥

भरतके आश्रममें पहुँचकर सेनासहित श्रीरघुनाथजी विमानसे उतरकर भूतलपर खड़े हो गये॥ ६०॥

अब्रवीत् तु तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम्।
वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम्॥ ६१॥

उस समय श्रीरामने उस उत्तम विमानसे कहा—'विमानराज! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, अब तुम यहाँसे देवप्रवर कुबेरके ही पास चले जाओ और उन्हींकी सवारीमें रहो'॥ ६१॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम्।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम्॥ ६२॥

श्रीरामकी आज्ञा पाकर वह परम उत्तम विमान उत्तर दिशाको लक्ष्य करके कुबेरके स्थानपर चला गया॥ ६२॥

विमानं पुष्पकं दिव्यं संगृहीतं तु रक्षसा।
अगमद् धनदं वेगाद् रामवाक्यप्रचोदितम्॥ ६३॥

राक्षस रावणने जिस दिव्य पुष्पक विमानपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था, वही अब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे प्रेरित हो वेगपूर्वक कुबेरकी सेवामें चला गया॥ ६३॥

पुरोहितस्यात्मसखस्य राघवो
बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे
सहैव तेनोपविवेश वीर्यवान्॥ ६४॥

तत्पश्चात् पराक्रमी श्रीरघुनाथजीने अपने सखा पुरोहित वसिष्ठपुत्र सुयज्ञके (अथवा अपने परम सहायक पुरोहित वसिष्ठजीके) उसी प्रकार चरण छुए, जैसे देवराज इन्द्र बृहस्पतिजीके चरणोंका स्पर्श करते हैं। फिर उन्हें एक सुन्दर पृथक् आसनपर विराजमान करके उनके साथ ही दूसरे आसनपर वे स्वयं भी बैठे॥ ६४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डे सप्तविंशत्यधिकशततमः सर्गः॥ १२७॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः

भरतका श्रीरामको राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगरयात्रा, राज्याभिषेक, वानरोंकी विदाई तथा ग्रन्थका माहात्म्य

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम्॥ १॥

तत्पश्चात् कैकेयीनन्दन भरतने मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी श्रीरामसे कहा— ॥ १॥

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम॥ २॥

'आपने मेरी माताका सम्मान किया और यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया, उसी तरह मैं अब फिर आपको वापस दे रहा हूँ॥ २॥

धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण बलीयसा।
किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे॥ ३॥

'अत्यन्त बलवान् बैल जिस बोझको अकेला उठाता है, उसे बछड़ा नहीं उठा सकता; उसी तरह मैं भी इस भारी भारको उठानेमें असमर्थ हूँ॥ ३॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन्।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम्॥ ४॥

'जैसे जलके महान् वेगसे टूटे या फटे हुए बाँधको, जब कि उससे जलका प्रखर प्रवाह बह रहा हो, बाँधना अत्यन्त कठिन होता है, उसी प्रकार राज्यके खुले हुए छिद्रको ढक पाना मैं अपने लिये असम्भव मानता हूँ॥ ४॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिंदम॥ ५॥

'शत्रुदमन वीर! जैसे गदहा घोड़ेकी और कौवा हंसकी गतिका अनुसरण नहीं कर सकता, इसी तरह मैं आपके मार्गका—रक्षणीय-रक्षणरूपी कौशलका अनुकरण नहीं कर सकता॥ ५॥

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने।
महानपि दुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान्॥ ६॥
शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन्।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोपितः॥ ७॥
एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि।
यद्यस्मान् मनुजेन्द्र त्वं भर्ता भृत्यान् न शाधि हि॥ ८॥

'महाबाहो! नरेन्द्र! जैसे घरके भीतरके बगीचेमें एक वृक्ष लगाया गया। वह जमा और जमकर बहुत बड़ा हो गया। इतना बड़ा कि उसपर चढ़ना कठिन हो रहा था। उसका तना बहुत बड़ा और मोटा था तथा उसमें बहुत-सी शाखाएँ थीं। उस वृक्षमें फूल लगे; किंतु वह अपने फल नहीं दिखा सका था। इसी दशामें टूटकर धराशायी हो गया। लगानेवालेने जिन फलोंके उद्देश्यसे उस वृक्षको लगाया था, उनका अनुभव वे नहीं कर सके। यही उपमा उस राजाके लिये भी हो सकती है, जिसे प्रजाने अपनी रक्षाके लिये पाल-पोसकर बड़ा किया और बड़े होनेपर वह उनकी रक्षासे मुँह मोड़ने लगे। इस कथनके तात्पर्यको आप समझें। यदि भर्ता होकर भी आप हम भृत्योंका भरण-पोषण नहीं करेंगे तो आप भी उस निष्फल वृक्षके समान ही समझे जायँगे॥ ६—८॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम्॥ ९॥

'रघुनन्दन! अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत्के सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें। मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति आपका तेज और प्रताप बढ़ता रहे॥ ९॥

तूर्यसंघातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिःस्वनैः।
मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व शेष्व च॥ १०॥

'आप विविध वाद्योंकी मधुर ध्वनि, काञ्ची तथा नूपुरोंकी झनकार और गीतके मनोहर शब्द सुनकर सोयें और जागें॥ १०॥

यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुंधरा।
तावत् त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय॥ ११॥

'जबतक नक्षत्रमण्डल घूमता है और जबतक यह पृथ्वी स्थित है तबतक आप इस संसारके स्वामी बने रहें'॥ ११॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे॥ १२॥

भरतकी यह बात सुनकर शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले भगवान् श्रीरामने 'तथास्तु' कहकर उसे मान लिया और वे एक सुन्दर आसनपर विराजमान हुए॥ १२॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन्॥ १३॥

फिर शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे निपुण नाई बुलाये गये, जिनके हाथ हलके और तेज चलनेवाले थे। उन सबने श्रीरघुनाथजीको घेर लिया॥ १३॥

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे॥ १४॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन्॥ १५॥

पहले भरतने स्नान किया फिर महाबली लक्ष्मणने। तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणने भी स्नान किया। तदनन्तर जटाका शोधन करके श्रीरामने स्नान किया, फिर विचित्र पुष्पमाला, सुन्दर अनुलेपन और बहुमूल्य पीताम्बर धारण करके आभूषणोंकी शोभासे प्रकाशित होते हुए वे सिंहासनपर विराजमान हुए॥ १४-१५॥

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान्।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः॥ १६॥

इक्ष्वाकुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले शोभाशाली, पराक्रमी वीर शत्रुघ्नने श्रीराम और लक्ष्मणको शृङ्गार धारण कराया॥ १६॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्॥ १७॥

उस समय राजा दशरथकी सभी मनस्विनी रानियोंने स्वयं अपने हाथोंसे सीताजीका मनोहर शृङ्गार किया॥ १७॥

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला॥ १८॥

पुत्रवत्सला कौसल्याने अत्यन्त हर्ष और उत्साहके साथ बड़े यत्नसे समस्त वानरपत्नियोंका सुन्दर शृङ्गार किया॥ १८॥

ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः।
योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम्॥ १९॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नजीकी आज्ञासे सारथि सुमन्त्रजी एक सर्वाङ्गसुन्दर रथ जोतकर ले आये॥ १९॥

अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम्।
आरुरोह महाबाहू रामः परपुरंजयः॥ २०॥

अग्नि और सूर्यके समान देदीप्यमान उस दिव्य रथको खड़ा देख शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले महाबाहु श्रीराम उसपर आरूढ़ हुए॥ २०॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ॥ २१॥

सुग्रीव और हनुमान्‌जी दोनों देवराज इन्द्रके समान कान्तिमान् थे। दोनोंके कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभा पा रहे थे। वे दोनों ही स्नान करके दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित हो नगरकी ओर चले॥ २१॥

सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः॥ २२॥

सुग्रीवकी पत्नियाँ और सीताजी समस्त आभूषणोंसे विभूषित और सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत हो नगर देखनेकी उत्सुकता मनमें लिये सवारियोंपर चलीं॥ २२॥

अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत्॥ २३॥

अयोध्यामें राजा दशरथके मन्त्री पुरोहित वसिष्ठजीको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषयमें आवश्यक विचार करने लगे॥ २३॥

अशोको विजयश्चैव सिद्धार्थश्च समाहिताः।
मन्त्रयन् रामवृद्ध्यर्थमृद्ध्यर्थं नगरस्य च॥ २४॥

अशोक, विजय और सिद्धार्थ—ये तीनों मन्त्री एकाग्रचित्त हो श्रीरामचन्द्रजीके अभ्युदय तथा नगरकी समृद्धिके लिये परस्पर मन्त्रणा करने लगे॥ २४॥

सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद् यन्मङ्गलपूर्वकम्॥ २५॥

उन्होंने सेवकोंसे कहा—'विजयके योग्य जो महात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं, उनके अभिषेकके लिये जो-जो आवश्यक कार्य करना है, वह सब मङ्गलपूर्वक तुम सब लोग करो'॥ २५॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे संदिश्य च पुरोहितः।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः॥ २६॥

इस प्रकार आदेश देकर वे मन्त्री और पुरोहितजी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये तत्काल नगरसे बाहर निकले॥ २६॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम्॥ २७॥

जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हरे रंगके घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार निष्पाप श्रीराम एक श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो अपने उत्तम नगरकी ओर चले॥ २७॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा॥ २८॥

उस समय भरतने सारथि बनकर घोड़ोंकी बागडोर अपने हाथमें ले रखी थी। शत्रुघ्नने छत्र लगा रखा था और लक्ष्मण उस समय श्रीरामचन्द्रजीके मस्तकपर चँवर डुला रहे थे॥ २८॥

श्वेतं च बालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः।
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः॥ २९॥

एक ओर लक्ष्मण थे और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण खड़े थे। उन्होंने चन्द्रमाके समान कान्तिमान् दूसरा श्वेत चँवर हाथमें ले रखा था॥ २९॥

ऋषिसङ्घैस्तदाऽऽकाशे देवैश्च समरुद्गणैः।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः॥ ३०॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए ऋषियों तथा मरुद्गणोंसहित देवताओंके समुदाय श्रीरामचन्द्रजीके स्तवनकी मधुर ध्वनि सुन रहे थे॥ ३०॥

ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम्।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः॥ ३१॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव शत्रुञ्जय नामक पर्वताकार गजराजपर आरूढ़ हुए॥ ३१॥

नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः॥ ३२॥

वानरलोग नौ हजार हाथियोंपर चढ़कर यात्रा कर रहे थे। वे उस समय मानवरूप धारण किये हुए थे और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे॥ ३२॥

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥

पुरुषसिंह श्रीराम शङ्खध्वनि तथा दुन्दुभियोंके गम्भीर नादके साथ प्रासादमालाओंसे अलंकृत अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ ३३ ॥

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ ३४ ॥

अयोध्यावासियोंने अतिरथी श्रीरघुनाथजीको रथपर बैठकर आते देखा । उनका श्रीविग्रह दिव्यकान्तिसे प्रकाशित हो रहा था और उनके आगे-आगे अग्रगामी सैनिकोंका जत्था चल रहा था ॥ ३४ ॥

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥ ३५ ॥

उन सबने आगे बढ़कर श्रीरघुनाथजीको बधाई दी और श्रीरामने भी बदलेमें उनका अभिनन्दन किया । फिर वे सब पुरवासी भाइयोंसे घिरे हुए महात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ३५ ॥

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३६ ॥

जैसे नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाजनोंसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अपनी दिव्यकान्तिसे उद्भासित हो रहे थे ॥ ३६ ॥

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययौ ॥ ३७ ॥

सबसे आगे बाजेवाले थे । वे आनन्दमग्न हो तुरही, करताल और स्वस्तिक बजाते तथा माङ्गलिक गीत गाते थे । उन सबके साथ श्रीरामचन्द्रजी नगरकी ओर बढ़ने लगे ॥ ३७ ॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्याः सहद्विजाः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ ३८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके आगे अक्षत और सुवर्णसे युक्त पात्र, गौ, ब्राह्मण, कन्याएँ तथा हाथमें मिठाई लिये अनेकानेक मनुष्य चल रहे थे ॥ ३८ ॥

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत् कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ ३९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने मन्त्रियोंको सुग्रीवकी मित्रता, हनुमान्‌जीके प्रभाव तथा अन्य वानरोंके अद्भुत पराक्रमकी चर्चा करते जा रहे थे ॥ ३९ ॥

श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ।
वानराणां च तत् कर्म राक्षसानां च तद् बलम् ।
विभीषणस्य संयोगमाचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥ ४० ॥

वानरोंके पुरुषार्थ और राक्षसोंके बलकी बातें सुनकर अयोध्यावासियोंको बड़ा विस्मय हुआ । श्रीरामने विभीषणसे मिलनका प्रसंग भी अपने मन्त्रियोंसे बताया ॥ ४० ॥

द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंयुतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥ ४१ ॥

यह सब बताकर वानरोंसहित तेजस्वी श्रीरामने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ततो ह्यध्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे ।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ ४२ ॥

इस समय पुरवासियोंने अपने-अपने घरपर लगी हुई पताकाएँ ऊँची कर दीं । फिर श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके उपयोगमें आये हुए पिताके रमणीय भवनमें गये ॥ ४२ ॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥ ४३ ॥
पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवाद्य च ॥ ४४ ॥

उस समय रघुकुलनन्दन राजकुमार श्रीरामने महात्मा पिताजीके भवनमें प्रवेश करके माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरतसे अर्थयुक्त मधुर वाणीमें कहा— ॥ ४३-४४ ॥

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥ ४५ ॥

'भरत ! मेरा जो अशोकवाटिकासे घिरा हुआ मुक्ता एवं वैदूर्य मणियोंसे जटित विशाल भवन है, वह सुग्रीवको दे दो' ॥ ४५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥ ४६ ॥

उनकी आज्ञा सुनकर सत्यपराक्रमी भरतने सुग्रीवका हाथ पकड़कर उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥ ४७ ॥

फिर शत्रुघ्नकी आज्ञासे अनेकानेक सेवक उसमें तिलके तेलसे जलनेवाले बहुत-से दीपक, पलंग और बिछौने लेकर शीघ्र ही गये ॥ ४७ ॥

उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी भरतने सुग्रीवसे कहा—'प्रभो ! भगवान् श्रीरामके अभिषेकके निमित्त जल लानेके लिये आप अपने दूतोंको आज्ञा दीजिये' ॥ ४८ ॥

सौवर्णान् वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान् ।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥ ४९ ॥

तब सुग्रीवने उसी समय चार श्रेष्ठ वानरोंको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित चार सोनेके घड़े देकर कहा— ॥ ४९ ॥

तथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम्।
पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः॥ ५०॥

'वानरो! तुमलोग कल प्रातःकाल ही चारों समुद्रोंके जलसे भरे हुए घड़ोंके साथ उपस्थित रहकर आवश्यक आदेशकी प्रतीक्षा करो'॥ ५०॥

एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः।
उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडा इव शीघ्रगाः॥ ५१॥

सुग्रीवके इस प्रकार आदेश देनेपर हाथीके समान विशालकाय महामनस्वी वानर, जो गरुड़के समान शीघ्रगामी थे, तत्काल आकाशमें उड़ चले॥ ५१॥

जाम्बवांश्च हनूमांश्च वेगदर्शी च वानरः।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन्॥ ५२॥
नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भैरुपाहरन्।

जाम्बवान्, हनुमान्, वेगदर्शी (गवय) और ऋषभ—ये सभी वानर चारों समुद्रोंसे और पाँच सौ नदियोंसे भी सोनेके बहुत-से कलश भर लाये॥ ५२ ½॥

पूर्वात् समुद्रात् कलशं जलपूर्णमथानयत्॥ ५३॥
सुषेणः सत्त्वसम्पन्नः सर्वरत्नविभूषितम्।

जिनके पास रीछोंकी बहुत-सी सुन्दर सेना है वे शक्तिशाली जाम्बवान् सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमय कलश लेकर गये और उसमें पूर्वसमुद्रका जल भरकर ले आये॥ ५३ ½॥

ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमानयत्॥ ५४॥
रक्तचन्दनकर्पूरैः संवृतं काञ्चनं घटम्।

ऋषभ दक्षिण समुद्रसे शीघ्र ही एक सोनेका घड़ा भर लाये। वह लाल चन्दन और कपूरसे ढका हुआ था॥ ५४ ½॥

गवयः पश्चिमात् तोयमाजहार महार्णवात्॥ ५५॥
रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः।

वायुके समान वेगशाली गवय एक रत्ननिर्मित विशाल कलशके द्वारा पश्चिम दिशाके महासागरसे शीतल जल भर लाये॥ ५५ ½॥

उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः॥ ५६॥
आजहार स धर्मात्मानिलः सर्वगुणान्वितः।

गरुड़ तथा वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले, धर्मात्मा सर्वगुणसम्पन्न पवनपुत्र हनुमान्‌जी भी उत्तरवर्ती महासागरसे शीघ्र जल ले आये॥ ५६ ½॥

ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम्॥ ५७॥
अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह।
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत्॥ ५८॥

उन श्रेष्ठ वानरोंके द्वारा लाये हुए उस जलको देखकर मन्त्रियोंसहित शत्रुघ्नने वह सारा जल श्रीरामजीके अभिषेकके लिये पुरोहित वसिष्ठजी तथा अन्य सुहृदोंको समर्पित कर दिया॥ ५७-५८॥

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत्॥ ५९॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंसहित शुद्धचेता वृद्ध वसिष्ठजीने सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको रत्नमयी चौकीपर बैठाया॥ ५९॥

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः।
कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा॥ ६०॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा॥ ६१॥

तत्पश्चात् जैसे आठ वसुओंने देवराज इन्द्रका अभिषेक कराया था, इसी प्रकार वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रियोंने स्वच्छ एवं सुगन्धित जलके द्वारा सीतासहित पुरुषप्रवर श्रीरामचन्द्रजीका अभिषेक कराया॥ ६०-६१॥

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टैः सनैगमैः॥ ६२॥
सर्वौषधिरसैश्चापि दैवतैर्नभसि स्थितैः।
चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च संगतैः॥ ६३॥

(किनके द्वारा कराया? यह बताते हैं—) सबसे पहले उन्होंने सम्पूर्ण ओषधियोंके रसों तथा पूर्वोक्त जलसे ऋत्विग् ब्राह्मणोंद्वारा, फिर सोलह कन्याओंद्वारा तत्पश्चात् मन्त्रियोंद्वारा अभिषेक करवाया। इसके बाद अन्यान्य योद्धाओं और हर्षसे भरे हुए श्रेष्ठ व्यवसायियोंको भी अभिषेकका अवसर दिया। उस समय आकाशमें खड़े हुए समस्त देवताओं और एकत्र हुए चारों लोकपालोंने भी भगवान् श्रीरामका अभिषेक किया॥ ६२-६३॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम्।
अभिषिक्तः पुरा येन मनुस्तं दीप्ततेजसम्॥ ६४॥
तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद् येनाभिषेचिताः।
सभायां हेमकक्ष्यायां शोभितायां महाधनैः॥ ६५॥
रत्नैर्नानाविधैश्चैव चित्रितायां सुशोभनैः।
नानारत्नमये पीठे कल्पयित्वा यथाविधि॥ ६६॥
किरीटेन ततः पश्चाद् वसिष्ठेन महात्मना।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः॥ ६७॥

तदनन्तर ब्रह्माजीका बनाया हुआ रत्नशोभित एवं दिव्य तेजसे देदीप्यमान किरीट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजीका और फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओंका अभिषेक हुआ था, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे चित्रित, सुवर्णनिर्मित एवं महान् वैभवसे शोभायमान सभाभवनमें अनेक रत्नोंसे बनी हुई चौकीपर विधिपूर्वक रखा गया। फिर महात्मा वसिष्ठजीने अन्य ऋत्विज् ब्राह्मणोंके साथ उस किरीटसे और अन्यान्य आभूषणोंसे भी श्रीरघुनाथजीको विभूषित किया॥ ६४—६७॥

छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः॥ ६८॥
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।

उस समय शत्रुघ्नजीने उनपर सुन्दर श्वेत रंगका छत्र लगाया। एक ओर वानरराज सुग्रीवने श्वेत चँवर हाथमें लिया तो दूसरी ओर राक्षसराज विभीषणने चन्द्रमाके समान चमकीला चँवर लेकर डुलाना आरम्भ किया॥६८½॥

मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम्॥ ६९॥
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम्॥ ७०॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।

उस अवसरपर देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेवने सौ सुवर्णमय कमलोंसे बनी हुई एक दीप्तिमती माला और सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त मणियोंसे विभूषित मुक्ताहार राजा रामचन्द्रजीको भेंट किया॥६९-७०½॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ७१॥
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः।

बुद्धिमान् श्रीरामके अभिषेककालमें देवगन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। भगवान् श्रीराम इस सम्मानके सर्वथा योग्य थे॥७१½॥

भूमिः सस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः॥ ७२॥
गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे।

श्रीरघुनाथजीके राज्याभिषेकोत्सवके समय पृथ्वी खेतीसे हरी-भरी हो गयी, वृक्षोंमें फल आ गये और फूलोंमें सुगन्ध छा गयी॥७२½॥

सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा॥ ७३॥
ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः।
त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः॥ ७४॥
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः।

महाराज श्रीरामने उस समय पहले ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े उतनी ही दूध देनेवाली गौएँ तथा सौ साँड़ दान किये। यही नहीं, श्रीरघुनाथजीने तीस करोड़ अशर्फियाँ तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र भी ब्राह्मणोंको बाँटे॥७३-७४½॥

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम्॥ ७५॥
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः।

तत्पश्चात् राजा श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवको सोनेकी एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित हो रही थी। उसमें बहुत-सी मणियोंका संयोग था॥७५½॥

वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते॥ ७६॥
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ।

इसके बाद धैर्यशाली श्रीरघुवीरने प्रसन्न हो वालिपुत्र अङ्गदको दो अङ्गद (बाजूबन्द) भेंट किये, जो नीलमसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। वे चन्द्रमाकी किरणोंसे विभूषित-से जान पड़ते थे॥७६½॥

मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम्॥ ७७॥
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।
अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च॥ ७८॥

उत्तम मणियोंसे युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहारको (जिसे वायुदेवताने भेंट किया था तथा) जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशित होता था श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके गलेमें डाल दिया। साथ ही उन्हें कभी मैले न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र तथा और भी बहुत-से सुन्दर आभूषण अर्पित किये॥७७-७८॥

अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे।
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी॥ ७९॥
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः।

विदेहनन्दिनी सीताने पतिकी ओर देखकर वायुपुत्र हनुमान्‌को कुछ भेंट देनेका विचार किया। वे जनकनन्दिनी अपने गलेसे उस मुक्ताहारको निकालकर बारम्बार समस्त वानरों तथा पतिकी ओर देखने लगीं॥७९½॥

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम्॥ ८०॥
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि।

उनकी उस चेष्टाको समझकर श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीकी ओर देखकर कहा—'सौभाग्यशालिनि! भामिनि! तुम जिसपर संतुष्ट हो, उसे यह हार दे दो'॥८०½॥

अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा॥ ८१॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥ ८२॥

तब कजरारे नेत्रोंवाली माता सीताने वायुपुत्र हनुमान्‌को, जिनमें तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये सद्गुण सदा विद्यमान रहते हैं, वह हार दे दिया॥८१-८२॥

हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः॥ ८३॥

उस हारसे कपिश्रेष्ठ हनुमान् उसी तरह शोभा पाने लगे, जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समूह-सदृश श्वेत बादलोंकी मालासे कोई पर्वत सुशोभित हो रहा हो॥८३॥

सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः॥ ८४॥

इसी प्रकार जो प्रधान-प्रधान एवं श्रेष्ठ वानर थे, उन सबका वस्त्रों और आभूषणोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया गया॥८४॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनुमाञ्जाम्बवांस्तथा।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ ८५॥

यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ ८६ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरामने विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् तथा जाम्बवान् आदि सभी श्रेष्ठ वानरवीरोंका मनोवाञ्छित वस्तुओं एवं प्रचुर रत्नोंद्वारा यथायोग्य सत्कार किया। वे सब-के-सब प्रसन्नचित्त होकर जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ८५-८६ ॥

ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परंतपः ।
सर्वान् कामगुणान् वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥ ८७ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा श्रीरघुनाथजीने द्विविद, मैन्द और नीलकी ओर देखकर उन सबको मनोवाञ्छापूरक गुणोंसे युक्त सब प्रकारके उत्तम रत्न आदि भेंट किये ॥ ८७ ॥

दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते वानरर्षभाः ।
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धां समुपागमन् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक देखकर सभी महामनस्वी श्रेष्ठ वानर महाराज श्रीरामसे विदा ले किष्किन्धाको चले गये ॥ ८८ ॥

सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत् पुरीम् ॥ ८९ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने भी श्रीरामके राज्याभिषेकका उत्सव देखकर उनसे पूजित हो किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया ॥ ८९ ॥

विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः ।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥ ९० ॥

महायशस्वी धर्मात्मा विभीषण भी अपने कुलका वैभव—अपना राज्य पाकर अपने साथी श्रेष्ठ निशाचरोंके साथ लङ्कापुरीको चले गये ॥ ९० ॥

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ।
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥ ९१ ॥

अपने शत्रुओंका वध करके परम उदार महायशस्वी श्रीरघुनाथजी बड़े आनन्दसे समस्त राज्यका शासन करने लगे। उन धर्मवत्सल श्रीरामने धर्मज्ञ लक्ष्मणसे कहा— ॥ ९१ ॥

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ९२ ॥

'धर्मज्ञ लक्ष्मण ! पूर्ववर्ती राजाओंने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ जिसका पालन किया था, उसी इस भूमण्डलके राज्यपर तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ। अपने पिता, पितामह और प्रपितामहोंने जिस राज्यभारको पहले धारण किया था, उसीको मेरे ही समान तुम भी युवराज-पदपर स्थित होकर धारण करो' ॥ ९२ ॥

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद् भरतं महात्मा ॥ ९३ ॥

परंतु श्रीरामचन्द्रजीके सब तरहसे समझाने और नियुक्त किये जानेपर भी जब सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस पदको नहीं स्वीकार किया, तब महात्मा श्रीरामने भरतको युवराज-पदपर अभिषिक्त किया ॥ ९३ ॥

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत् पार्थिवात्मजः ॥ ९४ ॥

राजकुमार महाराज श्रीरामने अनेक बार पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ९४ ॥

राज्यं दशसहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान् ॥ ९५ ॥

श्रीरघुनाथजीने राज्य पाकर ग्यारह[1] सहस्र वर्षोंतक उसका पालन और सौ अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उन यज्ञोंमें उत्तम अश्व छोड़े गये थे तथा ऋत्विजोंको बहुत अधिक दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं ॥ ९५ ॥

आजानुलम्बिबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान् ।
लक्ष्मणानुचरो रामः शशास पृथिवीमिमाम् ॥ ९६ ॥

उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं। उनका वक्षःस्थल विशाल एवं विस्तृत था। वे बड़े प्रतापी नरेश थे। लक्ष्मणको साथ लेकर श्रीरामने इस पृथ्वीका शासन किया ॥ ९६ ॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः ॥ ९७ ॥

अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर धर्मात्मा श्रीरामने सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भाई-बन्धुओंके साथ अनेक प्रकारके यज्ञ किये ॥ ९७ ॥

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ ९८ ॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका विलाप नहीं सुनायी पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं

---

१. अन्यत्र 'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च' कहा गया है, उनसे एक वाक्यताके लिये यहाँ इसको ग्यारहका बोधक समझना चाहिये।

था और रोगोंकी भी आशङ्का नहीं थी ॥ ९८ ॥

निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥ ९९ ॥

सम्पूर्ण जगत्में कहीं चोरों या लुटेरोंका नाम भी नहीं सुना जाता था। कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्योंमें हाथ नहीं डालता था और वृद्धोंको बालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे ॥ ९९ ॥

सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ॥ १०० ॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीरामपर ही बारंबार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे ॥ १०० ॥

आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १०१ ॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय लोग सहस्रों वर्षोंतक जीवित रहते थे, सहस्रों पुत्रोंके जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था ॥ १०१ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १०२ ॥

श्रीरामके राज्यशासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल राम, राम, रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था ॥ १०२ ॥

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥ १०३ ॥

श्रीरामके राज्यमें वृक्षोंकी जड़ें सदा मजबूत रहती थीं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मेघ प्रजाकी इच्छा और आवश्यकताके अनुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्द गतिसे चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था ॥ १०३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥ १०४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके लोग लोभरहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मोंसे संतोष था और सभी उन्हींके पालनमें लगे रहते थे ॥ १०४ ॥

आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १०५ ॥

श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती थी। झूठ नहीं बोलती थी। सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे और सबने धर्मका आश्रय ले रखा था ॥ १०५ ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥ १०६ ॥

भाइयोंसहित श्रीमान् रामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ १०६ ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १०७ ॥

यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिसे पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने बनाया था। यह धर्म, यश तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला एवं राजाओंको विजय देनेवाला है ॥ १०७ ॥

यः शृणोति सदा लोके नरः पापात् प्रमुच्यते ।
पुत्रकामश्च पुत्रान् वै धनकामो धनानि च ॥ १०८ ॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ १०९ ॥

संसारमें जो मानव सदा इसका श्रवण करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। श्रीरामके राज्याभिषेकके प्रसंगको सुनकर मनुष्य इस जगत्में यदि पुत्रका इच्छुक हो तो पुत्र और धनका अभिलाषी हो तो धन पाता है। राजा इस काव्यका श्रवण करनेसे पृथ्वीपर विजय पाता और शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है ॥ १०८-१०९ ॥

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ ११० ॥
भविष्यन्ति सदानन्दाः पुत्रपौत्रसमन्विताः ।

जैसे माता कौसल्या श्रीरामको, सुमित्रा लक्ष्मणको और कैकेयी भरतको पाकर जीवित पुत्रोंकी माता कहलायीं, उसी प्रकार संसारकी दूसरी स्त्रियाँ भी इस आदिकाव्यके पाठ और श्रवणसे जीवित पुत्रोंकी जननी, सदा आनन्दमग्न तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न होंगी ॥ ११०½ ॥

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ १११ ॥
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ।

क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामकी विजय-कथारूप इस सम्पूर्ण रामायण-काव्यको सुनकर मनुष्य दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली आयु पाता है ॥ १११½ ॥

शृणोति च इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ ११२ ॥
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ।

पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने जिसकी रचना की थी, वही यह आदिकाव्य है। जो क्रोधको जीतकर श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाता है ॥ ११२½ ॥

समागम्य प्रवासान्ते रमन्ते सह बान्धवैः ॥ ११३ ॥
शृण्वन्ति च इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात् ॥ ११४ ॥

जो लोग पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित इस काव्यको सुनते हैं, वे परदेशसे लौटकर अपने भाई-बन्धुओंके साथ मिलते और आनन्दका अनुभव करते हैं। वे इस जगत्में श्रीरघुनाथजीसे समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११३-११४ ॥

श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते सम्प्रशृण्वताम्।
विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै॥ ११५॥

इसके श्रवणसे समस्त देवता श्रोताओंपर प्रसन्न होते हैं तथा जिसके घरमें विघ्नकारी ग्रह होते हैं, उसके वे सारे ग्रह शान्त हो जाते हैं॥ ११५॥

विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान् भवेत्।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान्॥ ११६॥

राजा इसके श्रवणसे भूमण्डलपर विजय पाता है। परदेशमें निवास करनेवाला पुरुष सकुशल रहता और रजस्वला स्त्रियाँ (स्नानके अनन्तर सोलह दिनोंके भीतर) इसे सुनकर श्रेष्ठ पुत्रोंको जन्म देती हैं॥ ११६॥

पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥ ११७॥

जो इस प्राचीन इतिहासका पूजन और पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और बड़ी आयु पाता है॥ ११७॥

प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात्।
ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः॥ ११८॥

क्षत्रियोंको चाहिये कि वे प्रतिदिन मस्तक झुकाकर प्रणाम करके ब्राह्मणके मुखसे इस ग्रन्थका श्रवण करें। इससे उन्हें ऐश्वर्य और पुत्रकी प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं है॥ ११८॥

रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः॥ ११९॥

जो नित्य इस सम्पूर्ण रामायणका श्रवण एवं पाठ करता है, उसपर सनातन विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं॥ ११९॥

आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः।
साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते॥ १२०॥

साक्षात् आदिदेव महाबाहु पापहारी प्रभु नारायण ही रघुकुलतिलक श्रीराम हैं तथा भगवान् शेष ही लक्ष्मण कहलाते हैं॥ १२०॥

एवमेतत् पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम्॥ १२१॥

(लवकुश कहते हैं—) श्रोताओ! आपलोगोंका कल्याण हो। यह पूर्वघटित आख्यान ही इस प्रकार रामायण-काव्यके रूपमें वर्णित हुआ है। आपलोग पूर्ण विश्वासके साथ इसका पाठ करें। इससे आपके वैष्णवबलकी वृद्धि होगी॥ १२१॥

देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात् तथा।
रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरः सदा॥ १२२॥

रामायणको हृदयमें धारण करने और सुननेसे सब देवता संतुष्ट होते हैं। इसके श्रवणसे पितरोंको भी सदा तृप्ति मिलती है॥ १२२॥

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम्।
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे॥ १२३॥

जो लोग श्रीरामचन्द्रजीमें भक्तिभाव रखकर महर्षि वाल्मीकिनिर्मित इस रामायण-संहिताको लिखते हैं, उनका स्वर्गमें निवास होता है॥ १२३॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं
स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च।
श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं
प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम्॥ १२४॥

इस शुभ और गम्भीर अर्थसे युक्त काव्यको सुनकर मनुष्यके कुटुम्ब और धन-धान्यकी वृद्धि होती है। उसे श्रेष्ठ गुणवाली सुन्दरी स्त्रियाँ सुलभ होती हैं तथा इस भूतलपर वह अपने सारे मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ १२४॥

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भि-
राख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः॥ १२५॥

यह काव्य आयु, आरोग्य, यश तथा भ्रातृप्रेमको बढ़ानेवाला है। यह उत्तम बुद्धि प्रदान करनेवाला और मङ्गलकारी है; अतः समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको इस उत्साहवर्द्धक इतिहासका नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिये॥ १२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये युद्धकाण्डेऽष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः॥ १२८॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके युद्धकाण्डमें एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ १२८॥

युद्धकाण्डं सम्पूर्णम्

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

उत्तरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

श्रीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा श्रीरामके प्रश्न

प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसानां वधे कृते।
आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम्॥ १॥

राक्षसोंका संहार करनेके अनन्तर जब भगवान् श्रीरामने अपना राज्य प्राप्त कर लिया, तब समस्त ऋषि-महर्षि श्रीरघुनाथजीका अभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये॥ १॥

कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च।
कण्वो मेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः॥ २॥

जो मुख्यतः पूर्व दिशामें निवास करते हैं, वे कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथिके पुत्र कण्व वहाँ पधारे॥ २॥

स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान् नमुचिः प्रमुचिस्तथा।
अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान् सुमुखो विमुखस्तथा॥ ३॥
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये श्रिता दक्षिणां दिशम्।

स्वस्त्यात्रेय, भगवान् नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, भगवान् अत्रि, सुमुख और विमुख—ये दक्षिण दिशामें रहनेवाले महर्षि अगस्त्यजीके साथ वहाँ आये॥ ३½॥

नृषः कवषो धौम्यः कौशेयश्च महानृषिः॥ ४॥
तेऽप्याजग्मुः सशिष्या वै ये श्रिताः पश्चिमां दिशम्।

जो प्रायः पश्चिम दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, वे नृपङ्गु, कवष, धौम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये॥ ४½॥

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः सगौतमः॥ ५॥
जमदग्निर्भरद्वाजस्तेऽपि सप्तर्षयस्तथा।
उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः॥ ६॥

इसी तरह उत्तर दिशाके नित्य-निवासी वसिष्ठ,* कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि जो सप्तर्षि कहलाते हैं, अयोध्यापुरीमें पधारे॥ ५-६॥

सम्प्राप्यैते महात्मानो राघवस्य निवेशनम्।
विष्ठिताः प्रतिहारार्थं हुताशनसमप्रभाः॥ ७॥
वेदवेदाङ्गविदुषो नानाशास्त्रविशारदाः।

ये सभी अग्निके समान तेजस्वी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करनेमें प्रवीण थे। वे महात्मा मुनि श्रीरघुनाथजीके राजभवनके पास पहुँचकर अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये ड्योढ़ीपर खड़े हो गये॥ ७½॥

द्वाःस्थं प्रोवाच धर्मात्मा अगस्त्यो मुनिसत्तमः॥ ८॥
निवेद्यतां दाशरथेरृषयो वयमागताः।

उस समय धर्मपरायण मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने द्वारपालसे कहा—'तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामको जाकर सूचना दो कि हम अनेक ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं'॥ ८½॥

प्रतीहारस्ततस्तूर्णमगस्त्यवचनाद् द्रुतम्॥ ९॥
समीपं राघवस्याशु प्रविवेश महात्मनः।
नयेङ्गितज्ञः सद्वृत्तो दक्षो धैर्यसमन्वितः॥ १०॥

महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल तुरंत महात्मा श्रीरघुनाथजीके समीप गया। वह नीतिज्ञ, इशारेसे बातको समझनेवाला, सदाचारी, चतुर और धैर्यवान् था॥ ९-१०॥

स रामं दृश्य सहसा पूर्णचन्द्रसमद्युतिम्।
अगस्त्यं कथयामास सम्प्राप्तमृषिसत्तमम्॥ ११॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्रीरामका दर्शन करके उसने सहसा बताया—'प्रभो! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य अनेक ऋषियोंके साथ पधारे हुए हैं'॥ ११॥

श्रुत्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु बालसूर्यसमप्रभान्।
प्रत्युवाच ततो द्वाःस्थं प्रवेशय यथासुखम्॥ १२॥

प्रातःकालके सूर्यकी भाँति दिव्य तेजसे प्रकाशित होनेवाले उन मुनीश्वरोंके पदार्पणका समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—'तुम जाकर उन सब लोगोंको यहाँ सुखपूर्वक ले आओ'॥ १२॥

दृष्ट्वा प्राप्तान् मुनींस्तांस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।
पाद्यार्घ्यादिभिरानर्च गां निवेद्य च सादरम्॥ १३॥

(आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबको साथ ले

---

* वसिष्ठमुनि एक शरीरसे अयोध्यामें रहते हुए भी दूसरे शरीरसे सप्तर्षिमण्डलमें रहते थे। उसी दूसरे शरीरसे उनके आनेकी बात यहाँ कही गयी है—ऐसा समझना चाहिये।

आया।) उन मुनीश्वरोंको उपस्थित देख श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा उनका आदरपूर्वक पूजन किया। पूजनसे पहले उन सबके लिये एक-एक गाय भेंट की ॥ १३ ॥

रामोऽभिवाद्य प्रयत आसनान्यादिदेश ह।
तेषु काञ्चनचित्रेषु महत्सु च वरेषु च ॥ १४ ॥
कुशान्तर्धानदत्तेषु मृगचर्मयुतेषु च।
यथार्हमुपविष्टास्ते आसनेष्वृषिपुङ्गवाः ॥ १५ ॥

श्रीरामने शुद्धभावसे उन सबको प्रणाम करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिये। वे आसन सोनेके बने हुए और विचित्र आकार-प्रकारवाले थे। सुन्दर होनेके साथ ही वे विशाल और विस्तृत भी थे। उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगचर्म बिछाये गये थे। उन आसनोंपर वे श्रेष्ठ मुनि यथायोग्य बैठ गये ॥ १४-१५ ॥

रामेण कुशलं पृष्टाः सशिष्याः सपुरोगमाः।
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमब्रुवन्।

तब श्रीरामने शिष्यों और गुरुजनोंसहित उन सबका कुशल समाचार पूछा। उनके पूछनेपर वे वेदवेत्ता महर्षि इस प्रकार बोले— ॥ १५½ ॥

कुशलं नो महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १६ ॥
त्वां तु दिष्ट्या कुशलिनं पश्यामो हतशात्रवम्।
दिष्ट्या त्वया हतो राजन् रावणो लोकरावणः ॥ १७ ॥

'महाबाहु रघुनन्दन! हमारे लिये तो सर्वत्र कुशल-ही-कुशल है। सौभाग्यकी बात है कि हम आपको सकुशल देख रहे हैं और आपके सारे शत्रु मारे जा चुके हैं। राजन्! आपने सम्पूर्ण लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध किया, यह सबके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १६-१७ ॥

नहि भारः स ते राम रावणः पुत्रपौत्रवान्।
सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजयेथा न संशयः ॥ १८ ॥

'श्रीराम! पुत्र-पौत्रोंसहित रावण आपके लिये कोई भार नहीं था। आप धनुष लेकर खड़े हो जायँ तो तीनों लोकोंपर विजय पा सकते हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ १८ ॥

दिष्ट्या त्वया हतो राम रावणो राक्षसेश्वरः।
दिष्ट्या विजयिनं त्वाद्य पश्यामः सह सीतया ॥ १९ ॥

'रघुनन्दन राम! आपने राक्षसराज रावणका वध कर दिया और सीताके साथ आप विजयी वीरोंको आज हम सकुशल देख रहे हैं, यह कितने आनन्दकी बात है ॥ १९ ॥

लक्ष्मणेन च धर्मात्मन् भ्रात्रा त्वद्धितकारिणा।
मातृभिर्भ्रातृसहितं पश्यामोऽद्य वयं नृप ॥ २० ॥

'धर्मात्मा नरेश! आपके भाई लक्ष्मण सदा आपके हितमें लगे रहनेवाले हैं। आप इनके, भरत-शत्रुघ्नके तथा माताओंके साथ अब यहाँ सानन्द विराज रहे हैं और इस रूपमें हमें आपका दर्शन हो रहा है, यह हमारा अहोभाग्य है ॥ २० ॥

दिष्ट्या प्रहस्तो विकटो विरूपाक्षो महोदरः।
अकम्पनश्च दुर्धर्षो निहतास्ते निशाचराः ॥ २१ ॥

'प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर तथा दुर्धर्ष अकम्पन-जैसे निशाचर आपलोगोंके हाथसे मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ २१ ॥

यस्य प्रमाणाद् विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते।
दिष्ट्या ते समरे राम कुम्भकर्णो निपातितः ॥ २२ ॥

'श्रीराम! शरीरकी ऊँचाई और स्थूलतामें जिससे बढ़कर दूसरा कोई है ही नहीं, उस कुम्भकर्णको भी आपने समराङ्गणमें मार गिराया, यह हमारे लिये परम सौभाग्यकी बात है ॥ २२ ॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ।
दिष्ट्या ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥ २३ ॥

'श्रीराम! त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—ये महापराक्रमी निशाचर भी हमारे सौभाग्यसे ही आपके हाथों मारे गये ॥ २३ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च राक्षसौ भीमदर्शनौ।
दिष्ट्या तौ निहतौ राम कुम्भकर्णसुतौ मृधे ॥ २४ ॥

'रघुवीर! जो देखनेमें भी बड़े भयंकर थे, वे कुम्भकर्णके दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ नामक राक्षस भी भाग्यवश युद्धमें मारे गये ॥ २४ ॥

युद्धोन्मत्तश्च मत्तश्च कालान्तकयमोपमौ।
यज्ञकोपश्च बलवान् धूम्राक्षो नाम राक्षसः ॥ २५ ॥

'प्रलयकालके संहारकारी यमराजकी भाँति भयानक युद्धोन्मत्त और मत्त भी कालके गालमें चले गये। बलवान् यज्ञकोप और धूम्राक्ष नामक राक्षस भी यमलोकके अतिथि हो गये ॥ २५ ॥

कुर्वन्तः कदनं घोरमेते शस्त्रास्त्रपारगाः।
अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्दिष्ट्या विनिहतास्त्वया ॥ २६ ॥

'ये समस्त निशाचर अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् थे। इन्होंने जगत्में भयंकर संहार मचा रखा था; परंतु आपने अन्तकतुल्य बाणोंद्वारा इन सबको मौतके घाट उतार दिया; यह कितने हर्षकी बात है ॥ २६ ॥

दिष्ट्या त्वं राक्षसेन्द्रेण द्वन्द्वयुद्धमुपागतः।
देवतानामवध्येन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २७ ॥

'राक्षसराज रावण देवताओंके लिये भी अवध्य था, उसके साथ आप द्वन्द्वयुद्धमें उतर आये और विजय भी आपको ही मिली; यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २७ ॥

संख्ये तस्य न किंचित् तु रावणस्य पराभवः।
द्वन्द्वयुद्धमनुप्राप्तो दिष्ट्या ते रावणिर्हतः ॥ २८ ॥

'युद्धमें आपके द्वारा जो रावणका पराभव (संहार)

हुआ, वह कोई बड़ी बात नहीं है; परंतु द्वन्द्वयुद्धमें लक्ष्मणके द्वारा जो रावणपुत्र इन्द्रजित्का वध हुआ है, वही सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है ॥ २८ ॥

दिष्ट्या तस्य महाबाहो कालस्येवाभिधावतः ।
मुक्तः सुरिपोर्वीर प्राप्तश्च विजयस्त्वया ॥ २९ ॥

'महाबाहु वीर ! कालके समान आक्रमण करनेवाले इस देवद्रोही राक्षसके नागपाशसे मुक्त होकर आपने विजय प्राप्त की, यह महान् सौभाग्यकी बात है ॥ २९ ॥

अभिनन्दाम ते सर्वं संश्रुत्येन्द्रजितो वधम् ।
अवध्यः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥ ३० ॥
विस्मयस्त्वेष चास्माकं तं श्रुत्वेन्द्रजितं हतम् ।

'इन्द्रजित्के वधका समाचार सुनकर हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं और इसके लिये आपका अभिनन्दन करते हैं। वह महामायावी राक्षस युद्धमें सभी प्राणियोंके लिये अवध्य था। वह इन्द्रजित् भी मारा गया, यह सुनकर हमें अधिक आश्चर्य हुआ है ॥ ३० ½ ॥

एते चान्ये च बहवो राक्षसाः कामरूपिणः ॥ ३१ ॥
दिष्ट्या त्वया हता वीरा रघूणां कुलवर्धन ।

'रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीराम ! ये तथा और भी बहुत-से इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके द्वारा मारे गये, यह बड़े आनन्दकी बात है ॥ ३१ ½ ॥

दत्त्वा पुण्यामिमां वीर सौम्यामभयदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥
दिष्ट्या वर्धसि काकुत्स्थ जयेनामित्रकर्शन ।

'वीर ! ककुत्स्थकुलभूषण ! शत्रुसूदन श्रीराम ! आप संसारको यह परम पुण्यमय सौम्य अभयदान देकर अपनी विजयके कारण बधाईके पात्र हो गये हैं—निरन्तर बढ़ रहे हैं, यह कितने हर्षकी बात है !' ॥ ३२ ½ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ३३ ॥
विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।

उन पवित्रात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हाथ जोड़कर पूछने लगे— ॥ ३३ ½ ॥

भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ॥ ३४ ॥
अतिक्रम्य महावीर्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ।

'पूज्यपाद महर्षियो ! निशाचर रावण तथा कुम्भकर्ण दोनों ही महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। इन दोनोंको लाँघकर आप रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ॥ ३४ ½ ॥

महोदरं प्रहस्तं च विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥ ३५ ॥
मत्तोन्मत्तौ च दुर्धर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३६ ॥

'महोदर, प्रहस्त, विरूपाक्ष, मत्त, उन्मत्त तथा दुर्धर्ष वीर देवान्तक और नरान्तक—इन महान् वीरोंका उल्लङ्घन करके आपलोग रावणकुमार इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३५-३६ ॥

अतिकायं त्रिशिरसं धूम्राक्षं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्यान् किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ ३७ ॥

'अतिकाय, त्रिशिरा तथा निशाचर धूम्राक्ष—इन महापराक्रमी वीरोंका अतिक्रमण करके आप रावणपुत्र इन्द्रजित्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ? ॥ ३७ ॥

कीदृशो वै प्रभावोऽस्य किं बलो वा पराक्रमः ।
केन वा कारणेनैष रावणादतिरिच्यते ॥ ३८ ॥

'उसका प्रभाव कैसा था ? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था ? अथवा किस कारणसे वह रावणसे भी बढ़कर सिद्ध होता है ॥ ३८ ॥

श्रोतुं यदि मया शक्यं न खल्वाज्ञापयामि वः ।
यदि गुह्यं न चेद् वक्तुं श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ ३९ ॥

'यदि यह मेरे सुननेयोग्य हो, गोपनीय न हो तो मैं इसे सुनना चाहता हूँ। आपलोग इसीको कहा करें। यह मेरे विनम्र अनुरोध है। मैं आपलोगोंको आज्ञा नहीं दे रहा हूँ ॥ ३९ ॥

शक्रोऽपि विजितस्तेन कथं लब्धवरश्च सः ।
कथं च बलवान् पुत्रो न पितुस्तस्य रावणः ॥ ४० ॥

'उस रावणपुत्रने इन्द्रको भी किस तरह जीत लिया ? कैसे वरदान प्राप्त किया ? तथा किस प्रकार वह महाबलवान् हो गया और उसका पिता रावण क्यों उस प्रकारका नहीं हुआ ? ॥ ४० ॥

कथं पितुश्चाधिको महाहवे
शक्रस्य जेता हि कथं स राक्षसः ।
वरांश्च लब्धाः कथयस्व मेऽद्य
पाप्मच्छलश्चास्य मुनीन्द्र सर्वम् ॥ ४१ ॥

'मुनीश्वर ! उस रावण इन्द्रजित् महान्समरमें किस तरह पितासे भी अधिक शक्तिशाली हुआ इन्द्रपर भी विजय पानेवाला हो गया ? तथा किस तरह उसने बहुत-से वर प्राप्त कर लिये ? इन सब बातोंको मैं जानना चाहता हूँ, इसीलिये बारम्बार पूछता हूँ। आज आप ये सारी बातें मुझे बताइये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पहला सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

—★—

द्वितीयः सर्गः

महर्षि अगस्त्यके द्वारा पुलस्त्यके गुण और तपस्याका वर्णन तथा उनसे विश्रवा मुनिकी उत्पत्तिका कथन

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः।
कुम्भयोनिर्महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह॥ १॥

महात्मा रघुनाथजीका वह प्रश्न सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्यने उनसे इस प्रकार कहा—॥ १॥

शृणु राम तथा वृत्तं तस्य तेजोबलं महत्।
जघान शत्रून् येनासौ न च वध्यः स शत्रुभिः॥ २॥

'श्रीराम! इन्द्रजित्‌के महान् बल और तेजके उद्देश्यसे जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे बताता हूँ, सुनो। जिस बलके कारण वह तो शत्रुओंको मार गिराता था, परंतु स्वयं किसी शत्रुके हाथसे मारा नहीं जाता था; उसका परिचय दे रहा हूँ॥ २॥

तावत् ते रावणस्येदं कुलं जन्म च राघव।
वरप्रदानं च तथा तस्मै दत्तं ब्रवीमि ते॥ ३॥

'रघुनन्दन! इस प्रस्तुत विषयका वर्णन करनेके लिये मैं पहले आपको रावणके कुल, जन्म तथा वरदान-प्राप्ति आदिका प्रसङ्ग सुनाता हूँ॥ ३॥

पुरा कृतयुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः।
पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षादिव पितामहः॥ ४॥

'श्रीराम! प्राचीनकाल—सत्ययुगकी बात है, प्रजापति ब्रह्माजीके एक प्रभावशाली पुत्र हुए, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजीके समान ही तेजस्वी हैं॥ ४॥

नानुकीर्त्या गुणास्तस्य धर्मतः शीलतस्तथा।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः॥ ५॥

'उनके गुण, धर्म और शीलका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका इतना ही परिचय देना पर्याप्त होगा कि वे प्रजापतिके पुत्र हैं॥ ५॥

प्रजापतिसुतत्वेन देवानां वल्लभो हि सः।
इष्टः सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः॥ ६॥

'प्रजापति ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण ही देवतालोग उनसे बहुत प्रेम करते हैं। वे बड़े बुद्धिमान् हैं और अपने उज्ज्वल गुणोंके कारण ही सब लोगोंके प्रिय हैं॥ ६॥

स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरोः पार्श्वं महागिरेः।
तृणबिन्दाश्रमं गत्वाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः॥ ७॥

'एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्माचरणके प्रसङ्गसे महागिरि मेरुके निकटवर्ती राजर्षि तृणबिन्दुके आश्रममें गये और वहीं रहने लगे॥ ७॥

तपस्तेपे स धर्मात्मा स्वाध्यायनियतेन्द्रियः।
गत्वाऽऽश्रमपदं तस्य विघ्नं कुर्वन्ति कन्यकाः॥ ८॥
ऋषिपन्नगकन्याश्च राजर्षितनयाश्च याः।
क्रीडन्त्योऽप्सरसश्चैव तं देशमुपपेदिरे॥ ९॥

'उनका मन सदा धर्ममें ही लगा रहता था। वे इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करते और तपस्यामें लगे रहते थे। परंतु कुछ कन्याएँ उनके आश्रममें जाकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालने लगीं। ऋषियों, नागों तथा राजर्षियोंकी कन्याएँ और जो अप्सराएँ हैं, वे भी प्रायः क्रीडा करती हुई उनके आश्रमकी ओर आ जाती थीं॥ ८-९॥

सर्वर्तुपूपभोग्यत्वाद् रम्यत्वात् काननस्य च।
नित्यशस्तास्तु तं देशं गत्वा क्रीडन्ति कन्यकाः॥ १०॥

'वहाँका वन सभी ऋतुओंमें उपभोगमें लानेके योग्य और रमणीय था, इसलिये वे कन्याएँ प्रतिदिन उस प्रदेशमें जाकर भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करती थीं॥ १०॥

देशस्य रमणीयत्वात् पुलस्त्यो यत्र स द्विजः।
गायन्त्यो वादयन्त्यश्च लासयन्त्यस्तथैव च॥ ११॥
मुनेस्तपस्विनस्तस्य विघ्नं चक्रुरनिन्दिताः।

'जहाँ ब्रह्मर्षि पुलस्त्य रहते थे, वह स्थान तो और भी रमणीय था; इसलिये वे सती-साध्वी कन्याएँ प्रतिदिन वहाँ आकर गातीं, बजातीं तथा नाचती थीं। इस प्रकार उन तपस्वी मुनिके तपमें विघ्न डाला करती थीं॥ ११½॥

अथ रुष्टो महातेजा व्याजहार महामुनिः॥ १२॥
या मे दर्शनमागच्छेत् सा गर्भं धारयिष्यति।

'इससे वे महातेजस्वी महामुनि पुलस्त्य कुछ रुष्ट हो गये और बोले—'कलसे जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टिपथमें आयेगी, वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी'॥ १२½॥

तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः॥ १३॥
ब्रह्मशापभयाद् भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः।

'उन महात्माकी यह बात सुनकर वे सब कन्याएँ ब्रह्मशापके भयसे डर गयीं और उन्होंने उस स्थानपर आना छोड़ दिया॥ १३½॥

तृणबिन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत्॥ १४॥
गत्वाऽऽश्रमपदं तत्र विचचार सुनिर्भया।

'परंतु राजर्षि तृणबिन्दुकी कन्याने इस शापको नहीं सुना था; इसलिये वह दूसरे दिन भी बेखटके आकर उस आश्रममें विचरने लगी॥ १४½॥

न चापश्यद्य सा तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम्॥ १५॥
तस्मिन् काले महातेजाः प्राजापत्यो महानृषिः।
स्वाध्यायमकरोत् तत्र तपसा भावितः स्वयम्॥ १६॥

'वहाँ उसने अपनी किसी सखीको आयी हुई नहीं देखा। उस समय प्रजापतिके पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुलस्त्य अपनी तपस्यासे प्रकाशित हो वहाँ वेदोंका स्वाध्याय कर रहे थे॥ १५-१६॥

सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा दृष्ट्वा वै तपसो निधिम्।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा॥ १७॥

'उस वेदध्वनिको सुनकर वह कन्या उसी ओर गयी और उसने तपोनिधि पुलस्त्यजीका दर्शन किया। महर्षिकी दृष्टि पड़ते ही उसके शरीरपर पीलापन छा गया और गर्भके लक्षण प्रकट हो गये॥ १७॥

बभूव च समुद्विग्ना दृष्ट्वा तद्दोषमात्मनः।
इदं मे किमितीति ज्ञात्वा पितुर्गत्वाऽऽश्रमे स्थिता॥ १८॥

'अपने शरीरमें वह दोष देखकर वह घबरा उठी और 'मुझे यह क्या हो गया?' इस प्रकार चिन्ता करती हुई पिताके आश्रमपर जाकर खड़ी हुई॥ १८॥

तां तु दृष्ट्वा तथाभूतां तृणबिन्दुरथाब्रवीत्।
किं त्वमेतत्त्वसदृशं धारयस्यात्मनो वपुः॥ १९॥

'अपनी कन्याको उस अवस्थामें देखकर तृणबिन्दुने पूछा—'तुम्हारे शरीरकी ऐसी अवस्था कैसे हुई? तुम अपने शरीरको जिस रूपमें धारण कर रही हो, यह तुम्हारे लिये सर्वथा अयोग्य एवं अनुचित है'॥ १९॥

सा तु कृत्वाञ्जलिं दीना कन्योवाच तपोधनम्।
न जाने कारणं तात येन मे रूपमीदृशम्॥ २०॥

'वह बेचारी कन्या हाथ जोड़कर उन तपोधन मुनिसे बोली—'पिताजी! मैं उस कारणको नहीं समझ पाती, जिससे मेरा रूप ऐसा हो गया है॥ २०॥

किं तु पूर्वं गतास्म्येका महर्षेर्भावितात्मनः।
पुलस्त्यस्याश्रमं दिव्यमन्वेष्टुं स्वसखीजनम्॥ २१॥

'अभी थोड़ी देर पहले मैं पवित्र अन्तःकरणवाले महर्षि पुलस्त्यके दिव्य आश्रमपर अपनी सखियोंको खोजनेके लिये अकेली गयी थी॥ २१॥

न च पश्याम्यहं तत्र कांचिदभ्यागतां सखीम्।
रूपस्य तु विपर्यासं दृष्ट्वा त्रासादिहागता॥ २२॥

'वहाँ देखती हूँ तो कोई भी सखी उपस्थित नहीं है। साथ ही मेरा रूप पहलेसे विपरीत अवस्थामें पहुँच गया है; यह सब देखकर मैं भयभीत हो यहाँ आ गयी हूँ॥ २२॥

तृणबिन्दुस्तु राजर्षिस्तपसा द्योतितप्रभः।
ध्यानं विवेश तत्रापि अपश्यदृषिकर्मजम्॥ २३॥

'राजर्षि तृणबिन्दु अपनी तपस्यासे प्रकाशमान थे। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह सब कुछ महर्षि पुलस्त्यके ही करनेसे हुआ है॥ २३॥

स तु विज्ञाय तं शापं महर्षेर्भावितात्मनः।
गृहीत्वा तनयां गत्वा पुलस्त्यमिदमब्रवीत्॥ २४॥

'उन पवित्रात्मा महर्षिके उस शापको जानकर वे अपनी पुत्रीको साथ लिये पुलस्त्यजीके पास गये और इस प्रकार बोले—॥ २४॥

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम्।
भिक्षां प्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम्॥ २५॥

'भगवन्! मेरी यह कन्या अपने गुणोंसे ही विभूषित है। महर्षे! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षाके रूपमें ग्रहण कर लें॥ २५॥

तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्य ते।
शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः॥ २६॥

'आप तपस्यामें लगे रहनेके कारण थक जाते होंगे; अतः यह सदा साथ रहकर आपकी सेवा-शुश्रूषा किया करेगी, इसमें संशय नहीं है'॥ २६॥

तं ब्रुवाणं तु तद् वाक्यं राजर्षिं धार्मिकं तदा।
जिघृक्षुरब्रवीत् कन्यां बाढमित्येव स द्विजः॥ २७॥

'ऐसी बात कहते हुए उन धर्मात्मा राजर्षिको देखकर उनकी कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन ब्रह्मर्षिने कहा—'बहुत अच्छा'॥ २७॥

दत्त्वा तु तनयां राजा स्वमाश्रमपदं गतः।
सापि तत्रावसत् कन्या तोषयन्ती पतिं गुणैः॥ २८॥

'तब उन महर्षिको अपनी कन्या देकर राजर्षि तृणबिन्दु अपने आश्रमपर लौट आये और वह कन्या अपने गुणोंसे पतिको संतुष्ट करती हुई वहीं रहने लगी॥ २८॥

तस्यास्तु शीलवृत्ताभ्यां तुतोष मुनिपुङ्गवः।
प्रीतः स तु महातेजा वाक्यमेतदुवाच ह॥ २९॥

'उसके शील और सदाचारसे वे महातेजस्वी मुनिवर पुलस्त्य बहुत संतुष्ट हुए और प्रसन्नतापूर्वक यों बोले—॥ २९॥

परितुष्टोऽस्मि सुश्रोणि गुणानां सम्पदा भृशम्।
तस्माद् देवि ददाम्यद्य पुत्रमात्मसमं तव॥ ३०॥
उभयोर्वंशकर्तारं पौलस्त्य इति विश्रुतम्।

'सुन्दरि! मैं तुम्हारे गुणोंके वैभवसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। देवि! इसीलिये आज मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूँ, जो माता और पिता दोनोंके कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगा और पौलस्त्य नामसे विख्यात होगा॥ ३०½॥

यस्मात् तु विश्रुतो वेदस्त्वयेहाध्ययतो मम॥ ३१॥
तस्मात् स विश्रवा नाम भविष्यति न संशयः।

'देवि! मैं यहाँ वेदका स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर उसका विशेषरूपसे श्रवण किया, इसलिये तुम्हारा यह पुत्र विश्रवा या विश्रवण कहलायेगा; इसमें संशय नहीं है'॥ ३१½॥

एवमुक्ता तु सा देवी प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ३२॥
अचिरेणैव कालेनासूत विश्रवसं सुतम्।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं यशोधर्मसमन्वितम्॥ ३३॥

'पतिके प्रसन्नचित्त होकर ऐसी बात कहनेपर उस देवीने बड़े हर्षके साथ थोड़े ही समयमें विश्रवा नामक पुत्रको जन्म दिया, जो यश और धर्मसे सम्पन्न होकर तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ ॥ ३२-३३ ॥

श्रुतिमान् समदर्शी च व्रताचाररतस्तथा ।
पितेव तपसा युक्तो ह्यभवद् विश्रवा मुनिः ॥ ३४ ॥

'विश्रवा मुनि वेदके विद्वान्, समदर्शी, व्रत और आचारका पालन करनेवाले तथा पिताके समान ही तपस्वी हुए' ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

—★—

तृतीयः सर्गः

विश्रवासे वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें निवास

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
अचिरेणैव कालेन पितेव तपसि स्थितः ॥ १ ॥

पुलस्त्यके पुत्र मुनिवर विश्रवा थोड़े ही समयमें पिताकी भाँति तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ १ ॥

सत्यवाञ्शीलवान् दान्तः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
सर्वभोगेष्वसंसक्तो नित्यं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायपरायण, बाहर-भीतरसे पवित्र, सम्पूर्ण भोगोंमें अनासक्त तथा सदा ही धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तस्य तु तद् वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः ।
ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम् ॥ ३ ॥

विश्रवाके इस उत्तम आचरणको जानकर महामुनि भरद्वाजने अपनी कन्याका, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी, उनके साथ विवाह कर दिया ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेण भरद्वाजसुतां तदा ।
प्रजान्वीक्षिकया बुद्ध्या श्रेयो ह्यस्य विचिन्तयन् ॥ ४ ॥
मुदा परमया युक्तो विश्रवा मुनिपुङ्गवः ।
स तस्यां वीर्यसम्पन्नमपत्यं परमाद्भुतम् ॥ ५ ॥
जनयामास धर्मज्ञः सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्वृतम् ।
तस्मिञ्जाते तु संहृष्टः स बभूव पितामहः ॥ ६ ॥

धर्मके ज्ञाता मुनिवर विश्रवाने बड़ी प्रसन्नताके साथ धर्मानुसार भरद्वाजकी कन्याका पाणिग्रहण किया और प्रजाका हित-चिन्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा लोककल्याणका विचार करते हुए उन्होंने उसके गर्भसे एक अद्भुत और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया। उसमें सभी ब्राह्मणोचित गुण विद्यमान थे। उसके जन्मसे पितामह पुलस्त्य मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४—६ ॥

दृष्ट्वा श्रेयस्करीं बुद्धिं धनाध्यक्षो भविष्यति ।
नाम चास्याकरोत् प्रीतः सार्धं देवर्षिभिस्तदा ॥ ७ ॥

उन्होंने दिव्य दृष्टिसे देखा—'इस बालकमें संसारका कल्याण करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा' तब उन्होंने बड़े हर्षसे भरकर देवर्षियोंके साथ उसका नामकरण-संस्कार किया ॥ ७ ॥

यस्माद् विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद् विश्रवा इव ।
तस्माद् वैश्रवणो नाम भविष्यत्येष विश्रुतः ॥ ८ ॥

वे बोले—'विश्रवाका यह पुत्र विश्रवाके ही समान उत्पन्न हुआ है; इसलिये यह वैश्रवण नामसे विख्यात होगा' ॥ ८ ॥

स तु वैश्रवणस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
अवर्धताहुतिहुतो महातेजा यथानलः ॥ ९ ॥

कुमार वैश्रवण वहाँ तपोवनमें रहकर उस समय आहुति डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे और महान् तेजसे सम्पन्न हो गये ॥ ९ ॥

तस्याश्रमपदस्थस्य बुद्धिर्जज्ञे महात्मनः ।
चरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परमा गतिः ॥ १० ॥

आश्रममें रहनेके कारण उन महात्मा वैश्रवणके मनमें भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उत्तम धर्मका आचरण करूँ; क्योंकि धर्म ही परमगति है ॥ १० ॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने ।
यन्त्रितो नियमैरुग्रैश्चकार सुमहत्तपः ॥ ११ ॥

यह सोचकर उन्होंने तपस्याका निश्चय करनेके पश्चात् महान् वनके भीतर सहस्रों वर्षोंतक कठोर नियमोंसे बँधकर

बड़ी भारी तपस्या की ॥ ११ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तं तं विधिमकल्पयत्।
जलाशी मारुताहारो निराहारस्तथैव च ॥ १२ ॥
एवं वर्षसहस्राणि जग्मुस्तान्येकवर्षवत्।

वे एक-एक सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर तपस्याकी नयी-नयी विधि ग्रहण करते थे। पहले तो उन्होंने केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे हवा पीकर रहने लगे; फिर आगे चलकर उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार रहने लगे। इस तरह उन्होंने कई सहस्र वर्षोंको एक वर्षके समान बिता दिया ॥ १२½ ॥

अथ प्रीतो महातेजाः सेन्द्रैः सुरगणैः सह ॥ १३ ॥
गत्वा तस्याश्रमपदं ब्रह्मेदं वाक्यमब्रवीत्।

तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर महातेजस्वी ब्रह्माजी इन्द्र आदि देवताओंके साथ उनके आश्रमपर पधारे और इस प्रकार बोले— ॥ १३½ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते वत्स कर्मणानेन सुव्रत ॥ १४ ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते वरार्हस्त्वं महामते।

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुम्हारे इस कर्मसे—तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। महामते! तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो; क्योंकि वर पानेके योग्य हो' ॥ १४½ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणः पितामहमुपस्थितम् ॥ १५ ॥
भगवँल्लोकपालत्वमिच्छेयं लोकरक्षणम्।

यह सुनकर वैश्रवणने अपने निकट खड़े हुए पितामहसे कहा—'भगवन्! मेरा विचार लोककी रक्षा करनेका है, अतः मैं लोकपाल होना चाहता हूँ' ॥ १५½ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणं परितुष्टेन चेतसा ॥ १६ ॥
ब्रह्मा सुरगणैः सार्धं बाढमित्येव हृष्टवत्।

वैश्रवणकी इस बातसे ब्रह्माजीके चित्तको और भी संतोष हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा' ॥ १६½ ॥

अहं वै लोकपालानां चतुर्थं स्रष्टुमुद्यतः ॥ १७ ॥
यमेन्द्रवरुणानां च पदं यत् तव चेप्सितम्।

इसके बाद वे फिर बोले—'बेटा! मैं चौथे लोकपालकी सृष्टि करनेके लिये उद्यत था। यम, इन्द्र और वरुणको जो पद प्राप्त है, वैसा ही लोकपाल-पद तुम्हें भी प्राप्त होगा, जो तुमको अभीष्ट है ॥ १७½ ॥

तद् गच्छ वत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ १८ ॥
शक्राम्बुपयमानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि।

'धर्मज्ञ! तुम प्रसन्नतापूर्वक उस पदको ग्रहण करो और अक्षय निधियोंके स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यमके साथ तुम चौथे लोकपाल कहलाओगे ॥ १८½ ॥

एतच्च पुष्पकं नाम विमानं सूर्यसंनिभम् ॥ १९ ॥
प्रतिगृह्णीष्व यानार्थं त्रिदशैः समतां व्रज।

'यह सूर्यतुल्य तेजस्वी पुष्पकविमान है। इसे अपनी सवारीके लिये ग्रहण करो और देवताओंके समान हो जाओ ॥ १९½ ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सर्व एव यथागतम् ॥ २० ॥
कृतकृत्या वयं तात दत्वा तव वरद्वयम्।

'तात! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम सब लोग जैसे आये हैं, वैसे लौट जायँगे। तुम्हें ये दो वर देकर हम अपनेको कृतकृत्य समझते हैं' ॥ २०½ ॥

इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्थानं त्रिदशैः सह ॥ २१ ॥
गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेषूथ नभस्तलम्।
धनेशः पितरं प्राह प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान् ॥ २२ ॥
भगवँल्लब्धवानस्मि वरमिष्टं पितामहात्।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ अपने स्थानको चले गये। ब्रह्मा आदि देवताओंके आकाशमें चले जानेपर अपने मनको संयममें रखनेवाले धनाध्यक्षने पितासे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने पितामह ब्रह्माजीसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है ॥ २१-२२½ ॥

निवासनं न मे देवो विदधे स प्रजापतिः ॥ २३ ॥
तं पश्य भगवन् कंचिन्निवासं साधु मे प्रभो।
न च पीडा भवेद् यत्र प्राणिनो यस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥

'परंतु उन प्रजापतिदेवने मेरे लिये कोई निवास-स्थान नहीं बताया। अतः भगवन्! अब आप ही मेरे रहनेके योग्य किसी ऐसे स्थानकी खोज कीजिये, जो सभी दृष्टियोंसे अच्छा हो। प्रभो! वह स्थान ऐसा होना चाहिये, जहाँ रहनेसे किसी भी प्राणीको कष्ट न हो' ॥ २३-२४ ॥

एवमुक्तस्तु पुत्रेण विश्रवा मुनिपुंगवः।
वचनं प्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति सत्तम ॥ २५ ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः।
तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥ २६ ॥

अपने पुत्रके ऐसा कहनेपर मुनिवर विश्रवा बोले—'धर्मज्ञ! साधुशिरोमणे! सुनो—दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके शिखरपर एक विशाल पुरी है, जो देवराज इन्द्रकी अमरावती पुरीके समान शोभा पाती है ॥ २५-२६ ॥

लङ्का नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।
राक्षसानां निवासार्थं यथेन्द्रस्यामरावती ॥ २७ ॥

'उसका नाम लङ्का है। इन्द्रकी अमरावतीके समान उस रमणीय पुरीका निर्माण विश्वकर्माने राक्षसोंके रहनेके लिये किया है ॥ २७ ॥

तत्र त्वं वस भद्रं ते लङ्कायां नात्र संशयः।
हेमप्राकारपरिखा यन्त्रशस्त्रसमावृता ॥ २८ ॥

'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम निःसंदेह उस लङ्कापुरीमें ही जाकर रहो। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी

हुई है। उसके चारों ओर चौड़ी खाइयाँ खुदी हुई हैं और वह अनेकानेक यन्त्रों तथा शस्त्रोंसे सुरक्षित है॥ २८॥

रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैदूर्यतोरणा।
राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्दितैः॥ २९॥

'वह पुरी बड़ी ही रमणीय है। उसके फाटक सोने और नीलमके बने हुए हैं। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित हुए राक्षसोंने उस पुरीको त्याग दिया था॥ २९॥

शून्या रक्षोगणैः सर्वैं रसातलतलं गतैः।
शून्या सम्प्रति लङ्का सा प्रभुस्तस्या न विद्यते॥ ३०॥

'वे समस्त राक्षस रसातलको चले गये थे, इसलिये लङ्कापुरी सूनी हो गयी। इस समय भी लङ्कापुरी सूनी ही है, उसका कोई स्वामी नहीं है॥ ३०॥

स त्वं तत्र निवासाय गच्छ पुत्र यथासुखम्।
निर्दोषस्तत्र ते वासो न बाधस्तत्र कस्यचित्॥ ३१॥

'अतः बेटा! तुम वहाँ निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ। वहाँ रहनेमें किसी प्रकारका दोष या खटका नहीं है। वहाँ किसीकी ओरसे कोई विघ्न-बाधा नहीं आ सकती'॥ ३१॥

एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मिष्ठं वचनं पितुः।
निवासयामास तदा लङ्कां पर्वतमूर्धनि॥ ३२॥

अपने पिताके इस धर्मयुक्त वचनको सुनकर धर्मात्मा वैश्रवणने त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बनी हुई लङ्कापुरीमें निवास किया॥ ३२॥

नैर्ऋतानां सहस्रैस्तु हृष्टैः प्रमुदितैः सदा।
अचिरेणैव कालेन सम्पूर्णा तस्य शासनात्॥ ३३॥

उनके निवास करनेपर थोड़े ही दिनोंमें वह पुरी सहस्रों हृष्टपुष्ट राक्षसोंसे भर गयी। उनकी आज्ञासे वे राक्षस वहाँ आकर आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ३३॥

स तु तत्रावसत् प्रीतो धर्मात्मा नैर्ऋतर्षभः।
समुद्रपरिखायां स लङ्कायां विश्रवात्मजः॥ ३४॥

समुद्र जिसके लिये खाईका काम देता था, उस लङ्कानगरीमें विश्रवाके धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण राक्षसोंके राजा हो बड़ी प्रसन्नताके साथ निवास करने लगे॥ ३४॥

काले काले तु धर्मात्मा पुष्पकेण धनेश्वरः।
अभ्यागच्छद् विनीतात्मा पितरं मातरं च हि॥ ३५॥

धर्मात्मा धनेश्वर समय-समयपर पुष्पकविमानके द्वारा आकर अपने माता-पितासे मिल जाया करते थे। उनका हृदय बड़ा ही विनीत था॥ ३५॥

स देवगन्धर्वगणैरभिष्टुत-
स्तथाप्सरोनृत्यविभूषितालयः।
गभस्तिभिः सूर्य इवावभासयन्
पितुः समीपं प्रययौ स वित्तपः॥ ३६॥

देवता और गन्धर्व उनकी स्तुति करते थे। उनका भव्य भवन अप्सराओंके नृत्यसे सुशोभित होता था। वे धनपति कुबेर अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यकी भाँति सब ओर प्रकाश बिखेरते हुए अपने पिताके समीप गये॥ ३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थः सर्गः

राक्षसवंशका वर्णन—हेति, विद्युत्केश और सुकेशकी उत्पत्ति

श्रुत्वागस्त्येरितं वाक्यं रामो विस्मयमागतः।
कथमासीत् तु लङ्कायां सम्भवो रक्षसां पुरा॥ १॥

अगस्त्यजीकी कही हुई इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, राक्षसकुलकी उत्पत्ति तो मुनिवर विश्रवासे ही मानी जाती है। यदि उनसे भी पहले लङ्कापुरीमें राक्षस रहते थे तो उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी॥ १॥

ततः शिरः कम्पयित्वा त्रेताग्निसमविग्रहम्।
तमगस्त्यं मुहुर्दृष्ट्वा स्मयमानोऽभ्यभाषत॥ २॥

इस प्रकार आश्चर्य होनेके अनन्तर सिर हिलाकर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी शरीरवाले अगस्त्यजीकी ओर बारम्बार देखा और मुस्कराकर पूछा—॥ २॥

भगवन् पूर्वमप्येषा लङ्काऽऽसीत् पिशिताशिनाम्।
श्रुत्वेदं भगवद्वाक्यं जातो मे विस्मयः परः॥ ३॥

'भगवन्! कुबेर और रावणसे पहले भी यह लङ्कापुरी मांसभक्षी राक्षसोंके अधिकारमें थी, यह आपके मुँहसे सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ है॥ ३॥

पुलस्त्यवंशादुद्भूता राक्षसा इति नः श्रुतम्।
इदानीमन्यतश्चापि सम्भवः कीर्तितस्त्वया॥ ४॥

'हमने तो यही सुन रखा है कि राक्षसोंकी उत्पत्ति पुलस्त्यजीके कुलसे हुई है; किंतु इस समय आपने किसी दूसरेके कुलसे भी राक्षसोंके प्रादुर्भावकी बात कही है॥ ४॥

रावणात् कुम्भकर्णाच्च प्रहस्ताद् विकटादपि।
रावणस्य च पुत्रेभ्यः किं नु ते बलवत्तराः॥ ५॥

'क्या वे पहलेके राक्षस रावण, कुम्भकर्ण, प्रहस्त, विकट तथा रावणपुत्रोंसे भी बढ़कर बलवान् थे ?' ॥ ५ ॥

क एषां पूर्वको ब्रह्मन् किंनामा च बलोत्कटः ।
अपराधं च कं प्राप्य विष्णुना द्राविताः कथम् ॥ ६ ॥

'ब्रह्मन् ! उनका पूर्वज कौन था और उस उत्कट बलशाली पुरुषका नाम क्या था ? भगवान् विष्णुने इन राक्षसोंका कौन-सा अपराध पाकर किस तरह उन्हें लङ्कासे मार भगाया ?' ॥ ६ ॥

एतद् विस्तरतः सर्वं कथयस्व ममानघ ।
कुतूहलमिदं महां नुद भानुर्यथा तमः ॥ ७ ॥

'निष्पाप महर्षे ! ये सब बातें आप मुझे विस्तारसे बताइये । इनके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है । जैसे सूर्यदेव अन्धकारको दूर करते हैं, उसी तरह आप मेरे इस कौतूहलका निवारण कीजिये' ॥ ७ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा संस्कारालंकृतं शुभम् ।
अथ विस्मयमानस्तमगस्त्यः प्राह राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरघुनाथजीकी वह सुन्दर वाणी पदसंस्कार, वाक्यसंस्कार और अर्थसंस्कारसे अलंकृत थी । उसे सुनकर अगस्त्यजीको यह सोचकर विस्मय हुआ कि ये सर्वज्ञ होकर भी मुझसे अनजानकी भाँति पूछ रहे हैं । तत्पश्चात् उन्होंने श्रीरामसे कहा— ॥ ८ ॥

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसम्भवः ।
तासां गोपायने सत्त्वानसृजत् पद्मसम्भवः ॥ ९ ॥

'रघुनन्दन ! जलसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न प्रजापति ब्रह्माजीने पूर्वकालमें समुद्रगत जलकी सृष्टि करके उसकी रक्षाके लिये अनेक प्रकारके जल-जन्तुओंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

ते सत्त्वाः सत्त्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ।
किं कुर्म इति भाषन्तः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः ॥ १० ॥

'वे जन्तु भूख-प्यासके भयसे पीड़ित हो 'अब हम क्या करें', ऐसी बातें करते हुए अपने जन्मदाता ब्रह्माजीके पास विनीतभावसे गये ॥ १० ॥

प्रजापतिस्तु तान् सर्वान् प्रत्याह प्रहसन्निव ।
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानद ॥ ११ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले रघुवीर ! उन सबको आया देख प्रजापतिने उन्हें वाणीद्वारा सम्बोधित करके हँसते हुए-से कहा— 'जल-जन्तुओ ! तुम यत्नपूर्वक इस जलकी रक्षा करो' ॥ ११ ॥

रक्षाम इति तत्रान्यैर्यक्षाम इति चापरैः ।
भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२ ॥

'वे सब जन्तु भूखे-प्यासे थे । उनमेंसे कुछने कहा— 'हम इस जलकी रक्षा करेंगे' और दूसरेने कहा—'हम इसका यक्षण (पूजन) करेंगे', तब उन भूतोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापतिने उनसे कहा— ॥ १२ ॥

रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः ।
यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु वः ॥ १३ ॥

'तुममेंसे जिन लोगोंने रक्षा करनेकी बात कही है, वे राक्षस नामसे प्रसिद्ध हों और जिन्होंने यक्षण (पूजन) करना स्वीकार किया है, वे लोग यक्ष नामसे ही विख्यात हों' (इस प्रकार वे जीव राक्षस और यक्ष—इन दो जातियोंमें विभक्त हो गये) ॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहेतिश्च भ्रातरौ राक्षसाधिपौ ।
मधुकैटभसंकाशौ बभूवतुररिंदमौ ॥ १४ ॥

'उन राक्षसोंमें हेति और प्रहेति नामवाले दो भाई थे, जो समस्त राक्षसोंके अधिपति थे । शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ वे दोनों वीर मधु और कैटभके समान शक्तिशाली थे ॥ १४ ॥

प्रहेतिर्धार्मिकस्तत्र तपोवनगतस्तदा ।
हेतिर्दारक्रियार्थं तु परं यत्नमथाकरोत् ॥ १५ ॥

'उनमें प्रहेति धर्मात्मा था; अतः वह तत्काल तपोवनमें जाकर तपस्या करने लगा । परंतु हेतिने विवाहके लिये बड़ा प्रयत्न किया ॥ १५ ॥

स कालभगिनीं कन्यां भयां नाम महाभयाम् ।
उदावहदमेयात्मा स्वयमेव महामतिः ॥ १६ ॥

'वह अमेय आत्मबलसे सम्पन्न और बड़ा बुद्धिमान् था । उसने स्वयं ही याचना करके कालकी कुमारी भगिनी भयाके साथ विवाह किया । भया बड़ी भयानक थी ॥ १६ ॥

स तस्यां जनयामास हेती राक्षसपुंगवः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो विद्युत्केशमिति श्रुतम् ॥ १७ ॥

'राक्षसराज हेतिने भयाके गर्भसे एक पुत्रको उत्पन्न किया, जो विद्युत्केशके नामसे प्रसिद्ध था । उसे जन्म देकर हेति पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ समझा जाने लगा ॥ १७ ॥

विद्युत्केशो हेतिपुत्रः स दीप्तार्कसमप्रभः ।
व्यवर्धत महातेजास्तोयमध्य इवाम्बुजम् ॥ १८ ॥

'हेतिपुत्र विद्युत्केश दीप्तिमान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था । वह महातेजस्वी बालक जलमें कमलकी भाँति दिनों-दिन बढ़ने लगा ॥ १८ ॥

स यदा यौवनं भद्रमनुप्राप्तो निशाचरः ।
ततो दारक्रियां तस्य कर्तुं व्यवसितः पिता ॥ १९ ॥

'निशाचर विद्युत्केश जब बढ़कर उत्तम युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसके पिता राक्षसराज हेतिने अपने पुत्रका व्याह कर देनेका निश्चय किया ॥ १९ ॥

संध्यादुहितरं सोऽथ संध्यातुल्यां प्रभावतः ।
वरयामास पुत्रार्थं हेती राक्षसपुंगवः ॥ २० ॥

'राक्षसराजशिरोमणि हेतिने अपने पुत्रको ब्याहनेके लिये संध्याकी पुत्रीका, जो प्रभावमें अपनी माता संध्याके ही समान थी, वरण किया ॥ २० ॥

अवश्यमेव दातव्या परस्मै सेति संध्यया ।
चिन्तयित्वा सुता दत्ता विद्युत्केशाय राघव ॥ २१ ॥

'रघुनन्दन! संध्याने सोचा—'कन्याका किसी दूसरेके साथ व्याह तो अवश्य ही करना पड़ेगा, अतः इसीके साथ क्यों न कर दूँ?' यह विचारकर उसने अपनी पुत्री विद्युत्केशको व्याह दी ॥ २१ ॥

संध्यायास्तनयां लब्ध्वा विद्युत्केशो निशाचरः ।
रमते स तया सार्धं पौलोम्या मघवानिव ॥ २२ ॥

'संध्याकी उस पुत्रीको पाकर निशाचर विद्युत्केश उसके साथ उसी तरह रमण करने लगा, जैसे देवराज इन्द्र पुलोमपुत्री शचीके साथ विहार करते हैं ॥ २२ ॥

केनचित्त्वथ कालेन राम सालकटङ्कटा ।
विद्युत्केशाद् गर्भमाप घनराजिरिवार्णवात् ॥ २३ ॥

'श्रीराम! संध्याकी उस पुत्रीका नाम सालकटङ्कटा था। कुछ कालके पश्चात् उसने विद्युत्केशसे उसी तरह गर्भ धारण किया, जैसे गर्जनाकी पंक्ति समुद्रसे जल ग्रहण करती है ॥ २३ ॥

ततः सा राक्षसी गर्भं घनगर्भसमप्रभम् ।
प्रसूता मन्दरं गत्वा गङ्गा गर्भमिवाग्निजम् ।
समुत्सृज्य तु सा गर्भं विद्युत्केशरतार्थिनी ॥ २४ ॥

तदनन्तर उस राक्षसीने मन्दराचलपर जाकर विद्युत्के समान कान्तिमान् बालकको जन्म दिया, मानो गङ्गाने अग्निके छोड़े हुए भगवान् शिवके तेजःस्वरूप गर्भ (कुमार कार्तिकेय) को उत्पन्न किया हो। उस नवजात शिशुको वहीं छोड़कर वह विद्युत्केशके साथ रति-क्रीडाके लिये चली गयी ॥ २४ ॥

रेमे तु सार्धं पतिना विस्मृत्य सुतमात्मजम् ।
उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो घनशब्दसमस्वनः ॥ २५ ॥

'अपने बेटेको भुलाकर सालकटङ्कटा पतिके साथ रमण करने लगी। उधर उसका छोड़ा हुआ वह गर्भ मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान शब्द करने लगा ॥ २५ ॥

तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरदर्कसमद्युतिः ।
निधायास्ये स्वयं मुष्टिं रुरोद शनकैस्तदा ॥ २६ ॥

उसके शरीरकी कान्ति शरत्कालके सूर्यकी भाँति उद्भासित होती थी। माताका छोड़ा हुआ वह शिशु स्वयं ही अपनी मुट्ठी मुँहमें डालकर धीरे-धीरे रोने लगा ॥ २६ ॥

ततो वृषभमास्थाय पार्वत्या सहितः शिवः ।
वायुमार्गेण गच्छन् वै शुश्राव रुदितस्वनम् ॥ २७ ॥

'उस समय भगवान् शंकर पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़कर वायुमार्ग (आकाश) से जा रहे थे। उन्होंने उस बालकके रोनेकी आवाज सुनी ॥ २७ ॥

अपश्यदुमया सार्धं रुदन्तं राक्षसात्मजम् ।
कारुण्यभावात् पार्वत्या भवस्त्रिपुरसूदनः ॥ २८ ॥
तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव वयःसमम् ।

'सुनकर पार्वतीसहित शिवने उस रोते हुए राक्षस-कुमारकी ओर देखा। उसकी दयनीय अवस्थापर दृष्टिपात करके माता पार्वतीके हृदयमें करुणाका स्रोत उमड़ उठा और उनकी प्रेरणासे त्रिपुरसूदन भगवान् शिवने उस राक्षस-बालकको उसकी माताकी अवस्थाके समान ही नौजवान बना दिया ॥ २८½ ॥

अमरं चैव तं कृत्वा महादेवोऽक्षरोऽव्ययः ॥ २९ ॥
पुरमाकाशगं प्रादात् पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।

'इतना ही नहीं, पार्वतीजीका प्रिय करनेकी इच्छासे अविनाशी एवं निर्विकार भगवान् महादेवने उस बालकको अमर बनाकर उसके रहनेके लिये एक आकाशचारी नगराकार विमान दे दिया ॥ २९½ ॥

उमयापि वरो दत्तो राक्षसीनां नृपात्मज ॥ ३० ॥
सद्योपलब्धिर्गर्भस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।
सद्य एव वयःप्राप्तिं मातुरेव वयःसमम् ॥ ३१ ॥

'राजकुमार! तत्पश्चात् पार्वतीजीने भी यह वरदान दिया कि आजसे राक्षसियाँ जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी; फिर शीघ्र ही उनका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल बढ़कर माताके ही समान अवस्थाका हो जायगा ॥ ३०-३१ ॥

ततः सुकेशो वरदानगर्वितः
श्रियं प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्श्वतः ।
चचार सर्वत्र महान् महामतिः
खगं पुरं प्राप्य पुरंदरो यथा ॥ ३२ ॥

'विद्युत्केशका वह पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह बड़ा बुद्धिमान् था। भगवान् शंकरका वरदान पानेसे उसे बड़ा गर्व हुआ और वह उन परमेश्वरके पाससे अद्भुत सम्पत्ति एवं आकाशचारी विमान पाकर देवराज इन्द्रकी भाँति सर्वत्र अबाध-गतिसे विचरने लगा ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

सुकेशके पुत्र माल्यवान्, सुमाली और मालीकी संतानोंका वर्णन

सुकेशं धार्मिकं दृष्ट्वा वरलब्धं च राक्षसम्।
ग्रामणीर्नाम गन्धर्वो विश्वावसुसमप्रभः ॥ १ ॥
तस्य देववती नाम द्वितीया श्रीरिवात्मजा।
त्रिषु लोकेषु विख्याता रूपयौवनशालिनी ॥ २ ॥
तां सुकेशाय धर्मात्मा ददौ रक्षःश्रियं यथा।

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर एक दिन विश्वावसुके समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्वने राक्षस सुकेशको धर्मात्मा तथा वरप्राप्त वैभवसे सम्पन्न देख अपनी देववती नामक कन्याका उसके साथ ब्याह कर दिया। वह कन्या दूसरी लक्ष्मीके समान दिव्य रूप और यौवनसे सुशोभित एवं तीनों लोकोंमें विख्यात थी। धर्मात्मा ग्रामणीने राक्षसोंकी मूर्तिमती राजलक्ष्मीके समान देववतीका हाथ सुकेशके हाथमें दे दिया ॥१-२½॥

वरदानकृतैश्वर्यं सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ ३ ॥
आसीद् देववती तुष्टा धनं प्राप्येव निर्धनः।

वरदानमें मिले हुए ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रियतम पतिको पाकर देववती बहुत संतुष्ट हुई, मानो किसी निर्धनको धनकी राशि मिल गयी हो ॥ ३½॥

स तया सह संयुक्तो रराज रजनीचरः ॥ ४ ॥
अञ्जनादभिनिष्क्रान्तः करेणुवेव महागजः।

जैसे अञ्जन नामक दिग्गजसे उत्पन्न कोई महान् गज किसी हथिनीके साथ शोभा पा रहा हो, उसी तरह वह राक्षस गन्धर्व-कन्या देववतीके साथ रहकर अधिक शोभा पाने लगा ॥४½॥

ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥ ५ ॥
त्रीन् पुत्राञ्जनयामास त्रेताग्निसमविग्रहान्।

रघुनन्दन! तदनन्तर समय आनेपर सुकेशने देववतीके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो तीन[1] अग्नियोंके समान तेजस्वी थे ॥५½॥

माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम् ॥ ६ ॥
त्रीम्बिनेत्रसमान् पुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिपः।

उनके नाम थे—माल्यवान्, सुमाली और माली। माली बलवानोंमें श्रेष्ठ था। वे तीनों त्रिनेत्रधारी महादेवजीके समान शक्तिशाली थे। उन तीनों राक्षसपुत्रोंको देखकर राक्षसराज सुकेश बड़ा प्रसन्न हुआ ॥६½॥

त्रयो लोका इवाव्यग्राः स्थितास्त्रय इवाग्नयः ॥ ७ ॥
त्रयो मन्त्रा इवात्युग्रास्त्रयो घोरा इवामयाः।

वे तीनों लोकोंके समान सुस्थिर, तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी, तीन मन्त्रों (शक्तियों[2] अथवा वेदों[3]) के समान उग्र तथा तीन रोगों[4] के समान अत्यन्त भयंकर थे ॥७½॥

त्रयः सुकेशस्य सुतास्त्रेताग्निसमतेजसः ॥ ८ ॥
विवृद्धिमगमंस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव।

सुकेशके वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्नियोंके समान तेजस्वी थे। वे वहाँ उसी तरह बढ़ने लगे, जैसे उपेक्षावश दबा न करनेसे रोग बढ़ते हैं ॥८½॥

वरप्राप्तिं पितुस्ते तु ज्ञात्वैश्वर्यं तपोबलात् ॥ ९ ॥
तपस्तप्तुं गता मेरुं भ्रातरः कृतनिश्चयाः।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि हमारे पिताको तपोबलके द्वारा वरदान एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है, तब वे तीनों भाई तपस्या करनेका निश्चय करके मेरुपर्वतपर चले गये ॥९½॥

प्रगृह्य नियमान् घोरान् राक्षसा नृपसत्तम ॥ १० ॥
विचेरुस्ते तपो घोरं सर्वभूतभयावहम्।

नृपश्रेष्ठ! वे राक्षस वहाँ भयंकर नियमोंको ग्रहण करके घोर तपस्या करने लगे। उनकी वह तपस्या समस्त प्राणियोंको भय देनेवाली थी ॥१०½॥

सत्यार्जवशमोपेतैस्तपोभिर्भुवि दुर्लभैः ॥ ११ ॥
संतापयन्तस्त्रींल्लोकान् सदेवासुरमानुषान्।

सत्य, सरलता एवं शम-दम आदिसे युक्त तपके द्वारा, जो भूतलपर दुर्लभ है, वे देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको संतप्त करने लगे ॥११½॥

ततो विभुश्चतुर्वक्त्रो विमानवरमाश्रितः ॥ १२ ॥
सुकेशपुत्रानामन्त्र्य वरदोऽस्मीत्यभाषत।

तब चार मुखवाले भगवान् ब्रह्मा एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वहाँ गये और सुकेशके पुत्रोंको सम्बोधित करके बोले—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ' ॥१२½॥

ब्रह्माणं वरदं ज्ञात्वा सेन्द्रैर्देवगणैर्वृतम् ॥ १३ ॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे वेपमाना इव द्रुमाः।

इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए वरदायक ब्रह्माजीको आया जान वे सब-के-सब वृक्षोंके समान काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले— ॥१३½॥

---

१. गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि।
२. प्रभु-शक्ति, मन्त्र-शक्ति तथा मन्त्र-शक्ति—ये तीन शक्तियाँ हैं।
३. ऋग्, यजु और साम—ये तीन वेद हैं।
४. वात, पित्त और कफ—इनके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले तीन प्रकारके रोग हैं।

तपसाऽऽराधितो देव यदि नो दिशसे वरम् ॥ १४ ॥
अजेयाः शत्रुहन्तारस्तथैव चिरजीविनः ।
प्रभविष्णवो भवामेति परस्परमनुव्रताः ॥ १५ ॥

'देव ! यदि आप हमारी तपस्यासे आराधित एवं संतुष्ट होकर हमें वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके। हम शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ, चिरजीवी तथा प्रभावशाली हों। साथ ही हमलोगोंमें परस्पर प्रेम बना रहे' ॥ १४-१५ ॥

एवं भविष्यथेत्युक्त्वा सुकेशतनयान् विभुः ।
स ययौ ब्रह्मलोकाय ब्रह्मा ब्राह्मणवत्सलः ॥ १६ ॥

यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम ऐसे ही होओगे'। सुकेशके पुत्रोंसे ऐसा कहकर ब्राह्मणवत्सल ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १६ ॥

वरं लब्ध्वा तु ते सर्वे राम रात्रिंचरास्तदा ।
सुरासुरान् प्रबाधन्ते वरदानसुनिर्भयाः ॥ १७ ॥

श्रीराम ! वर पाकर वे सब निशाचर उस वरदानसे अत्यन्त निर्भय हो देवताओं तथा असुरोंको भी बहुत कष्ट देने लगे ॥ १७ ॥

तैर्बाध्यमानास्त्रिदशाः सर्षिसङ्घाः सचारणाः ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ति निरयस्था यथा नराः ॥ १८ ॥

उनके द्वारा सताये जाते हुए देवता, ऋषि-समुदाय और चारण नरकमें पड़े हुए मनुष्योंके समान किसीको अपना रक्षक या सहायक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

अथ ते विश्वकर्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ।
ऊचुः समेत्य संहृष्टा राक्षसा रघुसत्तम ॥ १९ ॥

'रघुवंशशिरोमणे ! एक दिन शिल्प-कर्मके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ अविनाशी विश्वकर्माके पास जाकर वे राक्षस हर्ष और उत्साहसे भरकर बोले— ॥ १९ ॥

ओजस्तेजोबलवतां महतामात्मतेजसा ।
गृहकर्ता भवानेव देवानां हृदयेप्सितम् ॥ २० ॥
अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते ।
हिमवन्तमुपाश्रित्य मेरुं मन्दरमेव वा ॥ २१ ॥
महेश्वरगृहप्रख्यं गृहं नः क्रियतां महत् ।

'महामते ! जो ओज, बल और तेजसे सम्पन्न होनेके कारण महान् हैं, उन देवताओंके लिये आप ही अपनी शक्तिसे मनोवाञ्छित भवनका निर्माण करते हैं, अतः हमारे लिये भी आप हिमालय, मेरु अथवा मन्दराचलपर चलकर भगवान् शंकरके दिव्य भवनकी भाँति एक विशाल निवासस्थानका निर्माण कीजिये' ॥ २०-२१½ ॥

विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजः ॥ २२ ॥
निवासं कथयामास शक्रस्येवामरावतीम् ।

यह सुनकर महाबाहु विश्वकर्माने उन राक्षसोंको एक ऐसे निवासस्थानका पता बताया, जो इन्द्रकी अमरावतीको भी लज्जित करनेवाला था ॥ २२½ ॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ २३ ॥
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वरः ।

(वे बोले—) 'राक्षसपतियो ! दक्षिण समुद्रके तटपर एक त्रिकूट नामक पर्वत है और दूसरा सुवेल नामसे विख्यात शैल है ॥ २३½ ॥

शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥ २४ ॥
शकुनैरपि दुष्प्रापे टङ्कच्छिन्नचतुर्दिशि ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥ २५ ॥
स्वर्णप्राकारसंवीता हेमतोरणसंवृता ।
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ २६ ॥

'उस त्रिकूटपर्वतके मझले शिखरपर जो हरा-भरा होनेके कारण मेघके समान नीला दिखायी देता है तथा जिसके चारों ओरके आश्रय टाँकोंसे काट दिये गये हैं, अतएव जहाँ पक्षियोंके लिये भी पहुँचना कठिन है, मैंने इन्द्रकी आज्ञासे लङ्का नामक नगरीका निर्माण किया है। वह तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी है। उसके चारों ओर सोनेकी चहारदीवारी है और उसमें सोनेके ही फाटक लगे हैं ॥ २४—२६ ॥

तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुंगवाः ।
अमरावतीं समासाद्य सेन्द्रा इव दिवौकसः ॥ २७ ॥

'दुर्धर्ष राक्षसशिरोमणियो ! जैसे इन्द्र आदि देवता अमरावतीपुरीका आश्रय लेकर रहते हैं, उसी प्रकार तुम लोग भी उस लङ्कापुरीमें जाकर निवास करो ॥ २७ ॥

लङ्कादुर्गं समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्वृताः ।
भविष्यथ दुराधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूदनाः ॥ २८ ॥

'शत्रुसूदन वीरो ! लङ्काके दुर्गका आश्रय लेकर बहुत-से राक्षसोंके साथ जब तुम निवास करोगे, उस समय शत्रुओंके लिये तुमपर विजय पाना अत्यन्त कठिन होगा' ॥ २८ ॥

विश्वकर्मवचः श्रुत्वा ततस्ते राक्षसोत्तमाः ।
सहस्रानुचरा भूत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम् ॥ २९ ॥

विश्वकर्माकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ राक्षस सहस्रों अनुचरोंके साथ उस पुरीमें जाकर बस गये ॥ २९ ॥

दृढप्राकारपरिखां हैमैर्गृहशतैर्वृताम् ।
लङ्कामवाप्य ते हृष्टा न्यवसन् रजनीचराः ॥ ३० ॥

उसकी खाई और चहारदीवारी बड़ी मजबूत बनी थी। सोनेके सैकड़ों महल उस नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस लङ्कापुरीमें पहुँचकर वे निशाचर बड़े हर्षके साथ वहाँ रहने लगे ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यथाकामं च राघव ।
नर्मदा नाम गन्धर्वी बभूव रघुनन्दन ॥ ३१ ॥
तस्याः कन्यात्रयं ह्यासीद्ध्रीश्रीकीर्तिसमद्युति ।
ज्येष्ठक्रमेण सा तेषां राक्षसानामराक्षसी ॥ ३२ ॥
कन्यास्ताः प्रददौ हृष्टाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।

रघुकुलनन्दन श्रीराम ! इन्हीं दिनों नर्मदा नामकी एक गन्धर्वी थी। उसके तीन कन्याएँ हुईं, जो ह्री, श्री और कीर्ति*-के समान शोभासम्पन्न थीं। इनकी माता यद्यपि राक्षसी नहीं थी तो भी उसने अपनी रुचिके अनुसार सुकेशके उन तीनों राक्षसजातीय पुत्रोंके साथ अपनी कन्याओंका ज्येष्ठ आदि अवस्थाके अनुसार विवाह कर दिया। वे कन्याएँ बहुत प्रसन्न थीं। उनके मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर थे ॥३१-३२½॥

त्रयाणां राक्षसेन्द्राणां तिस्रो गन्धर्वकन्यकाः ॥ ३३ ॥
दत्ता मात्रा महाभागा नक्षत्रे भगदैवते ।

माता नर्मदाने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उन तीनों महाभाग्यवती गन्धर्व-कन्याओंको उन तीनों राक्षसराजोंके हाथमें दे दिया ॥३३½॥

कृतदारास्तु ते राम सुकेशतनयास्तदा ॥ ३४ ॥
चिक्रीडुः सह भार्याभिरप्सरोभिरिवामराः ।

श्रीराम ! जैसे देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार सुकेशके पुत्र विवाहके पश्चात् अपनी उन पत्नियोंके साथ रहकर लौकिक सुखका उपभोग करने लगे ॥३४½॥

ततो माल्यवतो भार्या सुन्दरी नाम सुन्दरी ॥ ३५ ॥
स तस्यां जनयामास यदपत्यं निबोध तत् ।

उनमें माल्यवान्‌की स्त्रीका नाम सुन्दरी था। वह अपने नामके अनुरूप ही परम सुन्दरी थी। माल्यवान्‌से उसके गर्भसे जिन संतानोंको जन्म दिया, उन्हें बता रहा हूँ, सुनिये ॥३५½॥

वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षो दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥ ३६ ॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च मत्तोन्मत्तौ तथैव च ।
अनला चाभवत् कन्या सुन्दर्यां राम सुन्दरी ॥ ३७ ॥

वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, राक्षस दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त—ये सात पुत्र थे। श्रीराम ! इनके अतिरिक्त सुन्दरीके गर्भसे अनला नामवाली एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी ॥ ३६-३७ ॥

सुमालिनोऽपि भार्याऽऽसीत् पूर्णचन्द्रनिभानना ।
नाम्ना केतुमती राम प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३८ ॥

सुमालीकी पत्नी भी बड़ी सुन्दरी थी। उसका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर और नाम केतुमती था। सुमालीको वह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी ॥ ३८ ॥

सुमाली जनयामास यदपत्यं निशाचरः ।
केतुमत्यां महाराज तन्निबोधानुपूर्वशः ॥ ३९ ॥

महाराज ! निशाचर सुमालीने केतुमतीके गर्भसे जो संतानें उत्पन्न की थीं, उनका भी क्रमशः परिचय दिया जा रहा है, सुनिये ॥ ३९ ॥

प्रहस्तोऽकम्पनश्चैव विकटः कालिकामुखः ।
धूम्राक्षश्चैव दण्डश्च सुपार्श्वश्च महाबलः ॥ ४० ॥
संह्रादिः प्रघसश्चैव भासकर्णश्च राक्षसः ।
राका पुष्पोत्कटा चैव कैकसी च शुचिस्मिताः ॥ ४१ ॥
कुम्भीनसी च इत्येते सुमालेः प्रसवाः स्मृताः ॥ ४२ ॥

प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस तथा राक्षस भासकर्ण—ये सुमालीके पुत्र थे और राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी—ये चार पवित्र मुस्कानवाली उसकी कन्याएँ थीं। ये सब सुमालीकी संतानें बतायी गयी हैं ॥ ४०—४२ ॥

मालेस्तु वसुदा नाम गन्धर्वी रूपशालिनी ।
भार्यासीत् पद्मपत्राक्षी स्वक्षी यक्षीवरोपमा ॥ ४३ ॥

मालीकी पत्नी गन्धर्वकन्या वसुदा थी, जो अपने रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित होती थी। उसके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान विशाल एवं सुन्दर थे। वह श्रेष्ठ यक्ष-पत्नियोंके समान सुन्दरी थी ॥ ४३ ॥

सुमालेरनुजस्तस्यां जनयामास यत् प्रभो ।
अपत्यं कथ्यमानं तु मया त्वं शृणु राघव ॥ ४४ ॥

प्रभो ! रघुनन्दन ! सुमालीके छोटे भाई मालीने वसुदाके गर्भसे जो संतति उत्पन्न की थी, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये ॥ ४४ ॥

अनलश्चानिलश्चैव हरः सम्पातिरेव च ।
एते विभीषणामात्या मालेरास्ते निशाचराः ॥ ४५ ॥

अनल, अनिल, हर और सम्पाति—ये चार निशाचर मालीके ही पुत्र थे, जो इस समय विभीषणके मन्त्री हैं ॥ ४५ ॥

ततस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो
निशाचरैः पुत्रशतैश्च संवृताः ।
सुरान् सहेन्द्रानृषिनागयक्षान्
बबाधिरे तान् बहुवीर्यदर्पिताः ॥ ४६ ॥

माल्यवान् आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने सैकड़ों पुत्रों तथा अन्यान्य निशाचरोंके साथ रहकर अपने बाहुबलके अभिमानसे युक्त हो इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षोंको पीड़ा देने लगे ॥ ४६ ॥

जगद्भ्रमन्तोऽनिलवद् दुरासदा
रणेषु मृत्युप्रतिमानतेजसः ।
वरप्रदानादपि गर्विता भृशं
क्रतुक्रियाणां प्रशमंकराः सदा ॥ ४७ ॥

वे वायुकी भाँति सारे संसारमें विचरनेवाले थे। युद्धमें उन्हें जीतना बहुत ही कठिन था। वे मृत्युके तुल्य तेजस्वी थे। वरदान मिल जानेसे भी उनका घमंड बहुत बढ़ गया था; अतः वे यज्ञादि क्रियाओंका सदा अत्यन्त विनाश किया करते थे ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

---

* ये तीन देवियाँ हैं, जो क्रमशः लज्जा, शोभा-सम्पत्ति और कीर्तिकी अधिष्ठात्री मानी गयी हैं।

षष्ठः सर्गः

देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राक्षसोंके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे आश्वासन पाकर लौटना, राक्षसोंका देवताओंपर आक्रमण और भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिये आना

तैर्बध्यमाना देवाश्च ऋषयश्च तपोधनाः।
भयार्ताः शरणं जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम्॥ १॥

(महर्षि अगस्त्य कहते हैं—रघुनन्दन!) इन राक्षसोंसे पीड़ित होते हुए देवता तथा तपोधन ऋषि भयसे व्याकुल हो देवाधिदेव महादेवजीकी शरणमें गये॥ १॥

जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम्॥ २॥
ते समेत्य तु कामारिं त्रिपुरारिं त्रिलोचनम्।
ऊचुः प्राञ्जलयो देवा भयगद्गदभाषिणः॥ ३॥

जो जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, सम्पूर्ण जगत्के आधार, आराध्य देव और परम गुरु हैं, उन कामनाशक, त्रिपुरविनाशक, त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवके पास जाकर वे सब देवता हाथ जोड़ भयसे गद्गदवाणीमें बोले—॥ २-३॥

सुकेशपुत्रैर्भगवन् पितामहवरोद्धतैः।
प्रजाध्यक्ष प्रजाः सर्वा बाध्यन्ते रिपुबाधनैः॥ ४॥

'भगवन्! प्रजानाथ! ब्रह्माजीके वरदानसे उन्मत्त हुए सुकेशके पुत्र शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले साधनाद्वारा सम्पूर्ण प्रजाको बड़ा कष्ट पहुँचा रहे हैं॥ ४॥

शरण्यान्यशरण्यानि ह्याश्रमाणि कृतानि नः।
स्वर्गाच्च देवान् प्रच्याव्य स्वर्गे क्रीडन्ति देववत्॥ ५॥

'सबको शरण देने योग्य जो हमारे आश्रम थे, उन्हें उन राक्षसोंने निवासके योग्य नहीं रहने दिया है—उजाड़ डाला है। देवताओंको स्वर्गसे हटाकर वे स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाये बैठे हैं और देवताओंकी भाँति स्वर्गमें विहार करते हैं॥ ५॥

अहं विष्णुरहं रुद्रो ब्रह्माहं देवराडहम्।
अहं यमश्च वरुणश्चन्द्रोऽहं रविरप्यहम्॥ ६॥
इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसाः।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुरःसराः॥ ७॥

'माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं—'मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ तथा मैं ही देवराज इन्द्र, यमराज, वरुण, चन्द्रमा और सूर्य हूँ' इस प्रकार अहंकार प्रकट करते हुए वे रणदुर्जय निशाचर तथा उनके अग्रगामी सैनिक हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं॥ ६-७॥

तन्नो देव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि।
अशिवं वपुरास्थाय जहि वै देवकण्टकान्॥ ८॥

'देव! उनके भयसे हम बहुत घबराये हुए हैं, इसलिये आप हमें अभयदान दीजिये तथा रौद्र रूप धारण करके देवताओंके लिये कण्टक बने हुए उन राक्षसोंका संहार कीजिये'॥ ८॥

इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः कपर्दी नीललोहितः।
सुकेशं प्रति सापेक्षः प्राह देवगणान् प्रभुः॥ ९॥

समस्त देवताओंके ऐसा कहनेपर नील एवं लोहित वर्णवाले जटाजूटधारी भगवान् शंकर सुकेशके प्रति घनिष्ठता रखनेके कारण उनसे इस प्रकार बोले—॥ ९॥

अहं तान् न हनिष्यामि ममावध्या हि तेऽसुराः।
किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि यो वै तान् निहनिष्यति॥ १०॥

'देवगण! मैंने सुकेशके जीवनकी रक्षा की है। वे असुर सुकेशके ही पुत्र हैं; इसलिये मेरे द्वारा मारे जानेयोग्य नहीं हैं। अतः मैं तो उनका वध नहीं करूँगा; परंतु तुम्हें एक ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन निशाचरोंका वध करेंगे॥ १०॥

एतमेव समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षयः।
गच्छध्वं शरणं विष्णुं हनिष्यति स तान् प्रभुः॥ ११॥

'देवताओ और महर्षियो! तुम इसी उद्योगको सामने रखकर तत्काल भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ। वे प्रभु अवश्य उनका नाश करेंगे'॥ ११॥

ततस्तु जयशब्देन प्रतिनन्द्य महेश्वरम्।
विष्णोः समीपमाजग्मुर्निशाचरभयार्दिताः॥ १२॥

यह सुनकर सब देवता जय-जयकारके द्वारा महेश्वरका अभिनन्दन करके उन निशाचरोंके भयसे पीड़ित हो भगवान् विष्णुके समीप आये॥ १२॥

शङ्खचक्रधरं देवं प्रणम्य बहुमान्य च।
ऊचुः सम्भ्रान्तवद् वाक्यं सुकेशतनयान् प्रति॥ १३॥

शङ्ख, चक्र धारण करनेवाले उन नारायणदेवको नमस्कार करके देवताओंने उनके प्रति बहुत अधिक सम्मानका भाव प्रकट किया और सुकेशके पुत्रोंके विषयमें बड़ी घबराहटके साथ इस प्रकार कहा—॥ १३॥

सुकेशतनयैर्देव त्रिभिस्त्रेताग्निसंनिभैः।
आक्रम्य वरदानेन स्थानान्यपहृतानि नः॥ १४॥

'देव! सुकेशके तीन पुत्र त्रिविध अग्नियोंके तुल्य तेजस्वी हैं। उन्होंने वरदानके बलसे आक्रमण करके हमारे स्थान छीन लिये हैं॥ १४॥

लङ्का नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता।
तत्र स्थिताः प्रबाधन्ते सर्वान् नः क्षणदाचराः॥ १५॥

त्रिकूटपर्वतके शिखरपर जो लङ्का नामवाली दुर्गम नगरी

है, वहीं रहकर वे निशाचर हम सभी देवताओंको क्लेश पहुँचाते रहते हैं ॥ १५ ॥

स त्वमस्मद्धितार्थाय जहि तान् मधुसूदन ।
शरणं त्वां वयं प्राप्ता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १६ ॥

'मधुसूदन ! आप हमारा हित करनेके लिये उन असुरोंका वध करें । देवेश्वर ! हम आपकी शरणमें आये हैं । आप हमारे आश्रयदाता हों ॥ १६ ॥

चक्रकृत्तास्यकमलान् निवेदय यमाय वै ।
येषुभयदोऽस्माकं नान्योऽस्ति भवता विना ॥ १७ ॥

'अपने चक्रसे उनका कमलोपम मस्तक काटकर आप यमराजको भेंट कर दीजिये । आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इस भयके अवसरपर हमें अभय दान दे सके ॥ १७ ॥

राक्षसान् समरे हृष्टान् सानुबन्धान् मदोद्धतान् ।
नुद त्वं नो भयं देव नीहारमिव भास्करः ॥ १८ ॥

'देव ! ये राक्षस मदसे मतवाले हो रहे हैं । हमें कष्ट देकर हर्षसे फूले नहीं समाते हैं; अतः आप समराङ्गणमें सगे-सम्बन्धियोंसहित उनका वध करके हमारे भयको उसी तरह दूर कर दीजिये, जैसे सूर्यदेव कुहरेको नष्ट कर देते हैं' ॥ १८ ॥

इत्येवं दैवतैरुक्तो देवदेवो जनार्दनः ।
अभयं भयदोऽरीणां दत्त्वा देवानुवाच ह ॥ १९ ॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर शत्रुओंको भय देनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उन्हें अभय दान देकर बोले— ॥ १९ ॥

सुकेशं राक्षसं जाने ईशानवरदर्पितम् ।
नाञ्जास्य तनयाञ्जाने येषां ज्येष्ठः स माल्यवान् ॥ २० ॥
नानहं समतिक्रान्तमर्यादान् राक्षसाधमान् ।
निहनिष्यामि संक्रुद्धः सुरा भवत विज्वराः ॥ २१ ॥

'देवताओ ! मैं सुकेश नामक राक्षसको जानता हूँ । वह भगवान् शंकरका वर पाकर अभिमानसे उन्मत्त हो उठा है । उसके उन पुत्रोंको भी जानता हूँ, जिनमें माल्यवान् सबसे बड़ा है । वे नीच राक्षस धर्मकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, अतः मैं क्रोधपूर्वक उनका विनाश करूँगा । तुमलोग निश्चिन्त हो जाओ' ॥ २०-२१ ॥

इत्युक्तास्ते सुराः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
यथावासं ययुर्हृष्टाः प्रशंसन्तो जनार्दनम् ॥ २२ ॥

सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इस प्रकार आश्वासन देनेपर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ । वे उन जनार्दनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥

त्रिदशानां समुद्योगं माल्यवांस्तु निशाचरः ।
श्रुत्वा तौ भ्रातरौ वीराविदं वचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥

देवताओंके इस उद्योगका समाचार सुनकर निशाचर माल्यवान्‌ने अपने दोनों वीर भाइयोंसे इस प्रकार कहा— ॥ २३ ॥

अमरा ऋषयश्चैव संगम्य किल शङ्करम् ।
अस्मद्वधं परीप्सन्त इदं वचनमब्रुवन् ॥ २४ ॥

'सुननेमें आया है कि देवता और ऋषि मिलकर हमलोगोंका वध करना चाहते हैं । इसके लिये उन्होंने भगवान् शंकरके पास जाकर यह बात कही ॥ २४ ॥

सुकेशतनया देव वरदानबलोद्धताः ।
बाधन्तेऽस्मान् समुद्दृप्ता घोररूपाः पदे पदे ॥ २५ ॥

'देव ! सुकेशके पुत्र आपके वरदानके बलसे उद्दण्ड और अभिमानसे उन्मत्त हो उठे हैं । वे भयंकर राक्षस पग-पगपर हमलोगोंको सता रहे हैं ॥ २५ ॥

राक्षसैरभिभूताः स्मो न शक्ताः स्म प्रजापते ।
स्वेषु सद्मसु संस्थातुं भयात् तेषां दुरात्मनाम् ॥ २६ ॥

'प्रजानाथ ! राक्षसोंसे पराजित होकर हम उन दुष्टोंके भयसे अपने घरोंमें नहीं रहने पाते हैं ॥ २६ ॥

तदस्माकं हितार्थाय जहि तांश्च त्रिलोचन ।
राक्षसान् हुंकृतेनैव दह प्रदहतां वर ॥ २७ ॥

'त्रिलोचन ! आप हमारे हितके लिये उन असुरोंका वध कीजिये । दाहकोंमें श्रेष्ठ रुद्रदेव ! आप अपने हुंकारसे ही राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दीजिये' ॥ २७ ॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तो निशम्यान्धकसूदनः ।
शिरः करं च धुन्वान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

'देवताओंके ऐसा कहनेपर अन्धकशत्रु भगवान् शिवने अस्वीकृति सूचित करनेके लिये अपने सिर और हाथको हिलाते हुए इस प्रकार कहा— ॥ २८ ॥

अवध्या मम ते देवाः सुकेशतनया रणे ।
मन्त्रं तु वः प्रदास्यामि यस्तान् वै निहनिष्यति ॥ २९ ॥

'देवताओ ! सुकेशके पुत्र रणभूमिमें मेरे हाथसे मारे जाने-योग्य नहीं हैं, परंतु मैं तुम्हें ऐसे पुरुषके पास जानेकी सलाह दूँगा, जो निश्चय ही उन सबका वध कर डालेगे ॥ २९ ॥

योऽसौ चक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः ।
हरिर्नारायणः श्रीमाञ्शरणं तं प्रपद्यथ ॥ ३० ॥

'जिनके हाथमें चक्र और गदा सुशोभित है, जो पीताम्बर धारण करते हैं, जिन्हें जनार्दन और हरि कहते हैं तथा जो श्रीमान् नारायणके नामसे विख्यात हैं, उन्हीं भगवान्‌की शरणमें तुम सब लोग जाओ' ॥ ३० ॥

हरादवाप्य ते मन्त्रं कामारिमभिवाद्य च ।
नारायणालयं प्राप्य तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥ ३१ ॥

भगवान् शङ्करसे यह सलाह पाकर उन कामदाहक महादेवजीको प्रणाम करके देवता नारायणके धाममें जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उनसे सब बातें बतायीं ॥ ३१ ॥

ततो नारायणेनोक्ता देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
सुरारींस्तान् हनिष्यामि सुरा भवत निर्भयाः ॥ ३२ ॥

तब उन नारायणदेवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'देवगण ! मैं उन देवद्रोहियोंका नाश कर डालूँगा, अतः तुम-लोग निर्भय हो जाओ' ॥ ३२ ॥

देवानां भयभीतानां हरिणा राक्षसर्षभौ ।
प्रतिज्ञातो वधोऽस्माकं चिन्त्यतां यदिह क्षमम् ॥ ३३ ॥

'राक्षसशिरोमणियो ! इस प्रकार भयभीत देवताओंके समक्ष श्रीहरिने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा की है; अतः अब इस विषयमें हमलोगोंके लिये जो उचित कर्तव्य हो, उसका विचार करना चाहिये ॥ ३३ ॥

हिरण्यकशिपोर्मृत्युरन्येषां च सुरद्विषाम् ।
नमुचिः कालनेमिश्च संह्रादो वीरसत्तमः ॥ ३४ ॥
राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः ।
यमलार्जुनौ च हार्दिक्यः शुम्भश्चैव निशुम्भकः ॥ ३५ ॥
असुरा दानवाश्चैव सत्त्ववन्तो महाबलाः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्तेऽपराजिताः ॥ ३६ ॥

'हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्योंकी मृत्यु इन्हीं विष्णुके हाथसे हुई है। नमुचि, कालनेमि, वीरशिरोमणि संह्राद, नाना प्रकारकी माया जाननेवाला राधेय, धर्मनिष्ठ लोकपाल, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ आदि महाबली शक्तिशाली समस्त असुर और दानव समरभूमिमें भगवान् विष्णुका सामना करके पराजित न हुए हों, ऐसा नहीं सुना जाता ॥ ३४—३६ ॥

सर्वैः क्रतुशतैरिष्टं सर्वे मायाविदस्तथा ।
सर्वे सर्वास्त्रकुशलाः सर्वे शत्रुभयंकराः ॥ ३७ ॥

'उन सभी असुरोंने सैकड़ों यज्ञ किये थे। वे सब-के-सब माया जानते थे। सभी सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल तथा शत्रुओंके लिये भयंकर थे ॥ ३७ ॥

नारायणेन निहताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
एतज्ज्ञात्वा तु सर्वेषां क्षमं कर्तुमिहार्हथ ।
दुःखं नारायणं जेतुं यो नो हन्तुमिहेच्छति ॥ ३८ ॥

'ऐसे सैकड़ों और हजारों असुरोंको नारायणदेवने मौतके घाट उतार दिया है। इस बातको जानकर हम सबके लिये जो उचित कर्तव्य हो, वही करना चाहिये। जो नारायणदेव हमारा वध करना चाहते हैं, उन्हें जीतना अत्यन्त दुष्कर कार्य है' ॥ ३८ ॥

ततः सुमाली माली च श्रुत्वा माल्यवतो वचः ।
ऊचतुर्भ्रातरं ज्येष्ठमश्विनाविव वासवम् ॥ ३९ ॥

माल्यवान्‌की यह बात सुनकर सुमाली और माली अपने उस बड़े भाईसे उसी प्रकार बोले, जैसे दोनों अश्विनीकुमार देवराज इन्द्रसे वार्तालाप कर रहे हों ॥ ३९ ॥

स्वधीतं दत्तमिष्टं च ऐश्वर्यं परिपालितम् ।
आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः स्थापितः पथि ॥ ४० ॥

वे बोले—राक्षसराज ! हमलोगोंने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्यकी रक्षा तथा उसका उपभोग भी किया है। हमें रोग-व्याधिसे रहित आयु प्राप्त हुई है और हमने कर्तव्य-मार्गमें उत्तम धर्मकी स्थापना की है ॥ ४० ॥

देवसागरमक्षोभ्यं शस्त्रैः समवगाह्य च ।
जिता द्विषो ह्यप्रतिमास्तन्नो मृत्युकृतं भयम् ॥ ४१ ॥

'यही नहीं, हमने अपने शस्त्रोंके बलसे देवसेनारूपी अगाध समुद्रमें प्रवेश करके ऐसे-ऐसे शत्रुओंपर विजय पायी है, जो वीरतामें अपना सानी नहीं रखते थे; अतः हमें मृत्युसे कोई भय नहीं है ॥ ४१ ॥

नारायणश्च रुद्रश्च शक्रश्चापि यमस्तथा ।
अस्माकं प्रमुखे स्थातुं सर्वे बिभ्यति सर्वदा ॥ ४२ ॥

'नारायण, रुद्र, इन्द्र तथा यमराज ही क्यों न हों, सभी सदा हमारे सामने खड़े होनेमें डरते हैं ॥ ४२ ॥

विष्णोर्द्वेषस्य नास्त्येव कारणं राक्षसेश्वर ।
देवानामेव दोषेण विष्णोः प्रचलितं मनः ॥ ४३ ॥

'राक्षसेश्वर ! विष्णुके मनमें भी हमारे प्रति द्वेषका कोई कारण तो नहीं है। (क्योंकि हमने उनका कोई अपराध नहीं किया है) केवल देवताओंके चुगली खानेसे उनका मन हमारी ओरसे फिर गया है ॥ ४३ ॥

तस्मादद्यैव सहिताः सर्वेऽन्योन्यसमावृताः ।
देवानेव जिघांसामो येभ्यो दोषः समुत्थितः ॥ ४४ ॥

'इसलिये हम सब लोग एकत्र हो एक-दूसरेकी रक्षा करते हुए साथ-साथ चलें और आज ही देवताओंका वध कर डालने-की चेष्टा करें, जिनके कारण यह उपद्रव खड़ा हुआ है' ॥ ४४ ॥

एवं सम्मन्त्र्य बलिनः सर्वसैन्यसमावृताः ।
उद्योगं घोषयित्वा तु सर्वे नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ४५ ॥
युद्धाय निर्ययुः क्रुद्धा जम्भवृत्रादयो यथा ।

ऐसा निश्चय करके उन सभी महाबली राक्षसपतियोंने युद्धके लिये अपने उद्योगकी घोषणा कर दी और समूची सेना साथ ले जम्भ एवं वृत्र आदिकी भाँति कुपित हो वे युद्धके लिये निकले ॥ ४५½ ॥

इति ते राम सम्मन्त्र्य सर्वोद्योगेन राक्षसाः ॥ ४६ ॥
युद्धाय निर्ययुः सर्वे महाकाया महाबलाः ।

श्रीराम ! पूर्वोक्त मन्त्रणा करके उन सभी महाबली विशालकाय राक्षसोंने पूरी तैयारी की और युद्धके लिये कूच कर दिया ॥ ४६½ ॥

स्यन्दनैर्वारणैश्चैव हयैश्च करिसंनिभैः ॥ ४७ ॥
खरैर्गोभिरथोष्ट्रैश्च शिशुमारैर्भुजंगमैः ।
मकरैः कच्छपैर्मीनैर्विहंगैर्गरुडोपमैः ॥ ४८ ॥
सिंहैर्व्याघ्रैर्वराहैश्च सृमरैश्चमरैरपि ।
त्यक्त्वा लङ्कां गताः सर्वे राक्षसा बलगर्विताः ॥ ४९ ॥
प्रयाता देवलोकाय योद्धुं दैवतशत्रवः ।

अपने बलका घमण्ड रखनेवाले वे समस्त देवद्रोही राक्षस रथ, हाथी, हाथी-जैसे घोड़े, गदहे, बैल, ऊँट, शिशुमार, मत्स्य, मगर, कछुआ, मत्स्य, गरुड़-तुल्य पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर, मृग और नीलगाय आदि वाहनोंपर सवार हो लङ्का छोड़कर युद्धके लिये देवलोककी ओर चल दिये ॥४७—४९½॥

लङ्काविपर्ययं दृष्ट्वा यानि लङ्कालयान्यथ ॥ ५० ॥
भूतानि भयदर्शीनि विमनस्कानि सर्वशः ।

लङ्कामें रहनेवाले जो प्राणी अथवा ग्रामदेवता आदि थे, वे सब अपशकुन आदिके द्वारा लङ्काके भावी विध्वंसको देखकर भयका अनुभव करते हुए मन-ही-मन खिन्न हो उठे ।

रथोत्तमैरुह्यमानाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५१ ॥
प्रयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोकं प्रयत्नतः ।
रक्षसामेव मार्गेण दैवतान्यपचक्रमुः ॥ ५२ ॥

उत्तम रथोंपर बैठे हुए सैकड़ों और हजारों राक्षस तुरंत ही प्रयत्नपूर्वक देवलोककी ओर बढ़ने लगे। उस नगरके देवता राक्षसोंके मार्गसे ही पुरी छोड़कर निकल गये ॥ ५१-५२ ॥

भौमाश्चैवान्तरिक्षाश्च कालाज्ञप्ता भयावहाः ।
उत्पाता राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्थिताः ॥ ५३ ॥

उस समय कालकी प्रेरणासे पृथ्वी और आकाशमें अनेक भयंकर उत्पात प्रकट होने लगे, जो राक्षसोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे ॥ ५३ ॥

अस्थीनि मेघा ववृषुरुष्णं शोणितमेव च ।
वेलां समुद्राश्चोत्क्रान्ताश्चेलुश्चाप्यथ भूधराः ॥ ५४ ॥

बादल गरम-गरम रक्त और हड्डियोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र अपनी सीमाका उल्लङ्घन करके आगे बढ़ गये और पर्वत हिलने लगे ॥ ५४ ॥

अट्टहासान् विमुञ्चन्तो घननादसमस्वनाः ।
वाश्यन्त्यश्च शिवास्तत्र दारुणं घोरदर्शनाः ॥ ५५ ॥

मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले प्राणी विकट अट्टहास करने लगे और भयंकर दिखायी देनेवाली गीदड़ियाँ कठोर आवाजमें चीत्कार करने लगीं ॥ ५५ ॥

सम्पतन्त्यथ भूतानि दृश्यन्ते च यथाक्रमम् ।
गृध्रचक्रं महच्चात्र प्रज्वालोद्गारिभिर्मुखैः ॥ ५६ ॥
रक्षोगणस्योपरिष्टात् परिभ्रमति कालवत् ।

पृथ्वी आदि भूत क्रमशः गिरते—विलीन होते-से दिखायी देने लगे, गीधोंका विशाल समूह मुखसे आगकी ज्वाला उगलता हुआ राक्षसोंके ऊपर कालके समान मड़राने लगा ॥५६½॥

कपोता रक्तपादाश्च सारिका विद्रुता ययुः ॥ ५७ ॥
काका वाश्यन्ति तत्रैव विडाला वै द्विपादयः ।

कबूतर, तोते और मैना लङ्का छोड़कर भाग चले। कौए वहीं काँव-काँव करने लगे। बिल्लियाँ भी वहीं गुर्राने लगीं तथा हाथी आदि पशु आर्तनाद करने लगे ॥५७½॥

उत्पातांस्ताननादृत्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥ ५८ ॥
वान्त्येव न निवर्तन्ते मृत्युपाशावपाशिताः ।

राक्षस बलके घमण्डमें मतवाले हो रहे थे। वे कालके पाशमें बँध चुके थे। इसलिये उन उत्पातोंकी अवहेलना करके युद्धके लिये चलते ही गये, लौटे नहीं ॥५८½॥

माल्यवांश्च सुमाली च माली च सुमहाबलः ॥ ५९ ॥
पुरासरा राक्षसानां ज्वलिता इव पावकाः ।

माल्यवान्, सुमाली और महाबली माली—ये तीनों प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीरसे समस्त राक्षसोंके आगे-आगे चल रहे थे ॥५९½॥

माल्यवन्तं तु ते सर्वे माल्यवन्तमिवाचलम् ॥ ६० ॥
निशाचरा आश्रयन्ति धातारमिव देवताः ।

जैसे देवता ब्रह्माजीका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार उन सब निशाचरोंने माल्यवान् पर्वतके समान अविचल माल्यवान्का ही आश्रय ले रखा था ॥६०½॥

तद् बलं राक्षसेन्द्राणां महाभ्रघननादितम् ॥ ६१ ॥
जयेप्सया देवलोके ययौ मालिवशे स्थितम् ।

राक्षसोंकी वह सेना महान् मेघोंकी गर्जनाके समान कोलाहल करती हुई विजय पानेकी इच्छासे देवलोककी ओर बढ़ती जा रही थी। उस समय वह सेनापति मालीके नियन्त्रणमें थी ॥६१½॥

राक्षसानां समुद्योगं तं तु नारायणः प्रभुः ॥ ६२ ॥
देवदूतादुपश्रुत्य चक्रे युद्धे तदा मनः ।

देवताओंके दूतसे राक्षसोंके उस युद्धविषयक उद्योगकी बात सुनकर भगवान् नारायणने भी युद्ध करनेका विचार किया ॥६२½॥

स सज्जायुधतूणीरो वैनतेयोपरि स्थितः ॥ ६३ ॥
आसाद्य कवचं दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ।

वे सहस्रों सूर्योंके समान दीप्तिमान् दिव्य कवच धारण करके बाणोंसे भरा तरकस लिये गरुड़पर सवार हुए ॥६३½॥

आबद्ध्य शरसम्पूर्णे इषुधी विमले तदा ॥ ६४ ॥
श्रोणिसूत्रं च खड्गं च विमलं कमलेक्षणः ।

इसके अतिरिक्त भी उन्होंने सायकोंसे पूर्ण दो चमचमाते हुए तूणीर बाँध रखे थे। उन कमलनयन श्रीहरिने अपनी कमरमें पड़ी बाँधकर उसमें चमकती हुई तलवार भी लटका ली थी ॥६४½॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गांश्चैव वरायुधान् ॥ ६५ ॥
सुपर्णं गिरिसंकाशं वैनतेयमथास्थितः ।
राक्षसानामभावाय ययौ तूर्णतरं प्रभुः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और खड्ग आदि उत्तम आयुधोंको धारण किये सुन्दर पंखवाले

पर्वताकार गरुड़पर आरूढ़ हो वे प्रभु उन राक्षसोंका संहार करनेके लिये तुरंत चल दिये ॥ ६५-६६ ॥

सुपर्णपृष्ठे स बभौ श्यामः पीताम्बरो हरिः ।
काञ्चनस्य गिरेः शृङ्गे सतडित्तोयदो यथा ॥ ६७ ॥

गरुड़की पीठपर बैठे हुए वे पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि सुवर्णमय मेरुपर्वतके शिखरपर स्थित हुए विद्युत्सहित मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ ६७ ॥

स सिद्धदेवर्षिमहोरगैश्च
गन्धर्वयक्षैरुपगीयमानः ।
समाससादासुरसैन्यशत्रु-
श्चक्रासिशार्ङ्गायुधशङ्खपाणिः ॥ ६८ ॥

उस समय सिद्ध, देवर्षि, बड़े-बड़े नाग, गन्धर्व और यक्ष उनके गुण गा रहे थे। असुरोंकी सेनाके शत्रु वे श्रीहरि हाथोंमें शङ्ख, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष लिये सहसा वहाँ आ पहुँचे ॥ ६८ ॥

सुपर्णपक्षानिलनुन्नपक्षं
भ्रमत्पताकं प्रविकीर्णशस्त्रम् ।
चचाल तद्राक्षसराजसैन्यं
चलोपलं नीलमिवाचलाग्रम् ॥ ६९ ॥

गरुड़के पंखोंकी तीव्र वायुके झोंके खाकर वह सेना क्षुब्ध हो उठी। सैनिकोंके रथोंकी पताकाएँ चक्कर खाने लगीं और सबके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर गये। इस प्रकार राक्षसराज माल्यवान्‌की समूची सेना काँपने लगी। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो पर्वतका नील शिखर अपनी शिलाओंको बिखेरता हुआ हिल रहा हो ॥ ६९ ॥

ततः शितैः शोणितमांसरूषितै-
र्युगान्तवैश्वानरतुल्यविग्रहैः ।
निशाचराः सम्परिवार्य माधवं
वरायुधैर्निर्विविधुः सहस्रशः ॥ ७० ॥

राक्षसोंके उत्तम अस्त्र-शस्त्र तीखे, रक्त और मांसमें सने हुए तथा प्रलयकालीन अग्निके समान दीप्तिमान् थे। उनके द्वारा वे सहस्रों निशाचर भगवान् लक्ष्मीपतिको चारों ओरसे घेरकर उनपर चोट करने लगे ॥ ७० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

भगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंका संहार और पलायन

नारायणगिरिं ते तु गर्जन्तो राक्षसाम्बुदाः ।
अर्दयन्तोऽस्त्रवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) जैसे बादल जलकी वर्षासे किसी पर्वतको आप्लावित करते हैं, उसी प्रकार गर्जना करते हुए वे राक्षसरूपी मेघ अस्त्ररूपी जलकी वर्षासे नारायणरूपी पर्वतको पीड़ित करने लगे ॥ १ ॥

श्यामावदातस्तैर्विष्णुर्नीलैर्नक्तंचरोत्तमैः ।
वृतोऽञ्जनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः ॥ २ ॥

भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह उज्ज्वल श्यामवर्णसे सुशोभित था और अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए वे श्रेष्ठ निशाचर नीले रंगके दिखायी देते थे, इसलिये ऐसा जान पड़ता था, मानो अञ्जनगिरिको चारों ओरसे घेरकर मेघ उसपर जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ २ ॥

शलभा इव केदारं मशका इव पावकम् ।
यथामृतघटं दंशा मकरा इव चार्णवम् ॥ ३ ॥
तथा रक्षोधनुर्मुक्ता वज्रानिलमनोजवाः ।
हरिं विशन्ति स्म शरा लोका इव विपर्यये ॥ ४ ॥

जैसे टिड्डीदल धान आदिके खेतोंमें, पतिंगे आगमें, डंक मारनेवाली मक्खियाँ मधुसे भरे हुए घड़ेमें और मगर समुद्रमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसोंके धनुषसे छूटे हुए वज्र, वायु तथा मनके समान वेगवाले बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रवेश करके इस प्रकार लीन हो जाते थे, जैसे प्रलयकालमें समस्त लोक उन्हींमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३-४ ॥

स्यन्दनैः स्यन्दनगता गजैश्च गजमूर्धगाः ।
अश्वारोहास्तथाश्वैश्च पादाताश्चाम्बरे स्थिताः ॥ ५ ॥

रथपर बैठे हुए योद्धा रथोंसहित, हाथीसवार हाथियोंके साथ, घुड़सवार घोड़ोंसहित तथा पैदल पाँव-पयादे ही आकाशमें खड़े थे ॥ ५ ॥

राक्षसेन्द्रा गिरिनिभाः शरैः शक्त्यृष्टितोमरैः ।
निरुच्छ्वासं हरिं चक्रुः प्राणायामा इव द्विजम् ॥ ६ ॥

उन राक्षसराजोंके शरीर पर्वतके समान विशाल थे। उन्होंने सब ओरसे शक्ति, ऋष्टि, तोमर और बाणोंकी वर्षा करके भगवान् विष्णुका साँस लेना बंद कर दिया। ठीक उसी तरह, जैसे प्राणायाम द्विजके श्वासको रोक देते हैं ॥ ६ ॥

निशाचरैस्ताड्यमानो मीनैरिव महोदधिः ।
शार्ङ्गमायम्य दुर्धर्षो राक्षसेभ्योऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥

जैसे मछली महासागरपर प्रहार करे, उसी तरह वे निशाचर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा श्रीहरिपर चोट करते थे। उस समय दुर्जय देवता भगवान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग-धनुषको खींचकर राक्षसोंपर बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्वज्रकल्पैर्मनोजवैः ।
चिच्छेद विष्णुर्निशितैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

वे बाण धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये थे; अतः वज्रके समान असह्य और मनके समान वेगवान् थे। इन पैने बाणोंद्वारा भगवान् विष्णुने सैकड़ों और हजारों निशाचरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥ ८॥

विद्राव्य शरवर्षेण वर्षं वायुरिवोत्थितम्।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं प्रदध्मौ पुरुषोत्तमः॥ ९॥

जैसे हवा उमड़ी हुई बदलीको एवं वर्षाको उड़ा देती है, उसी प्रकार अपनी बाणवर्षासे राक्षसोंको भगाकर पुरुषोत्तम श्रीहरिने अपने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्खको बजाया॥ ९॥

सोऽम्बुजो हरिणा ध्मातः सर्वप्राणेन शङ्खराट्।
ररास भीमनिर्ह्रादस्त्रैलोक्यं व्यथयन्निव॥ १०॥

सम्पूर्ण प्राणशक्तिसे श्रीहरिके द्वारा बजाया गया वह जल-जनित शङ्खराज भयंकर आवाजसे तीनों लोकोंको व्यथित करता हुआ-सा गूँजने लगा॥ १०॥

शङ्खराजरवः सोऽथ त्रासयामास राक्षसान्।
मृगराज इवारण्ये समदानिव कुञ्जरान्॥ ११॥

जैसे वनमें दहाड़ता हुआ सिंह मतवाले हाथियोंको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार उस शङ्खराजने ध्वनिसे समस्त राक्षसोंको भय और घबराहटमें डाल दिया॥ ११॥

न शेकुरश्वाः संस्थातुं विमदाः कुञ्जराऽभवन्।
स्यन्देभ्यश्च्युता वीराः शङ्खरावितदुर्बलाः॥ १२॥

वह शङ्खध्वनि सुनकर शक्ति और साहससे हीन हुए घोड़े युद्धभूमिमें खड़े न रह सके, हाथियोंके मद उतर गये और वीर सैनिक रथोंसे नीचे गिर पड़े॥ १२॥

शार्ङ्गचापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्याननाः शराः।
विदार्य तानि रक्षांसि सुपुङ्खा विविशुः क्षितिम्॥ १३॥

सुन्दर पंखवाले उन बाणोंके मुखभाग वज्रके समान कठोर थे। वे शार्ङ्गधनुषसे छूटकर राक्षसोंको विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें घुस जाते थे॥ १३॥

भिद्यमानाः शरैः संख्ये नारायणकरच्युतैः।
निपेतू राक्षसा भूमौ शैला वज्रहता इव॥ १४॥

संग्रामभूमिमें भगवान् विष्णुके हाथसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न हुए निशाचर वज्रके मारे हुए पर्वतोंकी भाँति धराशायी होने लगे॥ १४॥

व्रणानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृतानि हि।
असृक् क्षरन्ति धाराभिः स्वर्णधारा इवाचलाः॥ १५॥

श्रीहरिके चक्रके आघातसे शत्रुओंके शरीरोंमें जो घाव हो गये थे, उनसे उसी तरह रक्तकी धारा बह रही थी, मानो पर्वतोंसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो॥ १५॥

शङ्खराजरवश्चापि शार्ङ्गचापरवस्तथा।
राक्षसानां रवांश्चापि ग्रसते वैष्णवो रवः॥ १६॥

शङ्खराजकी ध्वनि, शार्ङ्गधनुषकी टंकार तथा भगवान् विष्णुकी गर्जना—इन सबके तुमुल नादने राक्षसोंके कोलाहलको दबा दिया॥ १६॥

तेषां शिरोधरान् धूताञ्छरध्वजधनूंषि च।
रथान् पताकास्तूणीरांश्चिच्छेद स हरिः शरैः॥ १७॥

भगवान्‌ने राक्षसोंके काँपते हुए मस्तकों, बाणों, ध्वजाओं, धनुषों, रथों, पताकाओं और तरकसोंको अपने बाणोंसे काट डाला॥ १७॥

सूर्यादिव करा घोरा वार्योघा इव सागरात्।
पर्वतादिव नागेन्द्रा धारौघा इव चाम्बुदात्॥ १८॥
तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ताः शरा नारायणेरिताः।
निर्धावन्तीषवस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः॥ १९॥

जैसे सूर्यसे भयंकर किरणें, समुद्रसे जलके प्रवाह, पर्वतसे बड़े-बड़े सर्प और मेघसे जलकी धाराएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् नारायणके चलाये और शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए सैकड़ों और हजारों बाण तत्काल इधर-उधर दौड़ने लगे॥ १८-१९॥

शरभेण यथा सिंहाः सिंहेन द्विरदा यथा।
द्विरदेन यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा॥ २०॥
द्वीपिनेव यथा श्वानः शुना मार्जारको यथा।
मार्जारिण यथा सर्पाः सर्पेण च यथाखवः॥ २१॥
तथा ते राक्षसाः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना।
द्रवन्ति द्राविताश्चान्ये शायिताश्च महीतले॥ २२॥

जैसे शरभसे सिंह, सिंहसे हाथी, हाथीसे बाघ, बाघसे चीते, चीतेसे कुत्ते, कुत्तेसे बिलाव, बिलावसे साँप और साँपसे चूहे डरकर भागते हैं, उसी प्रकार वे सब राक्षस प्रभावशाली भगवान् विष्णुकी मार खाकर भागने लगे। उनके भगाये हुए बहुत-से राक्षस धराशायी हो गये॥ २०—२२॥

राक्षसानां सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः।
वारिजं पूरयामास तोयदं सुरराडिव॥ २३॥

सहस्रों राक्षसोंका वध करके भगवान् मधुसूदनने अपने शङ्ख पाञ्चजन्यको उसी तरह गम्भीर ध्वनिसे पूर्ण किया, जैसे देवराज इन्द्र मेघको जलसे भर देते हैं॥ २३॥

नारायणशरत्रस्तं शङ्खनादसुविह्वलम्।
ययौ लङ्कामभिमुखं प्रभग्नं राक्षसं बलम्॥ २४॥

भगवान् नारायणके बाणोंसे भयभीत और शङ्खनादसे व्याकुल हुई राक्षस-सेना लङ्काकी ओर भाग चली॥ २४॥

प्रभग्ने राक्षसबले नारायणशराहते।
सुमाली शरवर्षेण निववार रणे हरिम्॥ २५॥

नारायणके सायकोंसे आहत हुई राक्षससेना जब भागने लगी, तब सुमालीने रणभूमिमें बाणोंकी वर्षा करके उन श्रीहरिको आगे बढ़नेसे रोका॥ २५॥

स तु तं छादयामास नीहार इव भास्करम्।
राक्षसाः सत्त्वसम्पन्नाः पुनर्धैर्यं समादधुः॥ २६॥

जैसे कुहरा सूर्यदेवको ढक लेता है, उसी तरह सुमालीने बाणोंसे भगवान् विष्णुको आच्छादित कर दिया। यह देख शक्तिशाली राक्षसोंने पुनः धैर्य धारण किया॥ २६॥

अथ सोऽभ्यपतद् रोषाद् राक्षसो बलदर्पितः।
महानादं प्रकुर्वाणो राक्षसाञ्जीवयन्निव॥ २७॥

उस बलाभिमानी निशाचरने बड़े जोरसे गर्जना करके राक्षसोंमें नूतन जीवनका संचार करते हुए-से रोषपूर्वक आक्रमण किया॥ २७॥

उत्क्षिप्य लम्बाभरणं धुन्वन् करमिव द्विपः।
रराम राक्षसो हर्षात् सतडित्तोयदो यथा॥ २८॥

जैसे हाथी सूँड़को उठाकर हिलाता हो, उसी तरह लटकते हुए आभूषणसे युक्त हाथको ऊपर उठाकर हिलाता हुआ वह राक्षस विद्युत्सहित सजल जलधरके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा॥ २८॥

सुमालेर्नर्दतस्तस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम्।
चिच्छेद यन्तुरश्वाश्च भ्रान्तास्तस्य तु रक्षसः॥ २९॥

तब भगवान्‌ने अपने बाणोंद्वारा गर्जते हुए सुमालीके सारथिका जगमगाते हुए कुण्डलोंसे मण्डित मस्तक काट डाला। इससे उस राक्षसके घोड़े बेलगाम होकर चारों ओर चक्कर काटने लगे॥ २९॥

तैरश्वैर्भ्राम्यते भ्रान्तैः सुमाली राक्षसेश्वरः।
इन्द्रियाश्वैः परिभ्रान्तैर्धृतिहीनो यथा नरः॥ ३०॥

उन घोड़ोंके चक्कर काटनेसे उनके साथ ही राक्षसराज सुमाली भी चक्कर काटने लगा। ठीक उसी तरह, जैसे अजितेन्द्रिय मनुष्य विषयोंमें भटकनेवाली इन्द्रियोंके साथ-साथ स्वयं भी भटकता फिरता है॥ ३०॥

ततो विष्णुं महाबाहुं प्रपतन्तं रणाजिरे।
हते सुमालेरश्वैश्च रथे विष्णुरथं प्रति॥ ३१॥
माली चाभ्यद्रवद् युक्तः प्रगृह्य सशरं धनुः।

जब घोड़े रणभूमिमें सुमालीके रथको इधर-उधर लेकर भागने लगे, तब माली नामक राक्षसने युद्धके लिये उद्यत हो धनुष लेकर गरुड़की ओर धावा किया। राक्षसोंपर टूटते हुए महाबाहु विष्णुपर आक्रमण किया॥३१½॥

मालेर्धनुश्च्युता बाणाः कार्तस्वरविभूषिताः॥ ३२॥
विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्चं पन्नरथा इव।

मालीके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण भगवान् विष्णुके शरीरमें उसी तरह घुसने लगे, जैसे पक्षी क्रौञ्चपर्वतके छिद्रमें प्रवेश करते हैं॥३२½॥

अर्द्यमानः शरैः सोऽथ मालिमुक्तैः सहस्रशः॥ ३३॥
चुक्षुभे न रणे विष्णुर्जितेन्द्रिय इवाधिभिः।

जैसे जितेन्द्रिय पुरुष मानसिक व्यथाओंसे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार रणभूमिमें भगवान् विष्णु मालीके छोड़े हुए सहस्रों बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी क्षुब्ध नहीं हुए॥३३½॥

अथ मौर्वीस्वनं श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः॥ ३४॥
मालिनं प्रति बाणौघान् ससर्जासिगदाधरः।

तदनन्तर खड्ग और गदा धारण करनेवाले भूतभावन भगवान् विष्णुने अपने धनुषकी टङ्कार करके मालीके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥३४½॥

ते मालिदेहमासाद्य वज्रविद्युत्प्रभाः शराः॥ ३५॥
पिबन्ति रुधिरं तस्य नागा इव सुधारसम्।

वज्र और बिजलीके समान प्रकाशित होनेवाले वे बाण मालीके शरीरमें घुसकर उसका रक्त पीने लगे, मानो सर्प अमृतरसका पान कर रहे हों॥३५½॥

मालिनं विमुखं कृत्वा शङ्खचक्रगदाधरः॥ ३६॥
मालिमौलिं ध्वजं चापं वाजिनश्चाप्यपातयत्।

अन्तमें मालीको पीठ दिखानेके लिये विवश करके शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिने उस राक्षसके मुकुट, ध्वज और धनुषको काटकर घोड़ोंको भी मार गिराया॥३६½॥

विरथस्तु गदां गृह्य माली नक्तंचरोत्तमः॥ ३७॥
आपुप्लुवे गदापाणिर्गिरेर्यद्वादिव केसरी।

रथहीन हो जानेपर राक्षसप्रवर माली गदा हाथमें लेकर कूद पड़ा, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरसे छलाँग मारकर नीचे आ गया हो॥३७½॥

गदया गरुडेशानमीशानमिव चान्तकः॥ ३८॥
ललाटदेशेऽभ्यहनद् वज्रेणेन्द्रो यथाचलम्।

जैसे यमराजने भगवान् शिवपर गदाका और इन्द्रने पर्वतपर वज्रका प्रहार किया हो, उसी तरह मालीने पक्षिराज गरुड़के ललाटमें अपनी गदाद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥३८½॥

गदयाभिहतस्तेन मालिना गरुडो भृशम्॥ ३९॥
रणात् पराङ्मुखं देवं कृतवान् वेदनातुरः।

मालीकी गदासे अत्यन्त आहत हुए गरुड़ वेदनासे व्याकुल हो उठे। उन्होंने स्वयं युद्धसे विमुख होकर भगवान् विष्णुको भी विमुख-सा कर दिया॥३९½॥

पराङ्मुखो कृते देवे मालिना गरुडेन वै॥ ४०॥
उदतिष्ठन्महाञ्शब्दो रक्षसामभिनर्दताम्।

मालीने गरुड़के साथ ही जब भगवान् विष्णुको भी युद्धसे विमुख-सा कर दिया, तब वहाँ जोर-जोरसे गर्जते हुए राक्षसोंका महान् शब्द गूँज उठा॥४०½॥

रक्षसां रुवतां रावं श्रुत्वा हरिहयानुजः॥ ४१॥
तिर्यगास्थाय संक्रुद्धः पक्षीशे भगवान् हरिः।
पराङ्मुखोऽप्युत्ससर्ज मालेश्चक्रं जिघांसया॥ ४२॥

गर्जते हुए राक्षसोंका वह सिंहनाद सुनकर इन्द्रके छोटे भाई भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो पक्षिराजकी पीठपर तिरछे होकर बैठ गये। (इससे वह राक्षस उन्हें देखने लगा) उस समय पराङ्मुख होनेपर भी श्रीहरिने मालीके वधकी इच्छासे पीछेकी ओर मुड़कर अपना सुदर्शनचक्र चलाया॥ ४१-४२॥

तत् सूर्यमण्डलाभासं स्वभासा भासयन् नभः।
कालचक्रनिभं चक्रं मालेः शीर्षमपातयत्॥ ४३॥

सूर्यमण्डलके समान उद्दीप्त होनेवाले कालचक्र-सदृश उस चक्रने अपनी प्रभासे आकाशको उद्भासित करते हुए वहाँ मालीके मस्तकको काट गिराया॥ ४३॥

तच्छिरो राक्षसेन्द्रस्य चक्रोत्कृत्तं विभीषणम्।
पपात रुधिरोद्गारि पुरा राहुशिरो यथा॥ ४४॥

चक्रसे कटा हुआ राक्षसराज मालीका वह भयंकर मस्तक पूर्वकालमें कटे हुए राहुके सिरकी भाँति रक्तकी धारा बहाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४४॥

ततः सुरैः सम्प्रहृष्टैः सर्वप्राणसमीरितः।
सिंहनादरवो मुक्तः साधु देवेतिवादिभिः॥ ४५॥

इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे 'साधु भगवन्! साधु!' ऐसा कहते हुए सारी शक्ति लगाकर जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ ४५॥

मालिनं निहतं दृष्ट्वा सुमाली माल्यवानपि।
सबलौ शोकसंतप्तौ लङ्कामेव प्रधावितौ॥ ४६॥

मालीको मारा गया देख सुमाली और माल्यवान् दोनों राक्षस शोकसे व्याकुल हो सेनासहित लङ्काकी ओर ही भागे॥ ४६॥

गरुडस्तु समाश्वस्तः संनिवृत्य यथा पुरा।
राक्षसान् द्रावयामास पक्षवातेन कोपितः॥ ४७॥

इतनेहीमें गरुड़की पीड़ा कम हो गयी, वे पुनः सँभलकर लौटे और कुपित हो पूर्ववत् अपने पंखोंकी हवासे राक्षसोंको खदेड़ने लगे॥ ४७॥

चक्रकृत्तास्यकमला गदासंचूर्णितोरसः।
लाङ्गलग्लपितग्रीवा मुसलैर्भिन्नमस्तकाः॥ ४८॥

कितने ही राक्षसोंके मुखकमल चक्रके प्रहारसे कट गये। गदाओंके आघातसे बहुतोंके वक्षःस्थल चूर-चूर हो गये। हलके फालसे कितनोंके गर्दन उतर गयीं। मुसलोंकी मारसे बहुतोंके मस्तकोंकी धज्जियाँ उड़ गयीं॥ ४८॥

केचिद्वैवासिना छिन्नास्तथान्ये शरताडिताः।
निपेतुरम्बरात् तूर्णं राक्षसाः सागराम्भसि॥ ४९॥

तलवारका हाथ पड़नेसे कितने ही राक्षस टुकड़े-टुकड़े हो गये। बहुतेरे बाणोंसे पीड़ित हो तुरंत ही आकाशसे समुद्रके जलमें गिर पड़े॥ ४९॥

नारायणोऽपीषुवराशनीभि-
र्विदारयामास धनुर्विमुक्तैः।
नक्तंचरान् धूतविमुक्तकेशान्
यथाशनीभिः सतडिन्महाभ्रः॥ ५०॥

भगवान् विष्णु भी अपने धनुषसे छूटे हुए श्रेष्ठ बाणों और अशनियोंद्वारा राक्षसोंको विदीर्ण करने लगे। उस समय उन निशाचरोंके खुले हुए केश हवासे उड़ रहे थे और पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर श्रीहरि विद्युन्मालामण्डित महान् मेघके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ५०॥

भिन्नातपत्रं पतमानशस्त्रं
शरैरपध्वस्तविनीतवेषम्।
विनिःसृतान्त्रं भयलोलनेत्रं
बलं तदुन्मत्ततरं बभूव॥ ५१॥

राक्षसोंकी वह सारी सेना अत्यन्त उन्मत्त-सी प्रतीत होती थी। बाणोंसे उसके छत्र कट गये थे, अस्त्र-शस्त्र गिर गये थे, सौम्य वेष दूर हो गया था, आँतें बाहर निकल आयी थीं और सबके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे॥ ५१॥

सिंहार्दितानामिव कुञ्जराणां
निशाचराणां सह कुञ्जराणाम्।
रवाश्च वेगाश्च समं बभूवुः
पुराणसिंहेन विमर्दितानाम्॥ ५२॥

जैसे सिंहोंद्वारा पीड़ित हुए हाथियोंके चीत्कार और वेग एक साथ ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार उन पुराणप्रसिद्ध नृसिंहरूपधारी श्रीहरिके द्वारा रौंदे गये उन निशाचररूपी गजराजोंके हाहाकार और वेग साथ-साथ प्रकट हो रहे थे॥ ५२॥

ते वार्यमाणा हरिबाणजालैः
स्वबाणजालानि समुत्सृजन्तः।
धावन्ति नक्तंचरकालमेघा
वायुप्रणुन्ना इव कालमेघाः॥ ५३॥

भगवान् विष्णुके बाणसमूहोंसे आवृत हो अपने सायकोंका परित्याग करके वे निशाचररूपी काले मेघ उसी प्रकार भागे जा रहे थे, जैसे हवाके उड़ाये हुए वर्षाकालीन मेघ आकाशमें भागते देखे जाते हैं॥ ५३॥

चक्रप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः
संचूर्णिताङ्गाश्च गदाप्रहारैः।
असिप्रहारैर्द्विविधाविभिन्नाः
पतन्ति शैला इव राक्षसेन्द्राः॥ ५४॥

चक्रके प्रहारोंसे राक्षसोंके मस्तक कट गये थे, गदाओंकी मारसे उनके शरीर चूर-चूर हो रहे थे तथा तलवारोंके आघातसे उनके दो-दो टुकड़े हो गये थे। इस तरह वे राक्षसराज पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे॥ ५४॥

विलम्बमानैर्मणिहारकुण्डलै-
र्निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः ।
निपात्यमानैर्ददृशे निरन्तरं
निपात्यमानैरिव नीलपर्वतैः ॥ ५५ ॥

लटकते हुए मणिमय हारों और कुण्डलोंके साथ गिराये जाते हुए नील मेघ-सदृश उन निशाचरोंकी लाशोंसे वह रणभूमि पट गयी थी। वहाँ धराशायी हुए वे राक्षस नील-पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँका भूभाग इस तरह आच्छादित हो गया था कि कहीं तिल रखनेकी भी जगह नहीं दिखायी देती थी ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सातवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

माल्यवान्‌का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश

हन्यमाने बले तस्मिन् पद्मनाभेन पृष्ठतः ।
माल्यवान् संनिवृत्तोऽथ वेलामेत्य इवार्णवः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) पद्मनाभ भगवान् विष्णुने जब भागती हुई राक्षसोंकी सेनाको पीछेकी ओरसे मारना आरम्भ किया, तब माल्यवान् लौट पड़ा, मानो महासागर अपनी तटभूमितक जाकर निवृत्त हो गया हो ॥ १ ॥

संरक्तनयनः क्रोधाच्चलन्मौलिर्निशाचरः ।
पद्मनाभमिदं प्राह वचनं पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे और मुकुट हिल रहा था। उस निशाचरने पुरुषोत्तम भगवान् पद्मनाभसे इस प्रकार कहा— ॥ २ ॥

नारायण न जानीषे क्षात्रधर्मं पुरातनम् ।
अयुद्धमनसो भीतानस्मान् हंसि यथेतरः ॥ ३ ॥

'नारायणदेव ! जान पड़ता है पुरातन क्षात्रधर्मको बिलकुल नहीं जानते हो, तभी तो साधारण मनुष्यकी भाँति तुम जिनका मन युद्धसे विरत हो गया है तथा जो डरकर भागे जा रहे हैं, ऐसे हम राक्षसोंको भी मार रहे हो ॥ ३ ॥

पराङ्मुखवधं पापं यः करोति सुरेश्वर ।
स हन्ता न गतः स्वर्गं लभते पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥

'सुरेश्वर ! जो युद्धसे विमुख हुए सैनिकोंके वधका पाप करता है, वह घातक इस शरीरका त्याग करके परलोकमें जाने-पर पुण्यकर्मा पुरुषोंको मिलनेवाले स्वर्गको नहीं पाता है ॥ ४ ॥

युद्धश्रद्धाथवा तेऽस्ति शङ्खचक्रगदाधर ।
अहं स्थितोऽस्मि पश्यामि बलं दर्शय यत् तव ॥ ५ ॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवता ! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धका हौसला है तो मैं खड़ा हूँ। देखता हूँ, तुममें कितना बल है ? दिखाओ अपना पराक्रम' ॥ ५ ॥

माल्यवन्तं स्थितं दृष्ट्वा माल्यवन्तमिवाचलम् ।
उवाच राक्षसेन्द्रं तं देवराजानुजो बली ॥ ६ ॥

माल्यवान् पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े हुए राक्षसराज माल्यवान्‌को देखकर देवराज इन्द्रके छोटे भाई महाबली भगवान् विष्णुने उससे कहा— ॥ ६ ॥

युष्मत्तो भयभीतानां देवानां वै मयाभयम् ।
राक्षसोत्सादनं दत्तं तदेतदनुपाल्यते ॥ ७ ॥

'देवताओंको तुमलोगोंसे बड़ा भय उपस्थित हुआ है, मैंने राक्षसोंके संहारकी प्रतिज्ञा करके उन्हें अभय दान दिया है; अतः इस रूपमें मेरे द्वारा उस प्रतिज्ञाका ही पालन किया जा रहा है ॥ ७ ॥

प्राणैरपि प्रियं कार्यं देवानां हि सदा मया ।
सोऽहं वो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥

'मुझे अपने प्राण देकर भी सदा ही देवताओंका प्रिय कार्य करना है; इसलिये तुमलोग भागकर रसातलमें चले जाओ तो भी मैं तुम्हारा वध किये बिना नहीं रहूँगा' ॥ ८ ॥

देवदेवं ब्रुवाणं तं रक्ताम्बुरुहलोचनम् ।
शक्त्या विभेद संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रो भुजान्तरे ॥ ९ ॥

लाल कमलके समान नेत्रवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अत्यन्त कुपित हुए राक्षसराज माल्यवान्‌ने अपनी शक्तिके द्वारा प्रहार करके भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥ ९ ॥

माल्यवद्भुजनिर्मुक्ता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
हरेरुरसि वभ्राज मेघस्थेव शतह्रदा ॥ १० ॥

माल्यवान्‌के हाथसे छूटकर घंटानाद करती हुई वह शक्ति श्रीहरिकी छातीसे जा लगी और मेघके अङ्कमें प्रकाशित होनेवाली बिजलीके समान शोभा पाने लगी ॥ १० ॥

ततस्तामेव चोत्कृष्य शक्तिं शक्तिधरप्रियः ।
माल्यवन्तं समुद्दिश्य चिक्षेपाम्बुरुहेक्षणः ॥ ११ ॥

शक्तिधारी कार्तिकेय जिन्हें प्रिय हैं अथवा जो शक्तिधर स्कन्दके प्रियतम हैं, उन भगवान् कमलनयन विष्णुने उसी शक्तिको अपनी छातीसे खींचकर माल्यवान्‌पर दे मारा ॥ ११ ॥

स्कन्दोत्सृष्टेव सा शक्तिर्गोविन्दकरनिःसृता।
काङ्क्षन्ती राक्षसं प्रायान्महोल्केवाञ्जनाचलम्॥ १२॥

स्कन्दकी छोड़ी हुई शक्तिके समान गोविन्दके हाथसे निकली हुई वह शक्ति उस राक्षसको लक्ष्य करके चली, मानो अञ्जनगिरिपर कोई बड़ी भारी उल्का गिर रही हो॥ १२॥

सा तस्योरसि विस्तीर्णे हारभारावभासिते।
आपतद् राक्षसेन्द्रस्य गिरिकूट इवाशनिः॥ १३॥

हारोंके समूहसे प्रकाशित होनेवाले उस राक्षसराजके विशाल वक्षःस्थलपर वह शक्ति गिरी। मानो किसी पर्वतके शिखरपर वज्रपात हुआ हो॥ १३॥

तया भिन्नतनुत्राणः प्राविशद् विपुलं तमः।
माल्यवान् पुनराश्वस्तस्तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ १४॥

उससे माल्यवान्का कवच कट गया तथा वह गहरी मूर्च्छामें डूब गया; किंतु थोड़ी ही देरमें पुनः सँभलकर माल्यवान् पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़ा हो गया॥ १४॥

ततः कालायसं शूलं कण्टकैर्बहुभिश्चितम्।
प्रगृह्याभ्यहनद् देवं स्तनयोरन्तरे दृढम्॥ १५॥

तत्पश्चात् उसने काले लोहेके बने हुए और बहुसंख्यक काँटोंसे जड़े हुए शूलको हाथमें लेकर भगवान्की छातीमें गहरा आघात किया॥ १५॥

तथैव रणरक्तस्तु मुष्टिना वासवानुजम्।
ताडयित्वा धनुर्मात्रमपक्रान्तो निशाचरः॥ १६॥

इसी प्रकार वह युद्धप्रेमी राक्षस भगवान् विष्णुको मुक्केसे मारकर एक धनुष पीछे हट गया॥ १६॥

ततोऽम्बरे महाञ्छब्दः साधुसाध्विति चोत्थितः।
आहत्य राक्षसो विष्णुं गरुडं चाप्यताडयत्॥ १७॥

उस समय आकाशमें राक्षसोंका महान् हर्षनाद गूँज उठा—वे एक साथ बोल उठे—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'। भगवान् विष्णुको घूसा मारकर उस राक्षसने गरुड़पर भी प्रहार किया॥ १७॥

वैनतेयस्ततः क्रुद्धः पक्षवातेन राक्षसम्।
व्यपोहद् बलवान् वायुः शुष्कपर्णचयं यथा॥ १८॥

यह देख विनतानन्दन गरुड़ कुपित हो उठे और उन्होंने अपने पंखोंकी हवासे उस राक्षसको उसी तरह उड़ा दिया, जैसे प्रबल आँधी सूखे पत्तोंके ढेरको उड़ा देती है॥ १८॥

द्विजेन्द्रपक्षवातेन द्रावितं दृश्य पूर्वजम्।
सुमाली स्वबलैः सार्धं लङ्कामभिमुखो ययौ॥ १९॥

अपने बड़े भाईको पक्षिराजके पंखोंकी हवासे उड़ा हुआ देख सुमाली अपने सैनिकोंके साथ लङ्काकी ओर चल दिया॥ १९॥

पक्षवातबलोद्धूतो माल्यवानपि राक्षसः।
स्वबलेन समागम्य ययौ लङ्कां ह्रिया वृतः॥ २०॥

गरुड़के पंखोंकी हवाके बलसे उड़ा हुआ राक्षस माल्यवान् भी लज्जित होकर अपनी सेनासे जा मिला और लङ्काकी ओर चला गया॥ २०॥

एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण।
बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवरनायकाः॥ २१॥

कमलनयन श्रीराम! इस प्रकार उन राक्षसोंका भगवान् विष्णुके साथ अनेक बार युद्ध हुआ और प्रत्येक संग्राममें प्रधान-प्रधान नायकोंके मारे जानेपर उन सबको भागना पड़ा॥ २१॥

अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः॥ २२॥

वे किसी प्रकार भगवान् विष्णुका सामना नहीं कर सके। सदा ही उनके बलसे पीड़ित होते रहे। अतः समस्त निशाचर लङ्का छोड़कर अपनी स्त्रियोंके साथ पातालमें रहनेके लिये चले गये॥ २२॥

सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम।
स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटङ्कटे॥ २३॥

रघुश्रेष्ठ! वे विख्यात पराक्रमी निशाचर सालकटङ्कट-वंशमें विद्यमान राक्षस सुमालीका आश्रय लेकर रहने लगे॥ २३॥

ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरःसराः।
सर्व एते महाभागा रावणाद् बलवत्तराः॥ २४॥

श्रीराम! आपने पुलस्त्यवंशके जिन-जिन राक्षसोंका विनाश किया है, उनकी अपेक्षा प्राचीन राक्षसोंका पराक्रम अधिक था। सुमाली, माल्यवान् और माली तथा उनके आगे चलनेवाले योद्धा—वे सभी महाभाग निशाचर रावणसे बढ़कर बलवान् थे॥ २४॥

न चान्यो राक्षसान् हन्ता सुरारीन् देवकण्टकान्।
ऋते नारायणं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ २५॥

देवताओंके लिये कण्टकरूप उन देवद्रोही राक्षसोंका वध शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् नारायणदेवके सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता॥ २५॥

भवान् नारायणो देवश्चतुर्बाहुः सनातनः।
राक्षसान् हन्तुमुत्पन्नो ह्यजय्यः प्रभुरव्ययः॥ २६॥

आप चार भुजाधारी सनातन देव भगवान् नारायण ही हैं। आपको कोई परास्त नहीं कर सकता। आप अविनाशी प्रभु हैं और राक्षसोंका वध करनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २६॥

नष्टधर्मव्यवस्थानां काले काले प्रजाकरः।
उत्पद्यते दस्युवधे शरणागतवत्सलः॥ २७॥

आप ही इन प्रजाओंके स्रष्टा हैं और शरणागतोंपर दया रखते हैं। जब-जब धर्मकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाले दस्यु पैदा हो जाते हैं, तब-तब उन दस्युओंका वध करनेके लिये

आप समय-समयपर अवतार लेते रहते हैं ॥ २७ ॥

एषा मया तव नराधिप राक्षसाना-
मुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत्।
भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य
जन्मप्रभावमतुलं ससुतस्य सर्वम् ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने आपको राक्षसोंकी उत्पत्तिका यह पूरा प्रसंग ठीक-ठीक सुना दिया। रघुवंशशिरोमणे ! अब आप रावण तथा उसके पुत्रोंके जन्म और अनुपम प्रभावका सारा वर्णन सुनिये ॥ २८ ॥

चिरात् सुमाली व्यचरद् रसातलं
स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली
ततस्तु लङ्कामवसद् धनेश्वरः ॥ २९ ॥

भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस सुमाली सुदीर्घ कालतक अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ रसातलमें विचरता रहा। इसी बीचमें धनाध्यक्ष कुबेरने लङ्काको अपना निवास-स्थान बनाया ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये गोकर्ण-आश्रममें जाना

कस्यचित् त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः।
रसातलान्मर्त्यलोकं सर्वं वै विचचार ह ॥ १ ॥
नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
कन्यां दुहितरं गृह्य विना पद्ममिव श्रियम् ॥ २ ॥

कुछ कालके पश्चात् नीले मेघके समान श्याम वर्णवाला राक्षस सुमाली तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे अलंकृत हो अपनी सुन्दरी कन्याको, जो बिना कमलकी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी, साथ ले रसातलसे निकला और सारे मर्त्यलोकमें विचरने लगा ॥ १-२ ॥

राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन् वै महीतले।
तदापश्यत् स गच्छन्तं पुष्पकेण धनेश्वरम् ॥ ३ ॥
गच्छन्तं पितरं द्रष्टुं पुलस्त्यतनयं विभुम्।
तं दृष्ट्वामरसंकाशं गच्छन्तं पावकोपमम् ॥ ४ ॥
रसातलं प्रविष्टः सन्मर्त्यलोकात् सविस्मयः।

उस समय भूतलपर विचरते हुए उस राक्षसराजने अग्निके समान तेजस्वी तथा देवतुल्य शोभा धारण करनेवाले धनेश्वर कुबेरको देखा, जो पुष्पक विमानद्वारा अपने पिता पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका दर्शन करनेके लिये जा रहे थे। उन्हें देखकर वह अत्यन्त विस्मित हो मर्त्यलोकसे रसातलमें प्रविष्ट हुआ ॥ ३-४½ ॥

इत्येवं चिन्तयामास राक्षसानां महामतिः ॥ ५ ॥
किं कृत्वा श्रेय इत्येवं वर्धेमहि कथं वयम्।

सुमाली बड़ा बुद्धिमान् था। वह सोचने लगा, क्या करनेसे हम राक्षसोंका भला होगा ? कैसे हमलोग उन्नति कर सकेंगे ? ॥ ५½ ॥

अथाब्रवीत् सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ६ ॥
पुत्रि प्रदानकालोऽयं यौवनं व्यतिवर्तते।
प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैः प्रतिगृह्यसे ॥ ७ ॥

ऐसा विचार करके उस राक्षसने अपनी पुत्रीसे, जिसका नाम कैकसी था, कहा—'बेटी ! अब तुम्हारे विवाहके योग्य समय आ गया है; क्योंकि इस समय तुम्हारी युवावस्था बीत रही है। तुम कहीं इनकार न कर दो, इसी भयसे श्रेष्ठ वर तुम्हारा वरण नहीं कर रहे हैं ॥ ६-७ ॥

त्वत्कृते च वयं सर्वे यन्त्रिता धर्मबुद्धयः।
त्वं हि सर्वगुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ ८ ॥

'पुत्री ! तुम्हें विशिष्ट वरकी प्राप्ति हो, इसके लिये हम-लोगोंने बहुत प्रयास किया है; क्योंकि कन्यादानके विषयमें हम धर्मबुद्धि रखनेवाले हैं। तुम तो साक्षात् लक्ष्मीके समान सर्वगुणसम्पन्न हो (अतः तुम्हारा वर भी सर्वथा तुम्हारे योग्य ही होना चाहिये) ॥ ८ ॥

कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्।
न ज्ञायते च कः कन्यां वरयेदिति कन्यके ॥ ९ ॥

'बेटी ! सम्मानकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना दुःखका ही कारण होता है; क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरुष कन्याका वरण करेगा ? ॥ ९ ॥

मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव च दीयते।
कुलत्रयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

'माताके, पिताके और जहाँ कन्या दी जाती है, उस पतिके कुलको भी कन्या सदा संशयमें डाले रहती है ॥ १० ॥

सा त्वं मुनिवरं श्रेष्ठं प्रजापतिकुलोद्भवम्।
भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ ११ ॥

'अतः बेटी! तुम प्रजापतिके कुलमें उत्पन्न, श्रेष्ठ गुणसम्पन्न, पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवाका स्वयं चलकर पतिके रूपमें वरण करो और उनकी सेवामें रहो॥ ११॥

ईदृशास्ते भविष्यन्ति पुत्राः पुत्रि न संशयः।
तेजसा भास्करसमो तादृशोऽयं धनेश्वरः॥ १२॥

'पुत्री! ऐसा करनेसे निःसंदेह तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे, जैसे ये धनेश्वर कुबेर हैं। तुमने तो देखा ही था; वे कैसे अपने तेजसे सूर्यके समान उद्दीप्त हो रहे थे?'॥ १२॥

सा तु तद् वचनं श्रुत्वा कन्यका पितृगौरवात्।
तत्र गत्वा च सा तस्थौ विश्रवा यत्र तप्यते॥ १३॥

पिताकी यह बात सुनकर उनके गौरवका खयाल करके कैकसी उस स्थानपर गयी, जहाँ मुनिवर विश्रवा तप करते थे। वहाँ जाकर वह एक जगह खड़ी हो गयी॥ १३॥

एतस्मिन्नन्तरे राम पुलस्त्यतनयो द्विजः।
अग्निहोत्रमुपातिष्ठच्चतुर्थ इव पावकः॥ १४॥

श्रीराम! इसी बीचमें पुलस्त्यनन्दन ब्राह्मण विश्रवा सायंकालका अग्निहोत्र करने लगे। वे तेजस्वी मुनि उस समय तीन अग्नियोंके साथ स्वयं भी चतुर्थ अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे॥ १४॥

अविचिन्त्य तु तां वेलां दारुणां पितृगौरवात्।
उपसृत्याग्रतस्तस्य चरणावधोमुखी स्थिता॥ १५॥

पिताके प्रति गौरवबुद्धि होनेके कारण कैकसीने उस भयंकर वेलाका विचार नहीं किया और निकट जा उनके चरणोंपर दृष्टि लगाये नीचा मुँह किये वह सामने खड़ी हो गयी॥ १५॥

विलिखन्ती मुहुर्भूमिमङ्गुष्ठाग्रेण भामिनी।
स तु तां वीक्ष्य सुश्रोणीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम्॥ १६॥
अब्रवीत् परमोदारो दीप्यमानां स्वतेजसा।

वह भामिनी अपने पैरके अँगूठेसे बारम्बार धरतीपर रेखा खींचने लगी। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुख तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली उस सुन्दरीको जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूछा— ॥१६½॥

भद्रे कस्यासि दुहिता कुतो वा त्वमिहागता॥ १७॥
किं कार्यं कस्य वा हेतोस्तत्त्वतो ब्रूहि शोभने॥ १८॥

'भद्रे! तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे यहाँ आयी हो, मुझसे तुम्हारा क्या काम है अथवा किस उद्देश्यसे यहाँ तुम्हारा आना हुआ है? शोभने! ये सब बातें मुझे ठीक-ठीक बताओ'॥ १७-१८॥

एवमुक्ता तु सा कन्या कृताञ्जलिरथाब्रवीत्।
आत्मप्रभावेण मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम्॥ १९॥
कैकसी तु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितुरागताम्।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि॥ २०॥

विश्रवाके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! आप अपने ही प्रभावसे मेरे मनोभावको समझ सकते हैं; किंतु ब्रह्मर्षे! मेरे मुखसे इतना अवश्य जान लें कि मैं अपने पिताकी आज्ञासे आपकी सेवामें आयी हूँ और मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब बातें आपको स्वतः जान लेनी चाहिये (मुझसे न कहलावें)'॥ १९-२०॥

स तु गत्वा मुनिर्ध्यानं वाक्यमेतदुवाच ह।
विज्ञातं ते मया भद्रे कारणं यन्मनोगतम्॥ २१॥
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि।
दारुणायां तु वेलायां यस्मात् त्वं मामुपस्थिता॥ २२॥
शृणु तस्मात् सुतान् भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यसि।
दारुणान् दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान्॥ २३॥
प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः।

यह सुनकर मुनिने थोड़ी देरतक ध्यान लगाया और उसके बाद कहा—'भद्रे! तुम्हारे मनका भाव मालूम हुआ। मतवाले गजराजकी भाँति मन्दगतिसे चलनेवाली सुन्दरी! तुम मुझसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो; परंतु इस दारुण वेलामें मेरे पास आयी हो, इसलिये यह भी सुन लो कि तुम कैसे पुत्रोंको जन्म दोगी। सुश्रोणि! तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाववाले और शरीरसे भी भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा राक्षसोंके साथ ही प्रेम होगा। तुम क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले राक्षसोंको ही पैदा करोगी'॥ २१—२३½॥

सा तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्याब्रवीद् वचः॥ २४॥
भगवन्नीदृशान् पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः।
नेच्छामि सुदुराचारान् प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ २५॥

मुनिका यह वचन सुनकर कैकसी उनके चरणोंपर गिर पड़ी और इस प्रकार बोली—'भगवन्! आप ब्रह्मवादी महात्मा हैं। मैं आपसे ऐसे दुराचारी पुत्रोंको पानेकी अभिलाषा नहीं रखती; अतः आप मुझपर कृपा कीजिये'॥ २४-२५॥

कन्यया त्वेवमुक्तस्तु विश्रवा मुनिपुङ्गवः।
उवाच कैकसीं भूयः पूर्णेन्दुरिव रोहिणीम्॥ २६॥

उस राक्षसकन्याके इस प्रकार कहनेपर पूर्णचन्द्रमाके समान मुनिवर विश्रवा रोहिणी-जैसी सुन्दरी कैकसीसे फिर बोले— ॥ २६॥

पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने।
मम वंशानुरूपः स धर्मात्मा च न संशयः॥ २७॥

'शुभानने! तुम्हारा जो सबसे छोटा एवं अन्तिम पुत्र होगा, वह मेरे वंशके अनुरूप धर्मात्मा होगा; इसमें संशय नहीं है'॥ २७॥

एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित्।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम्॥ २८॥
दशग्रीवं महादंष्ट्रं नीलाञ्जनचयोपमम्।
ताम्रोष्ठं विंशतिभुजं महास्यं दीप्तमूर्धजम्॥ २९॥

श्रीराम ! मुनिके ऐसा कहनेपर कैकसीने कुछ कालके अनन्तर अत्यन्त भयानक और क्रूर स्वभाववाले एक राक्षसको जन्म दिया, जिसके दस मस्तक, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, ताँबे-जैसे ओठ, बीस भुजाएँ, विशाल मुख और चमकीले केश थे। उसके शरीरका रंग कोयलेके पहाड़-जैसा काला था ॥ २८-२९ ॥

तस्मिञ्जाते ततस्तस्मिन् सज्वालकवलाः शिवाः ।
क्रव्यादाश्चापसव्यानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ ३० ॥

उसके पैदा होते ही मुँहमें अङ्गारोंके कौर लिये गीदड़ियाँ और मांसभक्षी गृध्र आदि पक्षी दायीं ओर मण्डलाकार घूमने लगे ॥ ३० ॥

ववर्ष रुधिरं देवो मेघाश्च खरनिःस्वनाः ।
प्रबभौ न च सूर्यो वै महोल्काश्चापतन् भुवि ॥ ३१ ॥
चकम्पे जगती चैव ववुर्वाताः सुदारुणाः ।
अक्षोभ्यः क्षुभितश्चैव समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३२ ॥

इन्द्रदेव रुधिरकी वर्षा करने लगे, मेघ भयंकर स्वरमें गर्जने लगे, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी, पृथ्वीपर उल्कापात होने लगा, धरती काँप उठी, भयानक आँधी चलने लगी तथा जो किसीके द्वारा क्षुब्ध नहीं किया जा सकता, वह सरिताओंका स्वामी समुद्र विक्षुब्ध हो उठा ॥ ३१-३२ ॥

अथ नामाकरोत् तस्य पितामहसमः पिता ।
दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो भविष्यति ॥ ३३ ॥

उस समय ब्रह्माजीके समान तेजस्वी पिता विश्रवा मुनिने पुत्रका नाम-करण किया—'यह दस ग्रीवाएँ लेकर उत्पन्न हुआ है, इसलिये 'दशग्रीव' नामसे प्रसिद्ध होगा' ॥ ३३ ॥

तस्य त्वनन्तरं जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।
प्रमाणाद् यस्य विपुलं प्रमाणं नेह विद्यते ॥ ३४ ॥

उसके बाद महाबली कुम्भकर्णका जन्म हुआ, जिसके शरीरसे बड़ा शरीर इस जगत्में दूसरे किसीका नहीं है ॥ ३४ ॥

ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृताननाः ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३५ ॥

इसके बाद विकराल मुखवाली शूर्पणखा उत्पन्न हुई। तदनन्तर धर्मात्मा विभीषणका जन्म हुआ, जो कैकसीके अन्तिम पुत्र थे ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जाते महासत्त्वे पुष्पवर्षं पपात ह ।
नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणदंस्तथा ।
वाक्यं चैवान्तरिक्षे च साधु साध्विति तत् तदा ॥ ३६ ॥

उस महान् सत्त्वशाली पुत्रका जन्म होनेपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और आकाशमें देवोंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस समय अन्तरिक्षमें 'साधु-साधु' की ध्वनि सुनायी देने लगी ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महौजसौ ।
कुम्भकर्णदशग्रीवौ लोकोद्वेगकरौ तदा ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण और दशग्रीव वे दोनों महाबली राक्षस लोकमें उद्वेग पैदा करनेवाले थे। वे दोनों ही उस विशाल वनमें पालित होने और बढ़ने लगे ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन् धर्मवत्सलान् ।
त्रैलोक्ये नित्यासंतुष्टो भक्षयन् विचचार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकर्ण बड़ा ही उन्मत्त निकला। वह भोजनसे कभी तृप्त ही नहीं होता था; अतः तीनों लोकोंमें घूम-घूमकर धर्मात्मा महर्षियोंको खाता फिरता था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मव्यवस्थितः ।
स्वाध्यायनियताहार उवास विजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥

विभीषण बचपनसे ही धर्मात्मा थे। वे सदा धर्ममें स्थित रहते, स्वाध्याय करते और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैश्रवणो देवस्तत्र कालेन केनचित् ।
आगतः पितरं द्रष्टुं पुष्पकेण धनेश्वरः ॥ ४० ॥

कुछ काल बीतनेपर धनके स्वामी वैश्रवण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये ॥ ४० ॥

तं दृष्ट्वा कैकसी तत्र ज्वलन्तमिव तेजसा ।
आगम्य राक्षसी तत्र दशग्रीवमुवाच ह ॥ ४१ ॥

वे अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीवके पास आयी और इस प्रकार बोली— ॥ ४१ ॥

पुत्र वैश्रवणं पश्य भ्रातरं तेजसा वृतम् ।
भ्रातृभावे समे चापि पश्यात्मानं त्वमीदृशम् ॥ ४२ ॥

'बेटा ! अपने भाई वैश्रवणकी ओर तो देखो। वे कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं ? भाई होनेके नाते तुम भी इन्हींके समान हो। परंतु अपनी अवस्था देखो, कैसी है ? ॥ ४२ ॥

दशग्रीव यथा यत्नं कुरुष्वामितविक्रम ।
यथा त्वमपि मे पुत्र भवेर्वैश्रवणोपमः ॥ ४३ ॥

'अमित पराक्रमी दशग्रीव ! मेरे बेटे ! तुम भी ऐसा कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवणकी ही भाँति तेज और वैभवसे सम्पन्न हो जाओ' ॥ ४३ ॥

मातुस्तद् वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
अमर्षमतुलं लेभे प्रतिज्ञां चाकरोत् तदा ॥ ४४ ॥

माताकी यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीवको अनुपम अमर्ष हुआ। उसने तत्काल प्रतिज्ञा की— ॥ ४४ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा ।
भविष्याम्योजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ॥ ४५ ॥

'माँ ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो। मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि अपने पराक्रमसे भाई वैश्रवणके समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा' ॥ ४५ ॥

ततः क्रोधेन तेनैव दशग्रीवः सहानुजः ।
चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म तपसे धृतमानसः ॥ ४६ ॥

प्राप्स्यामि तपसा काममिति कृत्वाध्यवस्य च ।
आगच्छदात्मसिद्ध्यर्थं गोकर्णस्याश्रमं शुभम् ॥ ४७ ॥

तदनन्तर उसी क्रोधके आवेशमें भाइयोंसहित दशग्रीवने दुष्कर कर्मकी इच्छा मनमें लेकर सोचा—'मैं तपस्यासे ही अपना मनोरथ पूर्ण कर सकूँगा,' ऐसा विचारकर उसने मनमें तपस्याका ही निश्चय किया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये वह गोकर्णके पवित्र आश्रमपर गया ॥ ४६-४७ ॥

स राक्षसस्तत्र सहानुजस्तदा
तपश्चचारातुलमुग्रविक्रमः ।
अतोषयच्चापि पितामहं विभुं
ददौ स तुष्टश्च वराञ्जयावहान् ॥ ४८ ॥

भाइयोंसहित उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने अनुपम तपस्या आरम्भ की। उस तपस्याद्वारा उसने भगवान् ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजय दिलानेवाले वरदान दिये ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

रावण आदिकी तपस्या और वर-प्राप्ति

अथाब्रवीन्मुनिं रामः कथं ते भ्रातरो वने ।
कीदृशं तु तदा ब्रह्मंस्तपस्तेपुर्महाबलाः ॥ १ ॥

इतनी कथा सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्य मुनिसे पूछा—'ब्रह्मन्! उन तीनों महाबली भाइयोंने वनमें किस प्रकार और कैसी तपस्या की?' ॥ १ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीत् तत्र रामं सुप्रीतमानसम् ।
तांस्तान् धर्मविधींस्तत्र भ्रातरस्ते समाविशन् ॥ २ ॥

तब अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! उन तीनों भाइयोंने वहाँ पृथक्-पृथक् धर्मविधियोंका अनुष्ठान किया ॥ २ ॥

कुम्भकर्णस्ततो यत्तो नित्यं धर्मपथे स्थितः ।
तताप ग्रीष्मकाले तु पञ्चाग्नीन् परितः स्थितः ॥ ३ ॥

'कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर प्रतिदिन धर्मके मार्गमें स्थित हो गर्मीके दिनोंमें अपने चारों ओर आग जला धूपमें बैठकर पञ्चाग्निका सेवन करने लगा ॥ ३ ॥

मेघाम्बुसिक्तो वर्षासु वीरासनमसेवत ।
नित्यं च शिशिरे काले जलमध्यप्रतिश्रयः ॥ ४ ॥

'फिर वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें वीरासनसे बैठकर मेघोंके बरसाये हुए जलसे भीगता रहा और जाड़ेके दिनोंमें प्रतिदिन जलके भीतर रहने लगा ॥ ४ ॥

एवं वर्षसहस्राणि दश तस्यापचक्रमुः ।
धर्मे प्रयतमानस्य सत्पथे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥

'इस प्रकार सन्मार्गमें स्थित हो धर्मके लिये प्रयत्नशील हुए उस कुम्भकर्णके दस हजार वर्ष बीत गये ॥ ५ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ६ ॥

'विभीषण तो सदासे ही धर्मात्मा थे। वे नित्यधर्मपरायण रहकर शुद्ध आचार-विचारका पालन करते हुए पाँच हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे ॥ ६ ॥

समाप्ते नियमे तस्य ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
पपात पुष्पवर्षं च तुष्टुवुश्चापि देवताः ॥ ७ ॥

'उनका नियम समाप्त होनेपर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। उनके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओंने उनकी स्तुति की ॥ ७ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि सूर्यं चैवान्ववर्तत ।
तस्थौ चोर्ध्वशिरोबाहुः स्वाध्याये धृतमानसः ॥ ८ ॥

'तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों बाँहें और मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्यायपरायण हो पाँच हजार वर्षोंतक सूर्यदेवकी आराधना की ॥ ८ ॥

एवं विभीषणस्यापि स्वर्गस्थस्येव नन्दने ।
दशवर्षसहस्राणि गतानि नियतात्मनः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार मनको वशमें रखनेवाले विभीषणके भी दस हजार वर्ष बड़े सुखसे बीते, मानो वे स्वर्गके नन्दनवनमें निवास करते हों ॥ ९ ॥

दशवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शिरश्चाग्नौ जुहाव सः ॥ १० ॥

'दशमुख रावणने दस हजार वर्षोंतक लगातार उपवास किया। प्रत्येक सहस्र वर्षके पूर्ण होनेपर वह अपना एक मस्तक काटकर आगमें होम देता था ॥ १० ॥

एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ।
शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि हुताशनम् ॥ ११ ॥

'इस तरह एक-एक करके उसके नौ हजार वर्ष बीत गये और नौ मस्तक भी अग्निदेवको भेंट हो गये ॥ ११ ॥

अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ।
छेत्तुकामे दशग्रीवे प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥

'जब दसवाँ सहस्र पूरा हुआ और दशग्रीव अपना दसवाँ मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, इसी समय पितामह ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥

पितामहस्तु सुप्रीतः सार्धं देवैरुपस्थितः ।
तत्र तावद् दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ १३ ॥

'पितामह ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंके साथ वहाँ पहुँचे थे। उन्होंने आते ही कहा— दशग्रीव ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ १३ ॥

शीघ्रं वरय धर्मज्ञ वरो यस्तेऽभिकाङ्क्षितः ।
कं ते कामं करोम्यद्य न वृथा ते परिश्रमः ॥ १४ ॥

'धर्मज्ञ ! तुम्हारे मनमें जिस वरको पानेकी इच्छा हो, उसे शीघ्र माँगो। बोलो, आज मैं तुम्हारी किस अभिलाषाको पूर्ण करूँ ? तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं होना चाहिये' ॥ १४ ॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
प्रणम्य शिरसा देवं हर्षगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥

यह सुनकर दशग्रीवकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो गयी। उसने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रणाम किया और हर्ष-गद्गदवाणीमें कहा— ॥ १५ ॥

भगवन् प्राणिनां नित्यं नान्यत्र मरणाद् भयम् ।
नास्ति मृत्युसमः शत्रुरमरत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

'भगवन् ! प्राणियोंके लिये मृत्युके सिवा और किसीका सदा भय नहीं रहता है; अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ; क्योंकि मृत्युके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है' ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दशग्रीवमुवाच ह ।
नास्ति सर्वामरत्वं ते वरमन्यं वृणीष्व मे ॥ १७ ॥

'उसके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने दशग्रीवसे कहा—'तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता; इसलिये दूसरा कोई वर माँगो' ॥ १७ ॥

एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।
दशग्रीव उवाचेदं कृताञ्जलिरथाग्रतः ॥ १८ ॥

'श्रीराम ! लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उनके सामने हाथ जोड़कर कहा— ॥ १८ ॥

सुपर्णनागयक्षाणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।
अवध्योऽहं प्रजाध्यक्ष देवतानां च शाश्वत ॥ १९ ॥

'सनातन प्रजापते ! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंके लिये अवध्य हो जाऊँ ॥ १९ ॥

नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजित ।
तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः ॥ २० ॥

'देववन्द्य पितामह ! अन्य प्राणियोंसे मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। मनुष्य आदि अन्य जीवोंको तो मैं तिनकेके समान समझता हूँ' ॥ २० ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दशग्रीवेण रक्षसा ।
उवाच वचनं देवः सह देवैः पितामहः ॥ २१ ॥

राक्षस दशग्रीवके ऐसा कहनेपर देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माजीने कहा— ॥ २१ ॥

भविष्यत्येवमेतत् ते वचो राक्षसपुङ्गव ।
एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २२ ॥

'राक्षसप्रवर ! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा।' श्रीराम ! दशग्रीवसे ऐसा कहकर पितामह फिर बोले— ॥ २२ ॥

शृणु चापि वरो भूयः प्रीतस्येह शुभो मम ।
हुतानि यानि शीर्षाणि पूर्वमग्नौ त्वयानघ ॥ २३ ॥
पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ।
वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम् ॥ २४ ॥
छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद् यथेप्सितम् ।

'निष्पाप राक्षस ! सुनो—मैं प्रसन्न होकर पुनः तुम्हें यह शुभ वर प्रदान करता हूँ—तुमने पहले अग्निमें अपने जिन-जिन मस्तकोंका हवन किया है, वे सब तुम्हारे लिये फिर पूर्ववत् प्रकट हो जायँगे। सौम्य ! इसके सिवा एक और भी दुर्लभ वर मैं तुम्हें यहाँ दे रहा हूँ—तुम अपने मनसे जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जायगा' ॥२३-२४½॥

एवं पितामहोक्तस्य दशग्रीवस्य रक्षसः ॥ २५ ॥
अग्नौ हुतानि शीर्षाणि पुनस्तान्युत्थितानि वै ।

'पितामह ब्रह्माके इतना कहते ही राक्षस दशग्रीवके वे मस्तक, जो पहले आगमें होम दिये गये थे, फिर नये रूपमें प्रकट हो गये ॥२५½॥

एवमुक्त्वा तु तं राम दशग्रीवं पितामहः ॥ २६ ॥
विभीषणमथोवाच वाक्यं लोकपितामहः ।

'श्रीराम ! दशग्रीवसे पूर्वोक्त बात कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी विभीषणसे बोले— ॥२६½॥

विभीषण त्वया वत्स धर्मसंहितबुद्धिना ॥ २७ ॥
परितुष्टोऽस्मि धर्मात्मन् वरं वरय सुव्रत ।

'बेटा विभीषण ! तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहनेवाली है, अतः मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मात्मन् ! तुम भी अपनी रुचिके अनुसार कोई वर माँगो' ॥२७½॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा वचनं प्राह साञ्जलिः ॥ २८ ॥
वृतः सर्वगुणैर्नित्यं चन्द्रमा रश्मिभिर्यथा ।
भगवन् कृतकृत्योऽहं यन्मे लोकगुरुः स्वयम् ॥ २९ ॥
प्रीतेन यदि दातव्यो वरो मे शृणु सुव्रत ।

'तब किरणमालामण्डित चन्द्रमाकी भाँति सदा समस्त गुणोंसे सम्पन्न धर्मात्मा विभीषणने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! यदि साक्षात् लोकगुरु आप मुझ-पर प्रसन्न हैं तो मैं कृतार्थ हूँ। मुझे कुछ भी पाना

शेष नहीं रहा। उत्तम व्रतको धारण करनेवाले पितामह! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना ही चाहते हैं तो सुनिये ॥२८-२९½॥

परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ॥ ३० ॥
अशिक्षितं च ब्रह्मास्त्रं भगवन् प्रतिभातु मे।

'भगवन्! बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी मेरी बुद्धि धर्ममें ही लगी रहे—उससे विचलित न हो और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्रका ज्ञान हो जाय ॥३०½॥

या या मे जायते बुद्धिर्येषु येष्वाश्रमेषु च ॥ ३१ ॥
सा सा भवतु धर्मिष्ठा तं तं धर्मं च पालये।
एष मे परमोदारो वरः परमको मतः ॥ ३२ ॥

'जिस-जिस आश्रमके विषयमें मेरा जो-जो विचार हो, वह धर्मके अनुकूल ही हो और उस-उस धर्मका मैं पालन करूँ; यही मेरे लिये सबसे उत्तम और अभीष्ट वरदान है ॥ ३१-३२ ॥

नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्।
पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ॥ ३३ ॥

'क्योंकि जो धर्ममें अनुरक्त हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है' यह सुनकर प्रजापति ब्रह्मा पुनः प्रसन्न हो विभीषणसे बोले— ॥ ३३ ॥

धर्मिष्ठस्त्वं यथा वत्स तथा चैतद् भविष्यति।
यस्माद् राक्षसयोनौ ते जातस्यामित्रनाशन ॥ ३४ ॥
नाधर्मे जायते बुद्धिरमरत्वं ददामि ते।

'वत्स! तुम धर्ममें स्थित रहनेवाले हो; अतः जो कुछ चाहते हो, वह सब पूर्ण होगा। शत्रुनाशन! राक्षसयोनिमें उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें नहीं लगती है; इसलिये मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ ॥३४½॥

इत्युक्त्वा कुम्भकर्णाय वरं दातुमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
प्रजापतिं सुराः सर्वे वाक्यं प्राञ्जलयोऽब्रुवन्।

'विभीषणसे ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्णको वर देनेके लिये उद्यत हुए, तब सब देवता उनसे हाथ जोड़कर बोले— ॥३५½॥

न तावत् कुम्भकर्णाय प्रदातव्यो वरस्त्वया ॥ ३६ ॥
जानीषे हि यथा लोकांस्त्रासयत्येष दुर्मतिः।

'प्रभो! आप कुम्भकर्णको वरदान न दीजिये; क्योंकि आप जानते हैं कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस तरह समस्त लोकोंको त्रास देता है ॥३६½॥

नन्दनेऽप्सरसः सप्त महेन्द्रानुचरा दश ॥ ३७ ॥
अनेन भक्षिता ब्रह्मन्नृषयो मानुषास्तथा।

'ब्रह्मन्! इसने नन्दनवनकी सात अप्सराओं, देवराज इन्द्रके दस अनुचरों तथा बहुत-से ऋषियों और मनुष्योंको भी खा लिया है ॥३७½॥

अलब्धवरपूर्वेण यत् कृतं राक्षसेन तु ॥ ३८ ॥
यद्येष वरलब्धः स्याद् भक्षयेद् भुवनत्रयम्।

'पहले वर न पानेपर भी इस राक्षसने जब इस प्रकार प्राणियोंके भक्षणका क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, तब यदि इसे वर प्राप्त हो जाय, उस दशामें तो यह तीनों लोकोंको खा जायगा ॥३८½॥

वरव्याजेन मोहोऽस्मै दीयतामामितप्रभ ॥ ३९ ॥
लोकानां स्वस्ति चैवं स्याद् भवेदस्य च सम्मतिः।

'अमिततेजस्वी देव! आप वरके बहाने इसको मोह प्रदान कीजिये। इससे समस्त लोकोंका कल्याण होगा और इसका भी सम्मान हो जायगा' ॥३९½॥

एवमुक्तः सुरैर्ब्रह्माचिन्तयत् पद्मसम्भवः ॥ ४० ॥
चिन्तिता नोपतस्थेऽस्य पार्श्वं देवी सरस्वती।

'देवताओंके ऐसा कहनेपर कमलयोनि ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके चिन्तन करते ही देवी सरस्वती पास आ गयीं ॥४०½॥

प्राञ्जलिः सा तु पार्श्वस्था प्राह वाक्यं सरस्वती ॥ ४१ ॥
इयमस्म्यागता देव किं कार्यं करवाण्यहम्।

उनके पार्श्वभागमें खड़ी हो सरस्वतीने हाथ जोड़कर कहा—'देव! यह मैं आ गयी। मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं कौन-सा कार्य करूँ?' ॥४१½॥

प्रजापतिस्तु तां प्राप्तां प्राह वाक्यं सरस्वतीम् ॥ ४२ ॥
वाणि त्वं राक्षसेन्द्रस्य भव वाग्देवतेप्सिता।

'तब प्रजापतिने वहाँ आयी हुई सरस्वतीदेवीसे कहा— 'वाणि! तुम राक्षसराज कुम्भकर्णकी जिह्वापर विराजमान हो देवताओंके अनुकूल वाणीके रूपमें प्रकट होओ' ॥४२½॥

तथेत्युक्त्वा प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाब्रवीत् ॥ ४३ ॥
कुम्भकर्ण महाबाहो वरं वरय यो मतः।

'तब 'बहुत अच्छा' कहकर सरस्वती कुम्भकर्णके मुखमें समा गयीं। इसके बाद प्रजापतिने उस राक्षससे कहा—'महाबाहु कुम्भकर्ण! तुम भी अपने मनके अनुकूल कोई वर माँगो' ॥४३½॥

कुम्भकर्णस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥
स्वप्तुं वर्षाण्यनेकानि देवदेव ममेप्सितम्।
एवमस्त्विति तं चोक्त्वा प्रायाद् ब्रह्मा सुरैः समम् ॥ ४५ ॥

'उनकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बोला—'देवदेव! मैं अनेकानेक वर्षोंतक सोता रहूँ। यही मेरी इच्छा है।' तब 'एवमस्तु (ऐसा ही हो)' कहकर ब्रह्माजी देवताओंके साथ चले गये ॥ ४४-४५ ॥

देवी सरस्वती चैव राक्षसं तं जहौ पुनः।
ब्रह्मणा सह देवेषु गतेषु च नभःस्थलम् ॥ ४६ ॥

विमुक्तोऽसौ सरस्वत्या स्वां संज्ञां च ततो गतः ।
कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ ४७ ॥

'फिर सरस्वतीदेवीने भी उस राक्षसको छोड़ दिया। ब्रह्माजीके साथ देवताओंके आकाशमें चले जानेपर जब सरस्वतीजी उसके ऊपरसे उतर गयीं, तब दुष्टात्मा कुम्भकर्णको चेत हुआ और वह दुःखी होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ ४६-४७ ॥

ईदृशं किमिदं वाक्यं ममाद्य वदनाच्च्युतम् ।
अहं व्यामोहितो देवैरिति मन्ये तदागतैः ॥ ४८ ॥

'अहो ! आज मेरे मुँहसे ऐसी बात क्यों निकल गयी। मैं समझता हूँ, ब्रह्माजीके साथ आये हुए देवताओंने ही उस समय मुझे मोहमें डाल दिया था' ॥ ४८ ॥

एवं लब्धवराः सर्वे भ्रातरो दीप्ततेजसः ।
श्लेष्मातकवनं गत्वा तत्र ते न्यवसन् सुखम् ॥ ४९ ॥

'इस प्रकार वे तीनों तेजस्वी भ्राता वर पाकर श्लेष्मातक-वन (लसोड़ेके जंगल) में गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

—★—

एकादशः सर्गः

रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास

सुमाली वरलब्धांस्तु ज्ञात्वा चैतान् निशाचरान् ।
उदतिष्ठद् भयं त्यक्त्वा सानुगः स रसातलात् ॥ १ ॥

रावण आदि निशाचरोंको वर प्राप्त हुआ है, यह जानकर सुमाली नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर रसातलसे निकला ॥ १ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च विरूपाक्षो महोदरः ।
उदतिष्ठन् सुसंरब्धाः सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥

साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर—ये उस राक्षसके चार मन्त्री भी रसातलसे ऊपरको उठे। वे सब-के-सब रोषावेशसे भरे हुए थे ॥ २ ॥

सुमाली सचिवैः सार्धं वृतो राक्षसपुङ्गवैः ।
अभिगम्य दशग्रीवं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ राक्षसोंसे घिरा हुआ सुमाली अपने सचिवोंके साथ दशग्रीवके पास गया और उसे छातीसे लगाकर इस प्रकार बोला— ॥ ३ ॥

दिष्ट्या ते वत्स सम्प्राप्तश्चिन्तितोऽयं मनोरथः ।
यस्त्वं त्रिभुवनश्रेष्ठाल्लब्धवान् वरमुत्तमम् ॥ ४ ॥

'वत्स ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने त्रिभुवनश्रेष्ठ ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त किया, जिससे तुम्हें यह चिरकालसे चिन्तित मनोरथ उपलब्ध हो गया ॥ ४ ॥

यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ।
तदृतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥

'महाबाहो ! जिसके कारण हम सब राक्षस लङ्का छोड़कर रसातलमें चले गये थे, भगवान् विष्णुसे प्राप्त होनेवाला हमारा यह महान् भय दूर हो गया ॥ ५ ॥

असकृत् तद्भयाद् भग्नाः परित्यज्य स्वमालयम् ।
विद्रुताः सहिताः सर्वे प्रविष्टाः स्म रसातलम् ॥ ६ ॥

'हम सब लोग बारम्बार भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होनेके कारण अपना घर छोड़ भाग निकले और सब-के-सब एक साथ ही रसातलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ६ ॥

अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसोषिता ।
निवेशिता तव भ्रात्रा धनाध्यक्षेण धीमता ॥ ७ ॥

'यह लङ्कानगरी जिसमें तुम्हारे बुद्धिमान् भाई धनाध्यक्ष कुबेर निवास करते हैं, हमलोगोंकी है। पहले इसमें राक्षस ही रहा करते थे ॥ ७ ॥

यदि नामात्र शक्यं स्यात् साम्ना दानेन वानघ ।
तरसा वा महाबाहो प्रत्यानेतुं कृतं भवेत् ॥ ८ ॥

'निष्पाप महाबाहो ! यदि साम, दान अथवा बलप्रयोगके द्वारा भी पुनः लङ्काको वापस लिया जा सके तो हमलोगोंका काम बन जाय ॥ ८ ॥

त्वं च लङ्केश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
त्वया राक्षसवंशोऽयं निमग्नोऽपि समुद्धृतः ॥ ९ ॥

'तात ! तुम्हीं लङ्काके स्वामी होओगे, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तुमने इस राक्षसवंशका जो रसातलमें डूब गया था, उद्धार किया है ॥ ९ ॥

सर्वेषां नः प्रभुश्चैव भविष्यसि महाबल ।
अथाब्रवीद् दशग्रीवो मातामहमुपस्थितम् ॥ १० ॥
वित्तेशो गुरुरस्माकं नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।

'महाबली वीर ! तुम्हीं हम सबके राजा होओगे।' यह सुनकर दशग्रीवने पास खड़े हुए अपने मातामहसे कहा—

'नानाजी ! धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अतः उनके सम्बन्धमें आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये' ॥ १०½ ॥

साम्ना हि राक्षसेन्द्रेण प्रत्याख्यातो गरीयसा ॥ ११ ॥
किंचिन्नाह तदा रक्षो ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षिताम् ।

उस श्रेष्ठ राक्षसराजके द्वारा शान्तभावसे ही ऐसा कोरा उत्तर पाकर सुमाली समझ गया कि रावण क्या करना चाहता है, इसलिये वह राक्षस चुप हो गया। फिर कुछ कहनेका साहस न कर सका ॥ ११½ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य वसन्तं रावणं ततः ॥ १२ ॥
उक्तवन्तं तथा वाक्यं दशग्रीवं निशाचरः ।
प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यमिदमाह सकारणम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर अपने स्थानपर निवास करते हुए दशग्रीव रावणसे जो सुमालीको पहले पूर्वोक्त उत्तर दे चुका था, निशाचर प्रहस्तने विनयपूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही— ॥ १२-१३ ॥

दशग्रीव महाबाहो नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
सौभ्रात्रं नास्ति शूराणां शृणु चेदं वचो मम ॥ १४ ॥

'महाबाहु दशग्रीव ! आपने अपने नानासे जो कुछ कहा है, वैसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि वीरोंमें इस तरह भ्रातृभावका निर्वाह होता नहीं देखा जाता। आप मेरी यह बात सुनिये ॥ १४ ॥

अदितिश्च दितिश्चैव भगिन्यौ सहिते हि ते ।
भार्ये परमरूपिण्यौ कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ १५ ॥

'अदिति और दिति दोनों सगी बहनें हैं। वे दोनों ही प्रजापति कश्यपकी परम सुन्दरी पत्नियाँ हैं ॥ १५ ॥

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दितिस्त्वजनयद् दैत्यान् कश्यपस्यात्मसम्भवान् ॥ १६ ॥

'अदितिने देवताओंको जन्म दिया है, जो इस समय त्रिभुवनके स्वामी हैं और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया है। देवता और दैत्य दोनों ही महर्षि कश्यपके औरस पुत्र हैं ॥ १६ ॥

दैत्यानां किल धर्मज्ञ पुरेयं सवनार्णवा ।
सपर्वता मही वीर तेऽभवन् प्रभविष्णवः ॥ १७ ॥

'धर्मज्ञ वीर ! पहले पर्वत, वन और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी दैत्योंके ही अधिकारमें थी; क्योंकि वे बड़े प्रभावशाली थे ॥ १७ ॥

निहत्य तांस्तु समरे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
देवानां वशमानीतं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ १८ ॥

'किंतु सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने युद्धमें दैत्योंको मारकर त्रिलोकीका यह अक्षय राज्य देवताओंके अधिकारमें दे दिया ॥ १८ ॥

नैतदेको भवानेव करिष्यति विपर्ययम् ।
सुरासुरैराचरितं तत् कुरुष्व वचो मम ॥ १९ ॥

'इस तरहका विपरीत आचरण केवल आप ही नहीं करेंगे। देवताओं और असुरोंने भी पहले इस नीतिसे काम लिया है; अतः आप मेरी बात मान लें' ॥ १९ ॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं वै बाढमित्येव सोऽब्रवीत् ॥ २० ॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर दशग्रीवका चित्त प्रसन्न हो गया। उसने दो घड़ीतक सोच-विचारकर कहा—'बहुत अच्छा (तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूँगा)' ॥ २० ॥

स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्नहनि वीर्यवान् ।
वनं गतो दशग्रीवः सह तैः क्षणदाचरैः ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसी दिन उसी हर्षके साथ पराक्रमी दशग्रीव उन निशाचरोंको साथ ले लङ्काके निकटवर्ती वनमें गया ॥ २१ ॥

त्रिकूटस्थः स तु तदा दशग्रीवो निशाचरः ।
प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥ २२ ॥

उस समय त्रिकूट पर्वतपर जाकर निशाचर दशग्रीव ठहर गया और बातचीत करनेमें कुशल प्रहस्तको उसने दूत बनाकर भेजा ॥ २२ ॥

प्रहस्त शीघ्रं गच्छ त्वं ब्रूहि नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
वचसा मम वित्तेशं सामपूर्वमिदं वचः ॥ २३ ॥

वह बोला—'प्रहस्त ! तुम शीघ्र जाओ और मेरे कथनानुसार धनके स्वामी राक्षसराज कुबेरसे शान्तिपूर्वक यह बात कहो ॥ २३ ॥

इयं लङ्का पुरी राजन् राक्षसानां महात्मनाम् ।
त्वया निवेशिता सौम्य नैतद् युक्तं तवानघ ॥ २४ ॥

'राजन् ! यह लङ्कापुरी महामना राक्षसोंकी है, जिसमें आप निवास कर रहे हैं। सौम्य ! निष्पाप यक्षराज ! यह आपके लिये उचित नहीं है ॥ २४ ॥

तद् भवान् यदि नो ह्यद्य दद्यादतुलविक्रम ।
कृता भवेन्मम प्रीतिर्धर्मश्चैवानुपालितः ॥ २५ ॥

'अतुल पराक्रमी धनेश्वर ! यदि आप हमें यह लङ्कापुरी लौटा दें तो इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होगी और आपके द्वारा धर्मका पालन हुआ समझा जायगा' ॥ २५ ॥

स तु गत्वा पुरीं लङ्कां धनदेन सुरक्षिताम् ।
अब्रवीत् परमोदारं वित्तपालमिदं वचः ॥ २६ ॥

तब प्रहस्त कुबेरके द्वारा सुरक्षित लङ्कापुरीमें गया और उन वित्तपालसे बड़ी उदारतापूर्ण वाणीमें बोला— ॥ २६ ॥

प्रेषितोऽहं तव भ्रात्रा दशग्रीवेण सुव्रत ।
त्वत्समीपं महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ २७ ॥
तच्छ्रूयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
वचनं मम वित्तेश यद् ब्रवीति दशाननः ॥ २८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, महाबाहु, महाप्राज्ञ धनेश्वर !

आपके भाई दशग्रीवने मुझे आपके पास भेजा है। दशमुख रावण आपसे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह बता रहा हूँ। आप मेरी बात सुनिये ॥ २७-२८ ॥

इयं किल पुरी रम्या सुमालिप्रमुखैः पुरा।
भुक्तपूर्वा विशालाक्ष राक्षसैर्भीमविक्रमैः ॥ २९ ॥
तेन विज्ञाप्यते सोऽयं साम्प्रतं विश्रवात्मज।
तदेषा दीयतां तात याचतस्तस्य सामतः ॥ ३० ॥

'विशाललोचन वैश्रवण! यह रमणीय लङ्कापुरी पहले भयानक पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसोंके अधिकारमें रही है। उन्होंने बहुत समयतक इसका उपभोग किया है। अतः वे दशग्रीव इस समय यह सूचित कर रहे हैं कि 'यह लङ्का जिनकी वस्तु है, उन्हें लौटा दी जाय।' तात! शान्तिपूर्वक याचना करनेवाले दशग्रीवको आप यह पुरी लौटा दें' ॥ २९-३० ॥

प्रहस्तादपि संश्रुत्य देवो वैश्रवणो वचः।
प्रत्युवाच प्रहस्तं तं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ३१ ॥

प्रहस्तके मुखसे यह बात सुनकर वाणीका मर्म समझनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् वैश्रवणने प्रहस्तको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ३१ ॥

दत्ता ममेयं पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः।
निवेशिता च मे रक्षो दानमानादिभिर्गुणैः ॥ ३२ ॥

'राक्षस! यह लङ्का पहले निशाचरोंसे सूनी थी। उस समय पिताजीने मुझे इसमें रहनेकी आज्ञा दी और मैंने इसमें दान, मान आदि गुणोंद्वारा प्रजाजनोंको बसाया ॥ ३२ ॥

ब्रूहि गच्छ दशग्रीवं पुरी राज्यं च यन्मम।
तत्राप्येतन्महाबाहो भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥ ३३ ॥

'दूत! तुम जाकर दशग्रीवसे कहो—महाबाहो! यह पुरी तथा यह निष्कण्टक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो ॥ ३३ ॥

अविभक्तं त्वया सार्धं राज्यं यद्यपि मे वसु।
एवमुक्त्वा धनाध्यक्षो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३४ ॥

'मेरा राज्य तथा सारा धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है' ऐसा कहकर धनाध्यक्ष कुबेर अपने पिता विश्रवा मुनिके पास चले गये ॥ ३४ ॥

अभिवाद्य गुरुं प्राह रावणस्य यदीप्सितम्।
एष तात दशग्रीवो दूतं प्रेषितवान् मम ॥ ३५ ॥
दीयतां नगरी लङ्का पूर्वं रक्षोगणोषिता।
मयात्र यदनुष्ठेयं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥ ३६ ॥

वहाँ पिताको प्रणाम करके उन्होंने रावणकी जो इच्छा थी, उसे इस प्रकार बताया—'तात! आज दशग्रीवने मेरे पास दूत भेजा और कहलाया है कि इस लङ्का नगरीमें पहले राक्षस रहा करते थे, अतः इसे राक्षसोंको लौटा दीजिये। सुव्रत! अब मुझे इस विषयमें क्या करना चाहिये, बतानेकी कृपा करें' ॥ ३५-३६ ॥

ब्रह्मर्षिस्त्वेवमुक्तोऽसौ विश्रवा मुनिपुङ्गवः।
प्राञ्जलिं धनदं प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३७ ॥

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्मर्षि मुनिवर विश्रवा हाथ जोड़कर खड़े हुए धनद कुबेरसे बोले—'बेटा! मेरी बात सुनो ॥ ३७ ॥

दशग्रीवो महाबाहुरुक्तवान् मम संनिधौ।
मया निर्भर्त्सितश्चासीद् बहुशोक्तः सुदुर्मतिः ॥ ३८ ॥
स क्रोधेन मया चोक्तो ध्वंससे च पुनः पुनः।

महाबाहु दशग्रीवने मेरे निकट भी यह बात कही थी। इसके लिये मैंने उस दुर्बुद्धिको बहुत फटकारा, डाँट बतायी और बारम्बार क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! ऐसा करनेसे तेरा पतन हो जायगा' किंतु इसका कुछ फल नहीं हुआ ॥ ३८½ ॥

श्रेयोऽभियुक्तं धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३९ ॥
वरप्रदानसम्मूढो मान्यामान्यं सुदुर्मतिः।
न वेत्ति मम शापाच्च प्रकृतिं दारुणां गतः ॥ ४० ॥

'बेटा! अब तुम्हीं मेरे धर्मानुकूल एवं कल्याणकारी वचनको ध्यान देकर सुनो। रावणकी बुद्धि बहुत ही खोटी है। वह वर पाकर मदमत्त हो उठा है—विवेक खो बैठा है। मेरे शापके कारण भी उसकी प्रकृति क्रूर हो गयी है ॥ ३९-४० ॥

तस्माद् गच्छ महाबाहो कैलासं धरणीधरम्।
निवेशय निवासार्थं त्यक्त्वा लङ्कां सहानुगः ॥ ४१ ॥

'इसलिये महाबाहो! अब तुम अनुचरोंसहित लङ्का छोड़कर कैलास पर्वतपर चले जाओ और अपने रहनेके लिये वहीं दूसरा नगर बसाओ ॥ ४१ ॥

तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी।
काञ्चनैः सूर्यसंकाशैः पङ्कजैः संवृतोदका ॥ ४२ ॥
कुमुदैरुत्पलैश्चैव अन्यैश्चैव सुगन्धिभिः।

'वहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ रमणीय मन्दाकिनी नदी बहती है, जिसका जल सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्णमय कमलों, कुमुदों, उत्पलों और दूसरे-दूसरे सुगन्धित कुसुमोंसे आच्छादित है ॥ ४२½ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिंनराः ॥ ४३ ॥
विहारशीलाः सततं रमन्ते सर्वदाश्रिताः।
नहि क्षमं तवानेन वैरं धनद रक्षसा ॥ ४४ ॥
जानीषे हि यथानेन लब्धः परमको वरः ॥ ४५ ॥

'उस पर्वतपर देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग और किन्नर आदि दिव्य प्राणी, जिन्हें स्वभावसे ही घूमना-फिरना अधिक प्रिय है, सदा रहते हुए निरन्तर आनन्दका अनुभव करते हैं। धनद! इस राक्षसके साथ तुम्हारा वैर करना उचित नहीं है। तुम तो जानते ही हो कि इसने ब्रह्माजीसे कैसा उत्कृष्ट वर प्राप्त किया है' ॥ ४३—४५ ॥

एवमुक्तो गृहीत्वा तु तद्वचः पितृगौरवात्।
सदारपुत्रः सामात्यः सवाहनधनो गतः॥ ४६॥

मुनिके ऐसा कहनेपर कुबेरने पिताका मान रखते हुए उनकी बात मान ली और स्त्री, पुत्र, मन्त्री, वाहन तथा धन साथ लेकर वे लङ्कासे कैलासको चले गये॥ ४६॥

प्रहस्तोऽथ दशग्रीवं गत्वा वचनमब्रवीत्।
प्रहृष्टात्मा महात्मानं सहामात्यं सहानुजम्॥ ४७॥

तदनन्तर प्रहस्त प्रसन्न होकर मन्त्री और भाइयोंके साथ बैठे हुए महामना दशग्रीवके पास जाकर बोला—॥ ४७॥

शून्या सा नगरी लङ्का त्यक्त्वैनां धनदो गतः।
प्रविश्य तां सहास्माभिः स्वधर्मं तत्र पालय॥ ४८॥

'लङ्का नगरी खाली हो गयी। कुबेर उसे छोड़कर चले गये। अब आप हमलोगोंके साथ उसमें प्रवेश करके अपने धर्मका पालन कीजिये'॥ ४८॥

एवमुक्तो दशग्रीवः प्रहस्तेन महाबलः।
विवेश नगरीं लङ्कां भ्रातृभिः सबलानुगैः॥ ४९॥
धनदेन परित्यक्तां सुविभक्तमहापथाम्।
आरुरोह स देवारिः स्वर्गं देवाधिपो यथा॥ ५०॥

प्रहस्तके ऐसा कहनेपर महाबली दशग्रीवने अपनी सेना, अनुचर तथा भाइयोंसहित कुबेरद्वारा त्यागी हुई लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। उस नगरीमें सुन्दर विभागपूर्वक बड़ी-बड़ी सड़कें बनी थीं। जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गके सिंहासनपर आरूढ़ हुए थे, उसी प्रकार देवद्रोही रावणने लङ्कामें पदार्पण किया॥ ४९-५०॥

स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा
निवेशयामास पुरीं दशाननः।
निकामपूर्णा च बभूव सापुरी
निशाचरैर्नीलबलाहकोपमैः॥ ५१॥

उस समय निशाचरोंने दशमुख रावणका राज्याभिषेक किया। फिर रावणने उस पुरीको बसाया। देखते-देखते समूची लङ्कापुरी नील मेघके समान वर्णवाले राक्षसोंसे पूर्णतः भर गयी॥ ५१॥

धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगौरवा-
न्न्यवेशयच्छशिविमले गिरौ पुरीम्।
स्वलंकृतैर्भवनवरैर्विभूषितां
पुरंदरः स्वरिव यथामरावतीम्॥ ५२॥

धनके स्वामी कुबेरने पिताकी आज्ञाको आदर देकर चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिवाले कैलास पर्वतपर शोभाशाली श्रेष्ठ भवनोंसे विभूषित अलकापुरी बसायी, ठीक वैसे ही जैसे देवराज इन्द्रने स्वर्गलोकमें अमरावती पुरी बसायी थी॥ ५२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकादशः सर्गः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ ११॥

द्वादशः सर्गः

शूर्पणखा तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका जन्म

राक्षसेन्द्रोऽभिषिक्तस्तु भ्रातृभिः सहितस्तदा।
ततः प्रदानं राक्षस्या भगिन्याः समचिन्तयत्॥ १॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—श्रीराम!) अपना अभिषेक हो जानेपर जब राक्षसराज रावण भाइयोंसहित लङ्कापुरीमें रहने लगा, तब उसे अपनी बहिन राक्षसी शूर्पणखाके ब्याहकी चिन्ता हुई॥ १॥

स्वसारं कालकेयाय दानवेन्द्राय राक्षसीम्।
ददौ शूर्पणखां नाम विद्युज्जिह्वाय राक्षसः॥ २॥

उस राक्षसने दानवराज विद्युज्जिह्वको, जो कालकाका पुत्र था, अपनी बहन शूर्पणखा ब्याह दी॥ २॥

अथ दत्त्वा स्वयं रक्षो मृगयामटते स्म तत्।
तत्रापश्यत् ततो राम मयं नाम दितेः सुतम्॥ ३॥
कन्यासहायं तं दृष्ट्वा दशग्रीवो निशाचरः।
अपृच्छत् को भवानेको निर्मनुष्यमृगे वने॥ ४॥
अनया मृगशावाक्ष्या किमर्थं सह तिष्ठसि।

श्रीराम! बहिनका ब्याह करके राक्षस रावण एक दिन स्वयं शिकार खेलनेके लिये वनमें घूम रहा था। वहाँ उसने दितिके पुत्र मयको देखा। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। उसे देखकर निशाचर दशग्रीवने पूछा—'आप कौन हैं, जो मनुष्यों और पशुओंसे रहित इस सूने वनमें अकेले घूम रहे हैं? इस मृगनयनी कन्याके साथ आप यहाँ किस उद्देश्यसे निवास करते हैं?'॥ ३-४½॥

मयस्तदाब्रवीद् राम पृच्छन्तं तं निशाचरम्॥ ५॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिदं तव।

श्रीराम! इस प्रकार पूछनेवाले उस निशाचरसे मय बोला—'सुनो, मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हें यथार्थरूपसे बता रहा हूँ॥ ५½॥

हेमा नामाप्सरास्तात श्रुतपूर्वा यदि त्वया॥ ६॥
दैवतैर्मम सा दत्ता पौलोमीव शतक्रतोः।
तस्यां सक्तमना ह्यासं दशवर्षशताम्यहम्॥ ७॥

सा च दैवतकार्येण गता वर्षाश्चतुर्दश।
तस्याः कृते च हेमायाः सर्वं हेममयं पुरम्॥ ८॥
वज्रवैदूर्यचित्रं च मायया निर्मितं मया।
तत्राहमवसं दीनस्तया हीनः सुदुःखितः॥ ९॥

'तात! तुमने पहले कभी सुना होगा, स्वर्गमें हेमा नामसे प्रसिद्ध एक अप्सरा रहती है। उसे देवताओंने उसी प्रकार मुझे अर्पित कर दिया था, जैसे पुलोम दानवकी कन्या शची देवराज इन्द्रको दी गयी थी। मैं उसीमें आसक्त होकर एक सहस्र वर्षोंतक उसके साथ रहा हूँ। एक दिन वह देवताओंके कार्यसे स्वर्गलोकको चली गयी, तबसे चौदह वर्ष बीत गये। मैंने उस हेमाके लिये मायासे एक नगरका निर्माण किया था, जो सम्पूर्णतः सोनेका बना है। हीरे और नीलमके संयोगसे वह विचित्र शोभा धारण करता है। उसीमें मैं अबतक उसके वियोगसे अत्यन्त दुःखी एवं दीन होकर रहता था॥ ६—९॥

तस्माद् पुराद् दुहितरं गृहीत्वा वनमागतः।
इयं ममात्मजा राजंस्तस्याः कुक्षौ विवर्धिता॥ १०॥

'उसी नगरसे इस कन्याको साथ लेकर मैं वनमें आया हूँ। राजन्! यह मेरी पुत्री है, जो हेमाके गर्भमें ही पली है और उससे उत्पन्न होकर मेरेद्वारा पालित हो बड़ी हुई है॥ १०॥

भर्तारमनया सार्धमस्याः प्राप्तोऽस्मि मार्गितुम्।
कन्यापितृत्वं दुःखं हि सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम्॥ ११॥
कन्या हि द्वे कुले नित्य संशये स्थाप्य तिष्ठति।

'इसके साथ मैं इसके योग्य पतिकी खोज करनेके लिये आया हूँ। मानकी अभिलाषा रखनेवाले प्रायः सभी लोगोंके लिये कन्याका पिता होना कष्टकारक होता है। (क्योंकि इसके लिये कन्याके पिताको दूसरोंके सामने झुकना पड़ता है।) कन्या सदा दो कुलोंको संशयमें डाले रहती है॥ ११½॥

पुत्रद्वयं ममाप्यस्यां भार्यायां सम्बभूव ह॥ १२॥
मायावी प्रथमस्तात दुन्दुभिस्तदनन्तरः।

'तात! मेरी इस भार्या हेमाके गर्भसे दो पुत्र भी हुए, जिनमें प्रथम पुत्रका नाम मायावी और दूसरेका दुन्दुभि है॥ १२½॥

एवं ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः॥ १३॥
त्वामिदानीं कथं तात जानीयां को भवानिति।

तात! तुमने पूछा था, इसलिये मैंने इस तरह अपनी सारी बातें तुम्हें यथार्थरूपसे बता दीं। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो? यह मुझे किस तरह ज्ञात हो सकेगा?'॥ १३½॥

एवमुक्तं तु तद् रक्षो विनीतमिदमब्रवीत्॥ १४॥
अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः।
मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत्॥ १५॥

मयासुरके इस प्रकार कहनेपर राक्षस रावण विनीतभावसे यों बोला—'मैं पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाका बेटा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। मैं जिन विश्रवा मुनिसे उत्पन्न हुआ हूँ, वे ब्रह्माजीसे तीसरी पीढ़ीमें पैदा हुए हैं'॥ १४-१५॥

एवमुक्तस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवः।
महर्षेस्तनयं ज्ञात्वा मयो हर्षमुपागतः॥ १६॥
दातुं दुहितरं तस्मै रोचयामास तत्र वै।

श्रीराम! राक्षसराजके ऐसा कहनेपर दानव मय महर्षि विश्रवाके उस पुत्रका परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसके साथ वहाँ उसने अपनी पुत्रीका विवाह कर देनेकी इच्छा की॥ १६½॥

करेण तु करं तस्या ग्राहयित्वा मयस्तदा॥ १७॥
प्रहसन् प्राह दैत्येन्द्रो राक्षसेन्द्रमिदं वचः।

इसके बाद दैत्यराज मय अपनी बेटीका हाथ रावणके हाथमें देकर हँसता हुआ उस राक्षसराजसे इस प्रकार बोला—॥ १७½॥

इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता॥ १८॥
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।

'राजन्! यह मेरी बेटी है, जिसे हेमा अप्सराने अपने गर्भमें धारण किया था। इसका नाम मन्दोदरी है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार करो'॥ १८½॥

बाढमित्येव तं राम दशग्रीवोऽभ्यभाषत॥ १९॥
प्रज्वाल्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाणिसंग्रहम्।

श्रीराम! तब दशग्रीवने 'बहुत अच्छा' कहकर मयासुरकी बात मान ली। फिर वहाँ उसने अग्निको प्रज्वलित करके मन्दोदरीका पाणिग्रहण किया॥ १९½॥

स हि तस्य मयो राम शापाभिज्ञस्तपोधनात्॥ २०॥
विदित्वा तेन सा दत्ता तस्य पैतामहं कुलम्।

रघुनन्दन! यद्यपि तपोधन विश्रवासे रावणको जो क्रूर-प्रकृति होनेका शाप मिला था, उसे मयासुर जानता था; तथापि रावणको ब्रह्माजीके कुलका बालक समझकर उसने उसको अपनी कन्या दे दी॥ २०½॥

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रददौ परमाद्भुताम्॥ २१॥
परेण तपसा लब्धां जघ्निर्वाल्लक्ष्मणं यया।

साथ ही उत्कृष्ट तपस्यासे प्राप्त हुई एक परम अद्भुत अमोघ शक्ति भी प्रदान की, जिसके द्वारा रावणने लक्ष्मणको घायल किया था॥ २१½॥

एवं स कृत्वा दारान् वै लङ्कायाः ईश्वरः प्रभुः॥ २२॥
गत्वा तु नगरीं भार्ये भ्रातृभ्यां समुपाहरत्।

इस प्रकार दारपरिग्रह (विवाह) करके प्रभावशाली लङ्केश्वर रावण लङ्कापुरीमें गया और अपने दोनों भाइयोंके लिये भी दो भार्याएँ उनका विवाह कराकर ले आया॥ २२½॥

वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालेति नामतः ॥ २३ ॥
तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रावणः समकल्पयत् ।

विरोचनकुमार बलिकी दौहित्रीको, जिसका नाम वज्रज्वाला था, रावणने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया ॥२३½॥

गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
सरमां नाम धर्मज्ञां लेभे भार्यां विभीषणः ।

गन्धर्वराज महात्मा शैलूषकी कन्या सरमाको, जो धर्मके तत्त्वको जाननेवाली थी, विभीषणने अपनी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया ॥२४½॥

तीरे तु सरसो वै तु संजज्ञे मानसस्य हि ॥ २५ ॥
सरस्तदा मानसं तु ववृधे जलदागमे ।
मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाक्रन्दितं वचः ॥ २६ ॥
सरो मा वर्धयस्वेति ततः सा सरमाभवत् ।

वह मानसरोवरके तटपर उत्पन्न हुई थी। जब उसका जन्म हुआ, उस समय वर्षा ऋतुका आगमन होनेसे मानसरोवर बढ़ने लगा। तब उस कन्याकी माताने पुत्रीके स्नेहसे करुणक्रन्दन करते हुए उस सरोवरसे कहा—'**सरो मा वर्धयस्व** (हे सरोवर! तुम अपने जलको बढ़ने न दो)।' उसने घबराहटमें '**सरः मा**' ऐसा कहा था; इसलिये उस कन्याका नाम सरमा हो गया ॥२५-२६½॥

एवं ते कृतदारा वै रेमिरे तत्र राक्षसाः ॥ २७ ॥
स्वां स्वां भार्यामुपादाय गन्धर्वा इव नन्दने ।

इस प्रकार वे तीनों राक्षस विवाहित होकर अपनी-अपनी स्त्रीको साथ ले नन्दनवनमें विहार करनेवाले गन्धर्वोंके समान लङ्कामें सुखपूर्वक रमण करने लगे ॥२७½॥

ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥ २८ ॥
स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते ।

तदनन्तर कुछ कालके बाद मन्दोदरीने अपने पुत्र मेघनादको जन्म दिया, जिसे आपलोग इन्द्रजित्के नामसे पुकारते थे ॥२८½॥

जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना ॥ २९ ॥
रुदता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपमः ।

पूर्वकालमें उस रावणपुत्रने पैदा होते ही रोते-रोते मेघके समान गम्भीर नाद किया था ॥२९½॥

जडीकृता च सा लङ्का तस्य नादेन राघव ॥ ३० ॥
पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम् ।

रघुनन्दन! उस मेघतुल्य नादसे सारी लङ्का जडवत् स्तब्ध रह गयी थी; इसलिये पिता रावणने स्वयं ही उसका नाम मेघनाद रखा ॥३०½॥

सोऽवर्धत तदा राम रावणान्तःपुरे शुभे ॥ ३१ ॥
लक्ष्यमाणो वरस्त्रीभिश्छन्नः काष्ठैरिवानलः ।
मातापित्रोर्महाहर्षं जनयन् रावणात्मजः ॥ ३२ ॥

श्रीराम! उस समय वह रावणकुमार रावणके सुन्दर अन्तःपुरमें माता-पिताको महान् हर्ष प्रदान करता हुआ श्रेष्ठ नारियोंसे सुरक्षित हो काष्ठसे आच्छादित हुई अग्निके समान बढ़ने लगा ॥ ३१-३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

—★—

त्रयोदशः सर्गः

रावणद्वारा बनवाये गये शयनागारमें कुम्भकर्णका सोना, रावणका अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतको मार डालना

अथ लोकेश्वरोत्सृष्टा तत्र कालेन केनचित् ।
निद्रा समभवत् तीव्रा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर लोकेश्वर ब्रह्माजीकी भेजी हुई निद्रा जँभाई आदिके रूपमें मूर्तिमती हो कुम्भकर्णके भीतर तीव्र वेगसे प्रकट हुई ॥ १ ॥

ततो भ्रातरमासीनं कुम्भकर्णोऽब्रवीद् वचः ।
निद्रा मां बाधते राजन् कारयस्व ममालयम् ॥ २ ॥

तब कुम्भकर्णने पास ही बैठे हुए अपने भाई रावणसे कहा—'राजन्! मुझे नींद सता रही है; अतः मेरे लिये शयन करनेके योग्य घर बनवा दें' ॥ २ ॥

विनियुक्तास्ततो राज्ञा शिल्पिनो विश्वकर्मवत् ।
विस्तीर्णं योजनं स्निग्धं ततो द्विगुणमायतम् ॥ ३ ॥
दर्शनीयं निराबाधं कुम्भकर्णस्य चक्रिरे ।
स्फाटिकैः काञ्चनैश्चित्रैः स्तम्भैः सर्वत्र शोभितम् ॥ ४ ॥

यह सुनकर राक्षसराजने विश्वकर्माके समान सुयोग्य शिल्पियोंको घर बनानेके लिये आज्ञा दे दी। उन शिल्पियोंने दो योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा चिकना घर बनाया, जो देखने ही योग्य था। उसमें किसी प्रकारकी बाधाका अनुभव नहीं होता था। उसमें सर्वत्र स्फटिकमणि एवं सुवर्णके बने हुए खम्भे लगे थे, जो उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ३-४ ॥

वैदूर्यकृतसोपानं किङ्किणीजालकं तथा।
दान्ततोरणविन्यस्तं वज्रस्फटिकवेदिकम्॥ ५॥

उसमें नीलमकी सीढ़ियाँ बनी थीं। सब ओर घुघुरूदार झालरें लगायी गयी थीं। उसका सदर फाटक हाथी-दाँतका बना हुआ था और हीरे तथा स्फटिकमणिकी वेदी एवं चबूतरे शोभा दे रहे थे॥ ५॥

मनोहरं सर्वसुखं कारयामास राक्षसः।
सर्वत्र सुखदं नित्यं मेरोः पुण्यां गुहामिव॥ ६॥

वह भवन सब प्रकारसे सुखद एवं मनोहर था। मेरुकी पुण्यमयी गुफाके समान सदा सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला था। राक्षसराज रावणने कुम्भकर्णके लिये ऐसा सुन्दर एवं सुविधाजनक शयनागार बनवाया॥ ६॥

तत्र निद्रां समाविष्टः कुम्भकर्णो महाबलः।
बहून्यब्दसहस्राणि शयानो न च बुध्यते॥ ७॥

महाबली कुम्भकर्ण उस घरमें जाकर निद्राके वशीभूत हो कई हजार वर्षोंतक सोता रहा। जाग नहीं पाता था॥ ७॥

निद्राभिभूते तु तदा कुम्भकर्णे दशाननः।
देवर्षियक्षगन्धर्वान् संजघ्ने हि निरङ्कुशः॥ ८॥

जब कुम्भकर्ण निद्रासे अभिभूत होकर सो गया, तब दशमुख रावण उच्छृङ्खल हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वोंके समूहोंको मारने तथा पीड़ा देने लगा॥ ८॥

उद्यानानि विचित्राणि नन्दनादीनि यानि च।
तानि गत्वा सुसंक्रुद्धो भिनत्ति स्म दशाननः॥ ९॥

देवताओंके नन्दनवन आदि जो विचित्र उद्यान थे, उनमें जाकर दशानन अत्यन्त कुपित हो उन सबको उजाड़ देता था॥ ९॥

नदीं गज इव क्रीडन् वृक्षान् वायुरिव क्षिपन्।
नगान् वज्र इवोत्सृष्टो विध्वंसयति राक्षसः॥ १०॥

वह राक्षस नदीमें हाथीकी भाँति क्रीड़ा करता हुआ उसकी धाराओंको छिन्न-भिन्न कर देता था। वृक्षोंको वायुकी भाँति झकझोरता हुआ उखाड़ फेंकता था और पर्वतोंको इन्द्रके हाथसे छूटे हुए वज्रकी भाँति तोड़-फोड़ डालता था॥ १०॥

तथावृत्तं तु विज्ञाय दशग्रीवं धनेश्वरः।
कुलानुरूपं धर्मज्ञो वृत्तं संस्मृत्य चात्मनः॥ ११॥
सौभ्रात्रदर्शनार्थं तु दूतं वैश्रवणस्तदा।
लङ्कां सम्प्रेषयामास दशग्रीवस्य वै हितम्॥ १२॥

दशग्रीवके इस निरंकुश बर्तावका समाचार पाकर धनके स्वामी धर्मज्ञ कुबेरने अपने कुलके अनुरूप आचार-व्यवहारका विचार करके उत्तम भ्रातृप्रेमका परिचय देनेके लिये लङ्कामें एक दूत भेजा। उनका उद्देश्य यह था कि मैं रावणको उसके हितकी बात बताकर राहपर लाऊँ॥ ११-१२॥

स गत्वा नगरीं लङ्कामाससाद विभीषणम्।
मानितस्तेन धर्मेण पृष्टश्चागमनं प्रति॥ १३॥

वह दूत लङ्कापुरीमें जाकर पहले विभीषणसे मिला। विभीषणने धर्मके अनुसार उसका सत्कार किया और लङ्कामें आनेका कारण पूछा॥ १३॥

पृष्ट्वा च कुशलं राज्ञो ज्ञातीनां च विभीषणः।
सभायां दर्शयामास तमासीनं दशाननम्॥ १४॥

फिर बन्धु-बान्धवोंका कुशल-समाचार पूछकर विभीषणने उस दूतको ले जाकर राजसभामें बैठे हुए रावणसे मिलाया॥ १४॥

स दृष्ट्वा तत्र राजानं दीप्यमानं स्वतेजसा।
जयेति वाचा सम्पूज्य तूष्णीं समभिवर्तत॥ १५॥

राजा रावण सभामें अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था, उसे देखकर दूतने 'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर वाणीद्वारा उसका सत्कार किया और फिर वह कुछ देरतक चुपचाप खड़ा रहा॥ १५॥

स तत्रोत्तमपर्यङ्के वरास्तरणशोभिते।
उपविष्टं दशग्रीवं दूतो वाक्यमथाब्रवीत्॥ १६॥

तत्पश्चात् उत्तम बिछौनेसे सुशोभित एक श्रेष्ठ पलङ्गपर बैठे हुए दशग्रीवसे उस दूतने इस प्रकार कहा—॥ १६॥

राजन् वदामि ते सर्वं भ्राता तव यदब्रवीत्।
उभयोः सदृशं वीर वृत्तस्य च कुलस्य च॥ १७॥

'वीर महाराज! आपके भाई धनाध्यक्ष कुबेरने आपके पास जो संदेश भेजा है, वह माता-पिता दोनोंके कुल तथा सदाचारके अनुरूप है, मैं उसे पूर्णरूपसे आपको बता रहा हूँ; सुनिये—॥ १७॥

साधु पर्याप्तमेतावत् कृत्यश्चारित्रसंग्रहः।
साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते॥ १८॥

'दशग्रीव! तुमने अबतक जो कुछ कुकृत्य किया है, इतना ही बहुत है। अब तो तुम्हें भलीभाँति सदाचारका संग्रह करना चाहिये। यदि हो सके तो धर्मके मार्गपर स्थित रहो; यही तुम्हारे लिये अच्छा होगा॥ १८॥

दृष्टं मे नन्दनं भग्नमृषयो निहताः श्रुताः।
देवतानां समुद्योगस्त्वत्तो राजन् मया श्रुतः॥ १९॥

'तुमने नन्दनवनको उजाड़ दिया—यह मैंने अपनी आँखों देखा है। तुम्हारे द्वारा बहुत-से ऋषियोंका वध हुआ है, यह भी मेरे सुननेमें आया है। राजन्! (इससे तंग आकर देवता तुमसे बदला लेना चाहते हैं) मैंने सुना है कि तुम्हारे विरुद्ध देवताओंका उद्योग आरम्भ हो गया है॥ १९॥

निराकृतश्च बहुशस्त्वयाहं राक्षसाधिप।
सापराधोऽपि बालो हि रक्षितव्यः स्वबान्धवैः॥ २०॥

'राक्षसराज! तुमने कई बार मेरा भी तिरस्कार किया है; तथापि यदि बालक अपराध कर दे तो भी अपने बन्धु-

बान्धवोंको तो उसकी रक्षा ही करनी चाहिये (इसीलिये तुम्हें हितकारक सलाह दे रहा हूँ) ॥ २० ॥

अहं तु हिमवत्पृष्ठं गतो धर्ममुपासितुम्।
रौद्रं व्रतं समास्थाय नियतो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥

'मैं शौच-संतोषादि नियमोंके पालन और इन्द्रियसंयम-पूर्वक 'रौद्र-व्रत'का आश्रय ले धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये हिमालयके एक शिखरपर गया था ॥ २१ ॥

तत्र देवो मया दृष्ट उमया सहितः प्रभुः।
सव्यं चक्षुर्मया दैवात् तत्र देव्यां निपातितम् ॥ २२ ॥
का त्वेषेति महाराज न खल्वन्येन हेतुना।
रूपं चानुपमं कृत्वा रुद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥

'वहाँ मुझे उमासहित भगवान् महादेवजीका दर्शन हुआ। महाराज! उस समय मैंने केवल यह जाननेके लिये कि देखूँ ये कौन हैं? दैववश देवी पार्वतीपर अपनी बायीं दृष्टि डाली थी। निश्चय ही मैंने दूसरे किसी हेतुसे (विकारयुक्त भावनासे) उनकी ओर नहीं देखा था। उस वेलामें देवी रुद्राणी अनुपम रूप धारण करके वहाँ खड़ी थीं ॥ २२-२३ ॥

देव्या दिव्यप्रभावेण दग्धं सव्यं ममेक्षणम्।
रेणुध्वस्तामिव ज्योतिः पिङ्गलत्वमुपागतम् ॥ २४ ॥

'देवीके दिव्य प्रभावसे उस समय मेरी बायीं आँख जल गयी और दूसरी (दायीं आँख) भी धूलसे भरी हुई-सी पिङ्गल वर्णकी हो गयी ॥ २४ ॥

ततोऽहमन्यद् विस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरेस्तटम्।
तूष्णीं वर्षशतान्यष्टौ समधारं महाव्रतम् ॥ २५ ॥

'तदनन्तर मैंने पर्वतके दूसरे विस्तृत तटपर जाकर आठ सौ वर्षोंतक मौनभावसे उस महान् व्रतको धारण किया ॥ २५ ॥

समाप्ते नियते तस्मिंस्तत्र देवो महेश्वरः।
ततः प्रीतेन मनसा प्राह वाक्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥

'उस नियमके समाप्त होनेपर भगवान् महेश्वरदेवने मुझे दर्शन दिया और प्रसन्न मनसे कहा— ॥ २६ ॥

प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुव्रत।
मया चैतद् व्रतं चीर्णं त्वया चैव धनाधिप ॥ २७ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मज्ञ धनेश्वर! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। एक तो मैंने इस व्रतका आचरण किया है और दूसरे तुमने ॥ २७ ॥

तृतीयः पुरुषो नास्ति यश्चरेद् व्रतमीदृशम्।
व्रतं सुदुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुरा ॥ २८ ॥

'तीसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो ऐसे कठोर व्रतका पालन कर सके। इस अत्यन्त दुष्कर व्रतको पूर्वकालमें मैंने ही प्रकट किया था ॥ २८ ॥

तत्सखित्वं मया सौम्य रोचयस्व धनेश्वर।
तपसा निर्जितश्चैव सखा भव ममानघ ॥ २९ ॥

'अतः सौम्य धनेश्वर! अब तुम मेरे साथ मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करो, यह सम्बन्ध तुम्हें पसंद आना चाहिये। अनघ! तुमने अपने तपसे मुझे जीत लिया है; अतः मेरा मित्र बनकर रहो ॥ २९ ॥

देव्या दग्धं प्रभावेण यद्य सव्यं तवेक्षणम्।
पैङ्गल्यं यदवाप्तं हि देव्या रूपनिरीक्षणात् ॥ ३० ॥
एकाक्षपिङ्गलीत्येव नाम स्थास्यति शाश्वतम्।
एवं तेन सखित्वं च प्राप्यानुज्ञां च शङ्करात् ॥ ३१ ॥
आगतेन मया चैवं श्रुतस्ते पापनिश्चयः।

'देवी पार्वतीके रूपपर दृष्टिपात करनेसे देवीके प्रभावसे जो तुम्हारा बायाँ नेत्र जल गया और दूसरा नेत्र भी पिङ्गलवर्णका हो गया, इससे सदा स्थिर रहनेवाला तुम्हारा 'एकाक्षपिङ्गली' यह नाम चिरस्थायी होगा। इस प्रकार भगवान् शङ्करके साथ मैत्री स्थापित करके उनकी आज्ञा लेकर जब मैं घर लौटा हूँ, तब मैंने तुम्हारे पापपूर्ण निश्चयकी बात सुनी है ॥३०-३१½॥

तदधर्मिष्ठसंयोगान्निवर्त कुलदूषणात् ॥ ३२ ॥
चिन्त्यते हि वधोपायः सर्विसङ्घैः सुरैस्तव।

'अतः अब तुम अपने कुलमें कलंक लगानेवाले पापकर्म-के संसर्गसे दूर हट जाओ; क्योंकि ऋषि-समुदायसहित देवता तुम्हारे वधका उपाय सोच रहे हैं' ॥३२½॥

एवमुक्तो दशग्रीवः कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३३ ॥
हस्तान् दन्तांश्च सम्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह।

दूतके मुँहसे ऐसी बात सुनकर दशग्रीव रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वह हाथ मलता हुआ दाँत पीसकर बोला— ॥३३½॥

विज्ञातं ते मया दूत वाक्यं यत् त्वं प्रभाषसे ॥ ३४ ॥
नैव त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि चोदितः।

'दूत! तू जो कुछ कह रहा है, उसका अभिप्राय मैंने समझ लिया। अब तो न तू जीवित रह सकता है और न वह भाई ही, जिसने तुझे यहाँ भेजा है ॥३४½॥

हितं नैष ममैतद्धि ब्रवीति धनरक्षकः ॥ ३५ ॥
महेश्वरसखित्वं तु मूढः श्रावयते किल।

'धनरक्षक कुबेरने जो संदेश दिया है, वह मेरे लिये हितकर नहीं है। वह मूढ़ मुझे (डरानेके लिये) महादेवजीके साथ अपनी मित्रताकी कथा सुना रहा है? ॥३५½॥

नैवेदं क्षमणीयं मे यदेतद् भाषितं त्वया ॥ ३६ ॥
यदेतावन्मया कालं दूत तस्य तु मर्षितम्।
न हन्तव्यो गुरुर्ज्येष्ठो मयायमिति मन्यते ॥ ३७ ॥

'दूत! तूने जो बात यहाँ कही है, यह मेरे लिये सहन करनेयोग्य नहीं है। कुबेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका वध करना उचित नहीं है—ऐसा समझकर ही मैंने आजतक उन्हें क्षमा किया है ॥ ३६-३७ ॥

तस्य त्विदानीं श्रुत्वा मे वाक्यमेषा कृता मतिः ।
त्रींल्लोकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितः ॥ ३८ ॥

'किंतु इस समय उनकी बात सुनकर मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके तीनों लोकोंको जीतूँगा ॥ ३८ ॥

एतन्मुहूर्तमेवाहं तस्यैकस्य तु वै कृते ।
चतुरो लोकपालांस्तान् नयिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३९ ॥

'इसी मुहूर्तमें मैं एकके ही अपराधसे उन चारों लोकपालोंको यमलोक पहुँचाऊँगा' ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा तु लङ्केशो दूतं खड्गेन जघ्निवान् ।
ददौ भक्षयितुं ह्येनं राक्षसानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥

ऐसा कहकर लङ्केश रावणने तलवारसे उस दूतके दो टुकड़े कर डाले और उसकी लाश उसने दुरात्मा राक्षसोंको खानेके लिये दे दी ॥ ४० ॥

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः ।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् रावण स्वस्तिवाचन करके रथपर चढ़ा और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छासे उस स्थानपर गया, जहाँ धनपति कुबेर रहते थे ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

—★—

चतुर्दशः सर्गः

मन्त्रियोंसहित रावणका यक्षोंपर आक्रमण और उनकी पराजय

ततः स सचिवैः सार्धं षड्भिर्नित्यबलोद्धतः ।
महोदरप्रहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥
धूम्राक्षेण च वीरेण नित्यं समरगर्द्धिना ।
वृतः सम्प्रययौ श्रीमान् क्रोधाल्लोकान् दहन्निव ॥ २ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) तदनन्तर बलके अभिमानसे सदा उन्मत्त रहनेवाला रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण तथा सदा ही युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर धूम्राक्ष—इन छः मन्त्रियोंके साथ लङ्कासे प्रस्थित हुआ। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो अपने क्रोधसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर डालेगा ॥ १-२ ॥

पुराणि स नदीः शैलान् वनान्युपवनानि च ।
अतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलासं गिरिमागमत् ॥ ३ ॥

बहुत-से नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनोंको लाँघकर वह दो ही घड़ीमें कैलास पर्वतपर जा पहुँचा ॥ ३ ॥

संनिविष्टं गिरौ तस्मिन् राक्षसेन्द्रं निशम्य तु ।
युद्धेप्सुं तं कृतोत्साहं दुरात्मानं समन्त्रिणम् ॥ ४ ॥
यक्षा न शेकुः संस्थातुं प्रमुखे तस्य रक्षसः ।
राज्ञो भ्रातेति विज्ञाय गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥

यक्षोंने जब सुना कि दुरात्मा राक्षसराज रावणने युद्धके लिये उत्साहित होकर अपने मन्त्रियोंके साथ कैलास पर्वतपर डेरा डाला है, तब वे उस राक्षसके सामने खड़े न हो सके। यह राजाका भाई है, ऐसा जानकर यक्षलोग उस स्थानपर गये, जहाँ धनके स्वामी कुबेर विद्यमान थे ॥ ४-५ ॥

ते गत्वा सर्वमाचख्युर्भ्रातुस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अनुज्ञाता ययुर्हृष्टा युद्धाय धनदेन ते ॥ ६ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने उनके भाईका सारा अभिप्राय कह सुनाया। तब कुबेरने युद्धके लिये यक्षोंको आज्ञा दे दी; फिर तो यक्ष बड़े हर्षसे भरकर चल दिये ॥ ६ ॥

ततो बलानां संक्षोभो व्यवर्धत इवोदधेः ।
तस्य नैर्ऋतराजस्य शैलं संचालयन्निव ॥ ७ ॥

उस समय यक्षराजकी सेनाएँ समुद्रके समान क्षुब्ध हो उठीं। उनके वेगसे वह पर्वत हिलता-सा जान पड़ा ॥ ७ ॥

ततो युद्धं समभवद् यक्षराक्षससंकुलम् ।
व्यथिताश्चाभवंस्तत्र सचिवा राक्षसस्य ते ॥ ८ ॥

तदनन्तर यक्षों और राक्षसोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। वहाँ रावणके वे सचिव व्यथित हो उठे ॥ ८ ॥

स दृष्ट्वा तादृशं सैन्यं दशग्रीवो निशाचरः ।
हर्षनादान् बहून् कृत्वा स क्रोधादभ्यधावत ॥ ९ ॥

अपनी सेनाकी वैसी दुर्दशा देख निशाचर दशग्रीव बार-बार हर्षवर्धक सिंहनाद करके रोषपूर्वक यक्षोंकी ओर दौड़ा ॥ ९ ॥

ये तु ते राक्षसेन्द्रस्य सचिवा घोरविक्रमाः ।
तेषां सहस्रमेकैको यक्षाणां समयोधयत् ॥ १० ॥

राक्षसराजके जो सचिव थे, वे बड़े भयंकर पराक्रमी थे। उनमेंसे एक-एक सचिव हजार-हजार यक्षोंसे युद्ध करने लगा ॥ १० ॥

ततो गदाभिर्मुसलैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
हन्यमानो दशग्रीवस्तत्सैन्यं समगाहत ॥ ११ ॥
स निरुच्छ्वासवत् तत्र वध्यमानो दशाननः ।
वर्षद्भिरिव जीमूतैर्धाराभिरवरुध्यत ॥ १२ ॥

उस समय यक्ष जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान गदाओं, मुसलों, तलवारों, शक्तियों और तोमरोंकी वर्षा करने लगे। उनकी चोट सहता हुआ दशग्रीव शत्रुसेनामें घुसा। वहाँ उसपर इतनी मार पड़ने लगी कि उसे दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिली। यक्षोंने उसका वेग रोक दिया॥ ११-१२॥

न चकार व्यथां चैव यक्षशस्त्रैः समाहतः।
महीधर इवाम्भोदैर्धाराशतसमुक्षितः॥ १३॥

यक्षोंके शस्त्रोंसे आहत होनेपर भी उसने अपने मनमें दुःख नहीं माना; ठीक उसी तरह, जैसे मेघोंद्वारा बरसायी हुई सैकड़ों जलधाराओंसे अभिषिक्त होनेपर भी पर्वत विचलित नहीं होता है॥ १३॥

स महात्मा समुद्यम्य कालदण्डोपमां गदाम्।
प्रविवेश ततः सैन्यं नयन् यक्षान् यमक्षयम्॥ १४॥

उस महाकाय निशाचरने कालदण्डके समान भयंकर गदा उठाकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश किया और उन्हें यमलोक पहुँचाना आरम्भ कर दिया॥ १४॥

स कक्षमिव विस्तीर्णं शुष्केन्धनमिवाकुलम्।
वातेनाग्निरिवादीप्तो यक्षसैन्यं ददाह तत्॥ १५॥

वायुसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान रावणने तिनकोंके समान फैली और सूखे ईंधनकी भाँति आकुल हुई यक्षोंकी सेनाको जलाना आरम्भ किया॥ १५॥

तैस्तु तत्र महामात्यैर्महोदरशुकादिभिः।
अल्पावशेषास्ते यक्षाः कृता वातैरिवाम्बुदाः॥ १६॥

जैसे हवा बादलोंको उड़ा देती है, उसी तरह उन महोदर और शुक आदि महामन्त्रियोंने वहाँ यक्षोंका संहार कर डाला। अब वे थोड़ी ही संख्यामें बच रहे॥ १६॥

केचित् समाहता भग्नाः पतिताः समरे क्षितौ।
ओष्ठांश्च दशनैस्तीक्ष्णैरदशन् कुपिता रणे॥ १७॥

कितने ही यक्ष शस्त्रोंके आघातसे अङ्ग-भङ्ग हो जानेके कारण समराङ्गणमें धराशायी हो गये। कितने ही रणभूमिमें कुपित हो अपने तीखे दाँतोंसे ओठ दबाये हुए थे॥ १७॥

भ्रान्ताश्चान्योन्यमालिङ्ग्य भ्रष्टशस्त्रा रणाजिरे।
सीदन्ति च तदा यक्षाः कूला इव जलेन ह॥ १८॥

कोई थककर एक-दूसरेसे लिपट गये। उनके अस्त्र-शस्त्र गिर गये और वे समराङ्गणमें उसी तरह शिथिल होकर गिरे जैसे जलके वेगसे नदीके किनारे टूट पड़ते हैं॥ १८॥

हतानां गच्छतां स्वर्गं युध्यतामथ धावताम्।
प्रेक्षतामृषिसङ्घानां न बभूवान्तरं दिवि॥ १९॥

मर-मरकर स्वर्गमें जाने, जूझने और दौड़ते हुए यक्षोंको तथा आकाशमें खड़े होकर युद्ध देखनेवाले ऋषिसमूहोंकी संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि आकाशमें उन सबके लिये जगह नहीं भेंटती थी॥ १९॥

भग्नांस्तु तान् समालक्ष्य यक्षेन्द्रांस्तु महाबलान्।
धनाध्यक्षो महाबाहुः प्रेषयामास यक्षकान्॥ २०॥

महाबाहु धनाध्यक्षने उन यक्षोंको भागते देख दूसरे महाबली यक्षराजोंको युद्धके लिये भेजा॥ २०॥

एतस्मिन्नन्तरे राम विस्तीर्णबलवाहनः।
प्रेषितो न्यपतद् यक्षो नाम्ना संयोधकण्टकः॥ २१॥

श्रीराम! इसी बीचमें कुबेरका भेजा हुआ संयोधकण्टक नामक यक्ष वहाँ आ पहुँचा। उसके साथ बहुत-सी सेना और सवारियाँ थीं॥ २१॥

तेन चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हतः।
पतितो भूतले शैलात् क्षीणपुण्य इव ग्रहः॥ २२॥

उसने आते ही भगवान् विष्णुकी भाँति चक्रसे रणभूमिमें मारीचपर प्रहार किया। उससे घायल होकर वह राक्षस कैलाससे नीचे पृथ्वीपर उसी तरह गिर पड़ा, जैसे पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गवासी ग्रह वहाँसे भूतलपर गिर पड़ा हो॥ २२॥

ससंज्ञस्तु मुहूर्तेन स विश्रम्य निशाचरः।
तं यक्षं योधयामास स च भग्नः प्रदुद्रुवे॥ २३॥

दो घड़ीके बाद होशमें आनेपर निशाचर मारीच विश्राम करके लौटा और उस यक्षके साथ युद्ध करने लगा। तब वह यक्ष भाग खड़ा हुआ॥ २३॥

ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्यरजतोक्षितम्।
मर्यादां प्रतिहाराणां तोरणान्तरमाविशत्॥ २४॥

तदनन्तर रावणने कुबेरपुरीके फाटकमें, जिसके प्रत्येक अङ्गमें सुवर्ण जड़ा हुआ था तथा जो नीलम और चाँदीसे भी विभूषित था, प्रवेश किया। वहाँ द्वारपालोंका पहरा लगता था। वह फाटक ही सीमा था। उससे आगे दूसरे लोग नहीं जा सकते थे॥ २४॥

तं तु राजन् दशग्रीवं प्रविशन्तं निशाचरम्।
सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यवारयत्॥ २५॥

महाराज श्रीराम! जब निशाचर दशग्रीव फाटकके भीतर प्रवेश करने लगा, तब सूर्यभानु नामक द्वारपालने उसे रोका॥ २५॥

स वार्यमाणो यक्षेण प्रविवेश निशाचरः।
यदा तु वारितो राम न व्यतिष्ठत् स राक्षसः॥ २६॥
ततस्तोरणमुत्पाट्य तेन यक्षेण ताडितः।
रुधिरं प्रस्रवन् भाति शैलो धातुस्रवैरिव॥ २७॥

जब यक्षके रोकनेपर भी वह निशाचर न रुका और भीतर प्रविष्ट हो गया, तब द्वारपालने फाटकमें लगे हुए एक खंभेको उखाड़कर उसे दशग्रीवके ऊपर दे मारा। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी, मानो किसी पर्वतसे गेरुमिश्रित जलका झरना गिर रहा हो॥ २६-२७॥

स शैलशिखराभेण तोरणेन समाहतः।
जगाम न क्षतिं वीरो वरदानात् स्वयम्भुवः॥ २८॥

पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस खंभेकी चोट खाकर भी वीर दशग्रीवकी कोई क्षति नहीं हुई। वह ब्रह्माजीके

वरदानके प्रभावसे उस यक्षके द्वारा मारा न जा सका ॥ २८ ॥

तेनैव तोरणेनाथ यक्षस्तेनाभिताडितः ।
नादृश्यत तदा यक्षो भस्मीकृततनुस्तदा ॥ २९ ॥

तब उसने भी वही खंभ उठाकर उसके द्वारा यक्षपर प्रहार किया, इससे यक्षका शरीर चूर-चूर हो गया। फिर उसको शकल नहीं दिखायी दी ॥ २९ ॥

ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षःपराक्रमम् ।
ततो नदीर्गुहाश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ।
त्यक्तप्रहरणाः श्रान्ता विवर्णवदनास्तदा ॥ ३० ॥

उस राक्षसका यह पराक्रम देखकर सभी यक्ष भाग गये कोई नदियोंमें कूद पड़े और कोई भयसे पीड़ित हो गुफाओंमें घुस गये। सबने अपने हथियार त्याग दिये थे। सभी थक गये थे और सबके मुखोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

माणिभद्र तथा कुबेरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक विमानका अपहरण

ततस्ताँल्लक्ष्य वित्रस्तान् यक्षेन्द्रांश्च सहस्रशः ।
धनाध्यक्षो महायक्षं माणिभद्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

'(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) धनाध्यक्षोने देखा, हजारों यक्षप्रवर भयभीत होकर भाग रहे हैं; तब उन्होंने माणिभद्र नामक एक महायक्षसे कहा— ॥ १ ॥

रावणं जहि यक्षेन्द्र दुर्वृत्तं पापचेतसम् ।
शरणं भव वीराणां यक्षाणां युद्धशालिनाम् ॥ २ ॥

'यक्षप्रवर ! रावण पापात्मा एवं दुराचारी है, तुम उसे मार डालो और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर यक्षोंको शरण दो—उनकी रक्षा करो' ॥ २ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्माणिभद्रः सुदुर्जयः ।
वृतो यक्षसहस्रैस्तु चतुर्भिः समयोधयत् ॥ ३ ॥

महाबाहु माणिभद्र अत्यन्त दुर्जय वीर थे। कुबेरकी उक्त आज्ञा पाकर वे चार हजार यक्षोंकी सेना साथ ले फाटकपर गये और राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

ते गदामुसलप्रासैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
अभिघ्नन्तस्तदा यक्षा राक्षसान् समुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

उस समय यक्षयोद्धा गदा, मूसल, प्रास, शक्ति, तोमर तथा मुद्गरोंका प्रहार करते हुए राक्षसोंपर टूट पड़े ॥ ४ ॥

कुर्वन्तस्तुमुलं युद्धं चरन्तः श्येनवल्लघु ।
बाढं प्रयच्छ नेच्छामि दीयतामिति भाषिणः ॥ ५ ॥

वे घोर युद्ध करते हुए बाज पक्षीकी तरह तीव्र गतिसे सब ओर विचरने लगे। कोई कहता 'मुझे युद्धका अवसर दो।' दूसरा बोलता—'मैं यहाँसे पीछे हटना नहीं चाहता।' फिर तीसरा बोल उठता—'मुझे अपना हथियार दो' ॥ ५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयो ब्रह्मवादिनः ।
दृष्ट्वा तत् तुमुलं युद्धं परं विस्मयमागमन् ॥ ६ ॥

उस तुमुल युद्धको देखकर देवता, गन्धर्व तथा ब्रह्मवादी ऋषि भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये थे ॥ ६ ॥

यक्षाणां तु प्रहस्तेन सहस्रं निहतं रणे ।
महोदरेण चानिन्द्यं सहस्रमपरं हतम् ॥ ७ ॥

उस रणभूमिमें प्रहस्तने एक हजार यक्षोंका संहार कर डाला। फिर महोदरने दूसरे एक सहस्र प्रशंसनीय यक्षोंका विनाश किया ॥ ७ ॥

क्रुद्धेन च तदा राजन् मारीचेन युयुत्सुना ।
निमेषान्तरमात्रेण द्वे सहस्रे निपातिते ॥ ८ ॥

राजन् ! उस समय कुपित हुए रणोत्सुक मारीचने पलक मारते-मारते शेष दो हजार यक्षोंको धराशायी कर दिया ॥ ८ ॥

क्व च यक्षार्जवं युद्धं क्व च मायाबलाश्रयम् ।
रक्षसां पुरुषव्याघ्र तेन तेऽभ्यधिका युधि ॥ ९ ॥

पुरुषसिंह ! कहाँ यक्षोंका सरलतापूर्वक युद्ध ? और कहाँ राक्षसोंका मायामय संग्राम ? वे अपने मायाबलके भरोसे ही यक्षोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए ॥ ९ ॥

धूम्राक्षेण समागम्य माणिभद्रो महारणे ।
मुसलेनोरसि क्रोधात् ताडितो न च कम्पितः ॥ १० ॥

उस महासमरमें धूम्राक्षने आकर क्रोधपूर्वक माणिभद्रकी छातीमें मूसलका प्रहार किया; किंतु इससे वे विचलित नहीं हुए ॥ १० ॥

ततो गदां समाविध्य माणिभद्रेण राक्षसः ।
धूम्राक्षस्ताडितो मूर्ध्नि विह्वलः स पपात ह ॥ ११ ॥

फिर माणिभद्रने भी गदा घुमाकर उसे राक्षस धूम्राक्षके मस्तकपर दे मारा। उसकी चोटसे व्याकुल हो धूम्राक्ष धरतीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

धूम्राक्षं ताडितं दृष्ट्वा पतितं शोणितोक्षितम् ।
अभ्यधावत संग्रामे माणिभद्रं दशाननः ॥ १२ ॥

धूम्राक्षको गदाकी चोटसे घायल एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख दशमुख रावणने रणभूमिमें माणिभद्रपर धावा किया ॥ १२ ॥

संक्रुद्धमभिधावन्तं माणिभद्रो दशाननम्।
शक्तिभिस्ताडयामास तिसृभिर्यक्षपुङ्गवः ॥ १३ ॥

'दशाननको क्रोधमें भरकर धावा करते देख यक्षप्रवर माणिभद्रने उसके ऊपर तीन शक्तियोंद्वारा प्रहार किया ॥ १३ ॥

ताडितो माणिभद्रस्य मुकुटे प्राहरद् रणे।
तस्य तेन प्रहारेण मुकुटं पार्श्वमागतम् ॥ १४ ॥

चोट खाकर रावणने रणभूमिमें माणिभद्रके मुकुटपर वार किया। उसके उस प्रहारसे उनका मुकुट खिसककर बगलमें आ गया ॥ १४ ॥

ततःप्रभृति यक्षोऽसौ पार्श्वमौलिरभूत् किल।
तस्मिंस्तु विमुखीभूते माणिभद्रे महात्मनि।
संनादः सुमहान् राजंस्तस्मिन् शैले व्यवर्धत ॥ १५ ॥

तबसे माणिभद्र यक्ष पार्श्वमौलिके नामसे प्रसिद्ध हुए। महामना माणिभद्र यक्ष युद्धसे भाग चले। राजन्! उनके युद्धसे विमुख होते ही उस पर्वतपर राक्षसोंका महान् सिंहनाद सब ओर फैल गया ॥ १५ ॥

ततो दूरात् प्रददृशे धनाध्यक्षो गदाधरः।
शुक्रप्रौष्ठपदाभ्यां च पद्यशङ्खसमावृतः ॥ १६ ॥

इसी समय धनके स्वामी गदाधारी कुबेर दूरसे आते दिखायी दिये। उनके साथ शुक्र और प्रौष्ठपद नामक मन्त्री तथा शङ्ख और पद्मनामक धनके अधिष्ठाता देवता भी थे ॥ १६ ॥

स दृष्ट्वा भ्रातरं संख्ये शापाद् विभ्रष्टगौरवम्।
उवाच वचनं धीमान् युक्तं पैतामहे कुले ॥ १७ ॥

विश्रवा मुनिके शापसे क्रूर प्रकृति हो जानेके कारण जो गुरुजनोंके प्रति प्रणाम आदि व्यवहार भी नहीं कर पाता था—गुरुजनोचित शिष्टाचारसे भी वञ्चित था, उस अपने भाई रावणको युद्धमें उपस्थित देख बुद्धिमान् कुबेरने ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषके योग्य बात कही— ॥ १७ ॥

यच्चया वार्यमाणस्त्वं नावगच्छसि दुर्मतेः।
पश्चादस्य फलं प्राप्य ज्ञास्यसे निरयं गतः ॥ १८ ॥

'दुर्बुद्धि दशग्रीव! मेरे मना करनेपर भी इस समय तुम समझ नहीं रहे हो, किंतु आगे चलकर जब इस कुकर्मका फल पाओगे और नरकमें पड़ोगे, उस समय मेरी बात तुम्हारी समझमें आयेगी ॥ १८ ॥

यो हि मोहाद् विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः।
न तस्य परिणामान्ते जानीते कर्मणः फलम् ॥ १९ ॥

'जो खोटी बुद्धिवाला पुरुष मोहवश विषको पीकर भी उसे विष नहीं समझता है, उसे उसका परिणाम प्राप्त हो जानेपर अपने किये हुए उस कर्मके फलका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

दैवतानि न नन्दन्ति धर्मयुक्तेन केनचित्।
येन त्वमीदृशं भावं नीतस्तच्च न बुद्ध्यसे ॥ २० ॥

'तुम्हारे किसी व्यापारसे, वह तुम्हारी मान्यताके अनुसार धर्मयुक्त ही क्यों न हो, देवता प्रसन्न नहीं होते हैं; इसीलिये तुम ऐसे क्रूरभावको प्राप्त हो गये हो, परंतु यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आती है ॥ २० ॥

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः ॥ २१ ॥

'जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्यका अपमान करता है, वह यमराजके वशमें पड़कर उस पापका फल भोगता है ॥ २१ ॥

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम्।
स पश्चात् तप्यते मूढो मृतो गत्वाऽऽत्मनो गतिम् ॥ २२ ॥

'यह शरीर क्षणभङ्गुर है। इसे पाकर जो तपका उपार्जन नहीं करता, वह मूर्ख मरनेके बाद जब उसे अपने दुष्कर्मोंका फल मिलता है, पश्चात्ताप करता है ॥ २२ ॥

धर्माद् राज्यं धनं सौख्यमधर्माद् दुःखमेव च।
तस्माद् धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विसर्जयेत् ॥ २३ ॥

'धर्मसे राज, धन और सुखकी प्राप्ति होती है। अधर्मसे केवल दुःख ही भोगना पड़ता है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे, पापको सर्वथा त्याग दे ॥ २३ ॥

पापस्य हि फलं दुःखं तद् भोक्तव्यमिहात्मना।
तस्मादात्मापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ॥ २४ ॥

'पापका फल केवल दुःख है और उसे स्वयं ही यहाँ भोगना पड़ता है; इसलिये जो मूढ़ पाप करेगा, वह मानो स्वयं ही अपना वध कर लेगा ॥ २४ ॥

कस्यचिन्न हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥ २५ ॥

'किसी भी दुर्बुद्धि पुरुषको (शुभकर्मका अनुष्ठान और गुरुजनोंकी सेवा किये बिना) स्वेच्छामात्रसे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। वह जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है ॥ २५ ॥

ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान् वित्तं शूरत्वमेव च।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥ २६ ॥

'संसारके पुरुषोंको समृद्धि, सुन्दर रूप, बल, वैभव, वीरता तथा पुत्र आदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे ही होती है ॥ २६ ॥

एवं निरयगामी त्वं यस्य ते मतिरीदृशी।
न त्वां समभिभाषिष्येऽसद्वृत्तेष्वेव निर्णयः ॥ २७ ॥

'इसी प्रकार अपने दुष्कर्मोंके कारण तुम्हें भी नरकमें

जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ऐसी पापासक्त हो रही है। दुराचारियोंसे बात नहीं करना चाहिये, यही शास्त्रोंका निर्णय है; अतः मैं भी अब तुमसे कोई बात नहीं करूँगा' ॥ २७ ॥

एवमुक्तास्ततस्तेन तस्यामात्याः समाहताः।
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

इसी तरहकी बात उन्होंने रावणके मन्त्रियोंसे भी कही। फिर उनपर शस्त्रोंद्वारा प्रहार किया। इससे आहत होकर वे मारीच आदि सब राक्षस युद्धसे मुँह मोड़कर भाग गये ॥ २८ ॥

ततस्तेन दशग्रीवो यक्षेन्द्रेण महात्मना।
गदयाभिहतो मूर्ध्नि न च स्थानात् प्रकम्पितः ॥ २९ ॥

तदनन्तर महामना यक्षराज कुबेरने अपनी गदासे रावणके मस्तकपर प्रहार किया। उससे आहत होकर भी वह अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ ॥ २९ ॥

ततस्तौ राम निघ्नन्तौ तदान्योन्यं महामृधे।
न विह्वलौ न च श्रान्तौ तावुभौ यक्षराक्षसौ ॥ ३० ॥

श्रीराम! तत्पश्चात् वे दोनों यक्ष और राक्षस—कुबेर तथा रावण दोनों उस महासमरमें एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे; परंतु दोनोंमेंसे कोई भी न तो अघराता था, न थकता ही था ॥ ३० ॥

आग्नेयमस्त्रं तस्मै स मुमोच धनदस्तदा।
राक्षसेन्द्रो वारुणेन तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ३१ ॥

उस समय कुबेरने रावणपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, परंतु राक्षसराज रावणने वारुणास्त्रके द्वारा उनके उस अस्त्रको शान्त कर दिया ॥ ३१ ॥

ततो मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसीं राक्षसेश्वरः।
रूपाणां शतसाहस्रं विनाशाय चकार च ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् उस राक्षसराजने राक्षसी मायाका आश्रय लिया और कुबेरका विनाश करनेके लिये लाखों रूप धारण कर लिया ॥ ३२ ॥

व्याघ्रो वराहो जीमूतः पर्वतः सागरो द्रुमः।
यक्षो दैत्यस्वरूपी च सोऽदृश्यत दशाननः ॥ ३३ ॥

उस समय दशमुख रावण बाघ, सूअर, मेघ, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, यक्ष और दैत्य सभी रूपोंमें दिखायी देने लगा ॥ ३३ ॥

बहूनि च करोति स्म दृश्यन्ते न त्वसौ ततः।
प्रतिगृह्य ततो राम महदस्त्रं दशाननः ॥ ३४ ॥
जघान मूर्ध्नि धनदं व्याविध्य महतीं गदाम्।

इस प्रकार वह बहुत-से रूप प्रकट करता था। वे रूप ही दिखायी देते थे, वह स्वयं दृष्टिगोचर नहीं होता था। श्रीराम! तदनन्तर दशमुखने एक बहुत बड़ी गदा हाथमें ली और उसे घुमाकर कुबेरके मस्तकपर दे मारा ॥३४½॥

एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोक्षितः ॥ ३५ ॥
कृत्तमूल इवाशोको निपपात धनाधिपः।

इस प्रकार रावणद्वारा आहत हो धनके स्वामी कुबेर रक्तसे नहा उठे और व्याकुल हो जड़से कटे हुए अशोककी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥३५½॥

ततः पद्मादिभिस्तत्र निधिभिः स तदा वृतः ॥ ३६ ॥
धनदोच्छ्वासितस्तैस्तु वनमानीय नन्दनम्।

तत्पश्चात् पद्म आदि निधियोंके अधिष्ठाता देवताओंने उन्हें घेरकर उठा लिया और नन्दनवनमें ले जाकर चेत कराया ॥३६½॥

निर्जित्य राक्षसेन्द्रस्तं धनदं हृष्टमानसः ॥ ३७ ॥
पुष्पकं तस्य जग्राह विमानं जयलक्षणम्।

इस तरह कुबेरको जीतकर राक्षसराज रावण अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी विजयके चिह्नके रूपमें उसने उनका पुष्पकविमान अपने अधिकारमें कर लिया ॥३७½॥

काञ्चनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ॥ ३८ ॥
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकालफलद्रुमम्।

उस विमानमें सोनेके खम्भे और वैदूर्यमणिके फाटक लगे थे। वह सब ओरसे मोतियोंकी जालीसे ढका हुआ था। उसके भीतर ऐसे-ऐसे वृक्ष लगे थे, जो सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले थे ॥३८½॥

मनोजवं कामगमं कामरूपं विहंगमम् ॥ ३९ ॥
मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्।

उसका वेग मनके समान तीव्र था। वह अपने ऊपर बैठे हुए लोगोंकी इच्छाके अनुसार सब जगह जा सकता था तथा चालक जैसा चाहे, वैसा छोटा या बड़ा रूप धारण कर लेता था। उस आकाशचारी विमानमें मणि और सुवर्णकी सीढ़ियाँ तथा तपाये हुए सोनेकी वेदियाँ बनी थीं ॥३९½॥

देवोपवाह्यमक्षय्यं सदा दृष्टिमनःसुखम् ॥ ४० ॥
बह्वाश्चर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम्।

वह देवताओंका ही वाहन था और टूटने-फूटनेवाला नहीं था। सदा देखनेमें सुन्दर और चित्तको प्रसन्न करनेवाला था। उसके भीतर अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक चित्र थे। उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे, जिनसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। ब्रह्मा (विश्वकर्मा) ने उसका निर्माण किया था ॥४०½॥

निर्मितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
न तु शीतं न चोष्णं च सर्वर्तुसुखदं शुभम्।
स तं राजा समारुह्य कामगं वीर्यनिर्जितम् ॥ ४२ ॥
जितं त्रिभुवनं मेने दर्पोत्सेकात् सुदुर्मतिः।
जित्वा वैश्रवणं देवं कैलासात् समवातरत् ॥ ४३ ॥

वह सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न, मनोहर और परम उत्तम था। न अधिक ठंडा था और न अधिक

गरम। सभी ऋतुओंमें आराम पहुँचानेवाला तथा मङ्गलकारी था। अपने पराक्रमसे जीते हुए उस इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर आरूढ़ हो अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला राजा रावण अहंकारकी अधिकतासे ऐसा मानने लगा कि मैंने तीनों लोकोंको जीत लिया। इस प्रकार वैश्रवणदेवको पराजित करके वह कैलाससे नीचे उतरा ॥ ४१—४३ ॥

स तेजसा विपुलमवाप्य तं जयं
प्रतापवान् विमलकिरीटहारवान्।
रराज वै परमविमानमास्थितो
निशाचरः सदसि गतो यथानलः ॥ ४४ ॥

निर्मल किरीट और हारसे विभूषित वह प्रतापी निशाचर अपने तेजसे उस महान् विजयको पाकर उस उत्तम विमानपर आरूढ़ हो यज्ञमण्डपमें प्रज्वलित होनेवाले अग्निदेवकी भाँति शोभा पाने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

नन्दीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मान-भङ्ग तथा उनसे चन्द्रहास नामक खड्गकी प्राप्ति

स जित्वा धनदं राम भ्रातरं राक्षसाधिपः।
महासेनप्रसूतिं तद् ययौ शरवणं महत् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) रघुकुलनन्दन राम! अपने भाई कुबेरको जीतकर राक्षसराज दशग्रीव 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध सरकंडोंके विशाल वनमें गया, जहाँ महासेन कार्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई थी ॥ १ ॥

अथापश्यद् दशग्रीवो रौक्मं शरवणं महत्।
गभस्तिजालसंवीतं द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥

वहाँ पहुँचकर दशग्रीवने सुवर्णमयी कान्तिसे युक्त उस विशाल शरवण (सरकंडोंके जंगल) को देखा, जो किरणसमूहोंसे व्याप्त होनेके कारण दूसरे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ २ ॥

स पर्वतं समारुह्य कंचिद् रम्यवनान्तरम्।
प्रेक्षते पुष्पकं तत्र राम विष्टम्भितं तदा ॥ ३ ॥

उसके पास ही कोई पर्वत था, जहाँकी वनस्थली बड़ी रमणीय थी। श्रीराम! जब वह उसपर चढ़ने लगा, तब देखता है कि पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ ३ ॥

विष्टब्धं किमिदं कस्मान्नागमत् कामगं कृतम्।
अचिन्तयद् राक्षसेन्द्रः सचिवैस्तैः समावृतः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तमिच्छया मे नेदं गच्छति पुष्पकम्।
पर्वतस्योपरिष्टस्य कर्मेदं कस्यचिद् भवेत् ॥ ५ ॥

तब वह राक्षसराज अपने उन मन्त्रियोंके साथ मिलकर विचार करने लगा—'क्या कारण है कि यह पुष्पक विमान रुक गया? यह तो स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला बनाया गया है। फिर आगे क्यों नहीं बढ़ता? कौन-सा ऐसा कारण बन गया, जिससे यह पुष्पक विमान मेरी इच्छाके अनुसार नहीं चल रहा है? सम्भव है, इस पर्वतके ऊपर कोई रहता हो, उसीका यह कर्म हो सकता है?' ॥ ४-५ ॥

ततोऽब्रवीत् तदा राम मारीचो बुद्धिकोविदः।
नेदं निष्कारणं राजन् पुष्पकं यन्न गच्छति ॥ ६ ॥

श्रीराम! तब बुद्धिकुशल मारीचने कहा—'राजन्! यह पुष्पक विमान जो आगे नहीं बढ़ रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ कारण अवश्य है। अकारण ही ऐसी घटना घटित हो गयी हो, यह बात नहीं है ॥ ६ ॥

अथवा पुष्पकमिदं धनदान्नान्यवाहनम्।
अतो निस्पन्दमभवद् धनाध्यक्षविनाकृतम् ॥ ७ ॥

'अथवा यह पुष्पक विमान कुबेरके सिवा दूसरेका वाहन नहीं हो सकता, इसीलिये उनके बिना यह निश्चेष्ट हो गया है' ॥ ७ ॥

इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः।
वामनो विकटो मुण्डी नन्दी ह्रस्वभुजो बली ॥ ८ ॥
ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽब्रवीत्।
नन्दीश्वरो वचश्चेदं राक्षसेन्द्रमशङ्कितः ॥ ९ ॥

इसकी इस बातके बीचमें ही भगवान् शङ्करके पार्षद नन्दीश्वर रावणके पास आ पहुँचे, जो देखनेमें बड़े विकराल थे। उनकी अङ्गकान्ति काले एवं पिङ्गल वर्णकी थी। वे नाटे कदके विकट रूपवाले थे। उनका मस्तक मुण्डित और भुजाएँ छोटी-छोटी थीं। वे बड़े बलवान् थे। नन्दीने निःशङ्क होकर राक्षसराज दशग्रीवसे इस प्रकार कहा— ॥ ८-९ ॥

निवर्तस्व दशग्रीव शैले क्रीडति शंकरः।
सुपर्णनागयक्षाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १० ॥
सर्वेषामेव भूतानामगम्यः पर्वतः कृतः।

'दशग्रीव ! लौट जाओ। इस पर्वतपर भगवान् शङ्कर क्रीडा करते हैं। यहाँ सुपर्ण, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस सभी प्राणियोंका आना-जाना बंद कर दिया गया है' ॥ १० ½ ॥

इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात् कम्पितकुण्डलः ॥ ११ ॥
रोषात् तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः ॥ १२ ॥

नन्दीकी यह बात सुनकर दशग्रीव कुपित हो उठा। उसके कानोंके कुण्डल हिलने लगे। आँखें रोषसे लाल हो गयीं और वह पुष्पकसे उतरकर बोला—'कौन है यह शङ्कर ?' ऐसा कहकर वह पर्वतके मूलभागमें आ गया ॥ ११-१२ ॥

सोऽपश्यन्नन्दिनं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम्।
दीप्तं शूलमवष्टभ्य द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ १३ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने देखा, भगवान् शङ्करसे थोड़ी ही दूरपर चमचमाता हुआ शूल हाथमें लिये नन्दी दूसरे शिवकी भाँति खड़े हैं ॥ १३ ॥

तं दृष्ट्वा वानरमुखमवज्ञाय स राक्षसः।
प्रहासं मुमुचे तत्र सतोय इव तोयदः ॥ १४ ॥

उनका मुँह वानरके समान था। उन्हें देखकर वह निशाचर उनका तिरस्कार करता हुआ सजल जलधरके समान गम्भीर स्वरमें ठहाका मारकर हँसने लगा ॥ १४ ॥

तं क्रुद्धो भगवान् नन्दी शङ्करस्यापरा तनुः।
अब्रवीत् तत्र तद् रक्षो दशाननमुपस्थितम् ॥ १५ ॥

यह देख शिवके दूसरे स्वरूप भगवान् नन्दी कुपित हो वहाँ पास ही खड़े हुए निशाचर दशमुखसे इस प्रकार बोले— ॥ १५ ॥

यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन।
अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान् ॥ १६ ॥
तस्मान्मद्वीर्यसंयुक्ता मद्रूपसमतेजसः।
उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः ॥ १७ ॥

'दशानन ! तुमने वानररूपमें मुझे देखकर मेरी अवहेलना की है और वज्रपातके समान भयानक अट्टहास किया है; अतः तुम्हारे कुलका विनाश करनेके लिये मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेजसे सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे ॥ १६-१७ ॥

नखदंष्ट्रायुधाः क्रूर मनःसम्पातरंहसः।
युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः ॥ १८ ॥

'क्रूर निशाचर ! नख और दाँत ही उन वानरोंके अस्त्र होंगे तथा मनके समान उनका तीव्र वेग होगा। वे युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले और अतिशय बलशाली होंगे तथा चलते-फिरते पर्वतोंके समान जान पड़ेंगे ॥ १८ ॥

ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम्।
व्यपनेष्यन्ति सम्भूय सहामात्यसुतस्य च ॥ १९ ॥

'वे एकत्र होकर मन्त्री और पुत्रोंसहित तुम्हारे प्रबल अभिमानको और विशालकाय होनेके गर्वको चूर-चूर कर देंगे ॥ १९ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं हन्तुं त्वां हे निशाचर।
न हन्तव्यो हतस्त्वं हि पूर्वमेव स्वकर्मभिः ॥ २० ॥

'ओ निशाचर ! मैं तुम्हें अभी मार डालनेकी शक्ति रखता हूँ, तथापि तुम्हें मारना नहीं है; क्योंकि अपने कुत्सित कर्मोंद्वारा तुम पहलेसे ही मारे जा चुके हो (अतः मरे हुएको मारनेसे क्या लाभ ?)' ॥ २० ॥

इत्युदीरितवाक्ये तु देवे तस्मिन् महात्मनि।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ २१ ॥

महात्मा भगवान् नन्दीके इतना कहते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २१ ॥

अचिन्तयित्वा स तदा नन्दिवाक्यं महाबलः।
पर्वतं तु समासाद्य वाक्यमाह दशाननः ॥ २२ ॥

परंतु महाबली दशाननने उस समय नन्दीके उन वचनोंकी कोई परवा नहीं की और उस पर्वतके निकट जाकर कहा— ॥ २२ ॥

पुष्पकस्य गतिश्छिन्ना यत्कृते मम गच्छतः।
तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते ॥ २३ ॥

'पशुपते ! जिसके कारण यात्रा करते समय मेरे पुष्पक विमानकी गति रुक गयी, तुम्हारे उस पर्वतको, जो यह मेरे सामने खड़ा है, मैं जड़से उखाड़ फेंकता हूँ ॥ २३ ॥

केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत्।
विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ २४ ॥

'किस प्रभावसे शङ्कर प्रतिदिन यहाँ राजाकी भाँति क्रीडा करते हैं ? इन्हें इस जाननेयोग्य बातका भी पता नहीं है कि इनके समक्ष भयका स्थान उपस्थित है' ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा ततो राम भुजान् विक्षिप्य पर्वते।
तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत ॥ २५ ॥

श्रीराम ! ऐसा कहकर दशग्रीवने पर्वतके निचले भागमें अपनी भुजाएँ लगायीं और उसे शीघ्र उठा लेनेका प्रयत्न किया। वह पर्वत हिलने लगा ॥ २५ ॥

चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥ २६ ॥

पर्वतके हिलनेसे भगवान् शङ्करके सारे गण काँप उठे। पार्वती देवी भी विचलित हो उठीं और भगवान् शङ्करसे लिपट गयीं ॥ २६ ॥

ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः।
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया ॥ २७ ॥

श्रीराम ! तब देवताओंमें श्रेष्ठ पापहारी महादेवने उस पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे खिलवाड़में ही दबा दिया ॥ २७ ॥

पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्तम्भोपमा भुजाः ।
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः ॥ २८ ॥

फिर तो दशग्रीवकी वे भुजाएँ, जो पर्वतके खंभोंके समान जान पड़ती थीं, उस पहाड़के नीचे दब गयीं। यह देख वहाँ खड़े हुए उस राक्षसके मन्त्री बड़े आश्चर्यमें पड़ गये ॥ २८ ॥

रक्षसा तेन रोषाच्च भुजानां पीडनात् तथा ।
मुक्तो विरावः सहसा त्रैलोक्यं येन कम्पितम् ॥ २९ ॥

उस राक्षसने रोष तथा अपनी बाँहोंकी पीड़ाके कारण सहसा बड़े जोरसे विराव—रोदन अथवा आर्तनाद किया, जिससे तीनों लोकोंके प्राणी काँप उठे ॥ २९ ॥

मेनिरे वज्रनिष्पेषं तस्यामात्या युगक्षये ।
तदा वर्त्मसु चलिता देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥

उसके मन्त्रियोंने समझा, अब प्रलयकाल आ गया और विनाशकारी वज्रपात होने लगा है। उस समय इन्द्र आदि देवता मार्गमें विचलित हो उठे ॥ ३० ॥

समुद्राश्चापि संक्षुब्धाश्चलिताश्चापि पर्वताः ।
यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ ३१ ॥

समुद्रोंमें ज्वार आ गया। पर्वत हिलने लगे और यक्ष, विद्याधर तथा सिद्ध एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या हो गया ?' ॥ ३१ ॥

तोषयस्व महादेवं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
तमृते शरणं नान्यं पश्यामोऽत्र दशानन ॥ ३२ ॥

तदनन्तर दशग्रीवके मन्त्रियोंने उससे कहा—महाराज दशानन ! अब आप नीलकण्ठ उमावल्लभ महादेवजीको संतुष्ट कीजिये। उनके सिवा दूसरे किसीको हम ऐसा नहीं देखते, जो यहाँ आपको शरण दे सके ॥ ३२ ॥

स्तुतिभिः प्रणतो भूत्वा तमेव शरणं व्रज ।
कृपालुः शङ्करस्तुष्टः प्रसादं ते विधास्यति ॥ ३३ ॥

'आप स्तुतियोंद्वारा उन्हें प्रणाम करके उन्हींकी शरणमें जाइये। भगवान् शङ्कर बड़े दयालु हैं। वे संतुष्ट होकर आपपर कृपा करेंगे' ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्ततदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
सामभिर्विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य स दशाननः ।
संवत्सरसहस्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ॥ ३४ ॥

मन्त्रियोंके ऐसा कहनेपर दशमुख रावणने भगवान् वृषभध्वजको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रों तथा सामवेदोक्त मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन किया। इस प्रकार हाथोंकी पीड़ासे रोते और स्तुति करते हुए उस राक्षसके एक हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥

ततः प्रीतो महादेवः शैलाग्रे विष्ठितः प्रभुः ।
मुक्त्वा चास्य भुजान् राम प्राह वाक्यं दशाननम् ॥ ३५ ॥

श्रीराम ! तत्पश्चात् उस पर्वतके शिखरपर स्थित हुए भगवान् महादेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने दशग्रीवकी भुजाओंको उस संकटसे मुक्त करके उससे कहा— ॥ ३५ ॥

प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य शौटीर्याच्च दशानन ।
शैलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारुणः ॥ ३६ ॥
यस्माल्लोकत्रयं चैतद् रावितं भयमागतम् ।
तस्मात् त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि ॥ ३७ ॥

'दशानन ! तुम वीर हो। तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ। तुमने पर्वतसे दब जानेके कारण जो अत्यन्त भयानक राव (आर्तनाद) किया था, उससे भयभीत होकर तीनों लोकोंके प्राणी रो उठे थे, इसलिये राक्षसराज ! अब तुम रावणके नामसे प्रसिद्ध होओगे ॥ ३६-३७ ॥

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले ।
एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम् ॥ ३८ ॥

'देवता, मनुष्य, यक्ष तथा दूसरे जो लोग भूतलपर निवास करते हैं, वे सब इस प्रकार समस्त लोकोंको रुलानेवाले तुझ दशग्रीवको रावण कहेंगे ॥ ३८ ॥

गच्छ पौलस्त्य विस्रब्धं पथा येन त्वमिच्छसि ।
मया चैवाभ्यनुज्ञातो राक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥

'पुलस्त्यनन्दन ! अब तुम जिस मार्गसे जाना चाहो, बेखटके जा सकते हो। राक्षसपते ! मैं भी तुम्हें अपनी ओरसे जानेकी आज्ञा देता हूँ, जाओ' ॥ ३९ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशः शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।
प्रीतो यदि महादेव वरं मे देहि याचतः ॥ ४० ॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर लङ्केश्वर बोला—'महादेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो वर दीजिये। मैं आपसे वरकी याचना करता हूँ ॥ ४० ॥

अवध्यत्वं मया प्राप्तं देवगन्धर्वदानवैः ।
राक्षसैर्गुह्यकैर्नागैर्ये चान्ये बलवत्तराः ॥ ४१ ॥

'मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुह्यक, नाग तथा अन्य महाबलशाली प्राणियोंसे अवध्य होनेका वर प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥

मानुषान् न गणे देव स्वल्पास्ते मम सम्मताः ।
दीर्घमायुश्च मे प्राप्तं ब्रह्मणस्त्रिपुरान्तक ॥ ४२ ॥
वाञ्छितं चायुषः शेषं शस्त्रं त्वं च प्रयच्छ मे ।

'देव ! मनुष्योंको तो मैं कुछ गिनता ही नहीं। मेरी मान्यताके अनुसार उनकी शक्ति बहुत थोड़ी है। त्रिपुरान्तक ! मुझे ब्रह्माजीके द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है। ब्रह्माजीकी दी हुई आयुका जितना अंश बच गया है, वह भी पूरा-का-पूरा प्राप्त हो जाय (उसमें किसी कारणसे कमी न हो)। ऐसी मेरी इच्छा है। इसे आप पूर्ण कीजिये। साथ ही अपनी ओरसे मुझे एक शस्त्र भी दीजिये' ॥ ४२½ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः ॥ ४३ ॥
ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम् ।
आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा ॥ ४४ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने उसे एक अत्यन्त दीप्तिमान् चन्द्रहास नामक खड्ग दिया और उसकी आयुका जो अंश बीत गया था, उसको भी पूर्ण कर दिया ॥ ४३-४४ ॥

दत्त्वोवाच ततः शम्भुर्नावज्ञेयमिदं त्वया ।
अवज्ञातं यदि हि ते मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ४५ ॥

उस खड्गको देकर भगवान् शिवने कहा—'तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। यदि तुम्हारे द्वारा कभी इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आयेगा; इसमें संशय नहीं है' ॥ ४५ ॥

एवं महेश्वरेणैव कृतनामा स रावणः ।
अभिवाद्य महादेवमारुरोहाथ पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे नूतन नाम पाकर रावणने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुआ ॥ ४६ ॥

ततो महीतलं राम पर्यक्रामत रावणः ।
क्षत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधमानस्ततस्ततः ॥ ४७ ॥

श्रीराम ! इसके बाद रावण समूची पृथ्वीपर दिग्विजयके लिये भ्रमण करने लगा। उसने इधर-उधर जाकर बहुत-से महापराक्रमी क्षत्रियोंको पीड़ा पहुँचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तेजस्विनः शूराः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ।
तच्छासनमकुर्वन्तो विनेशुः सपरिच्छदाः ॥ ४८ ॥

कितने ही तेजस्वी क्षत्रिय जो बड़े ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे, रावणकी आज्ञा न माननेके कारण सेना और परिवारसहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपरे दुर्जयं रक्षो जानन्तः प्राज्ञसम्मताः ।
जिताः स्म इत्यभाषन्त राक्षसं बलदर्पितम् ॥ ४९ ॥

दूसरे क्षत्रियोंने, जो बुद्धिमान् माने जाते थे और उस राक्षसको अजेय समझते थे, उस बलाभिमानी निशाचरके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि कन्या वेदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूसरे जन्ममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महाबाहुर्विचरन् पृथिवीतले ।
हिमवद्वनमासाद्य परिचक्राम रावणः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—) राजन् ! तत्पश्चात् महाबाहु रावण भूतलपर विचरता हुआ हिमालयके वनमें आकर वहाँ सब ओर चक्कर लगाने लगा ॥ १ ॥

तत्रापश्यत् स वै कन्यां कृष्णाजिनजटाधराम् ।
आर्षेण विधिना चैनां दीप्यन्तीं देवतामिव ॥ २ ॥

वहाँ उसने एक तपस्विनी कन्याको देखा, जो अपने अङ्गोंमें काले रंगका मृगचर्म तथा सिरपर जटा धारण किये हुए थी। वह ऋषिप्रोक्त विधिसे तपस्यामें संलग्न हो देवाङ्गनाके समान उद्दीप्त हो रही थी ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां कन्यां तां सुमहाव्रताम् ।
काममोहपरीतात्मा पप्रच्छ प्रहसन्निव ॥ ३ ॥

उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित उस कन्याको देखकर रावणका चित्त कामजनित मोहके वशीभूत हो गया। उसने अट्टहास करते हुए-से पूछा— ॥ ३ ॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्धं यौवनस्य ते ।
नहि युक्ता तवैतस्य रूपस्यैवं प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

'भद्रे ! तुम अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा बर्ताव कर रही हो ? तुम्हारे इस दिव्य रूपके लिये ऐसा आचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूपं तेऽनुपमं भीरु कामोन्मादकरं नृणाम् ।
न युक्तं तपसि स्थातुं निर्गतो ह्येष निर्णयः ॥ ५ ॥

'भीरु ! तुम्हारे इस रूपकी कहीं तुलना नहीं है। यह पुरुषोंके हृदयमें कामजनित उन्माद पैदा करनेवाला है। अतः तुम्हारा तपमें संलग्न होना उचित नहीं है। तुम्हारे लिये हमारे हृदयसे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कस्यासि किमिदं भद्रे कश्च भर्ता वरानने ।
येन सम्भुज्यसे भीरु स नरः पुण्यभाग् भुवि ॥ ६ ॥
पृच्छतः शंस मे सर्वं कस्य हेतोः परिश्रमः ।

'भद्रे ! तुम किसकी पुत्री हो ? यह कौन-सा व्रत कर रही हो ? सुमुखि ! तुम्हारा पति कौन है ? भीरु ! जिसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध है, वह मनुष्य इस भूलोकमें महान् पुण्यात्मा है। मैं जो कुछ पूछता हूँ, वह सब मुझे बताओ। किस फलके लिये यह परिश्रम किया जा रहा है ?' ॥ ६½ ॥

एवमुक्ता तु सा कन्या रावणेन यशस्विनी ॥ ७ ॥
अब्रवीद् विधिवत् कृत्वा तस्यातिथ्यं तपोधना ।

रावणके इस प्रकार पूछनेपर वह यशस्विनी तपोधना कन्या उसका विधिवत् आतिथ्य-सत्कार करके बोली— ॥ ७ ½ ॥

कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ॥ ८ ॥
बृहस्पतिसुतः श्रीमान् बुद्ध्या तुल्यो बृहस्पतेः ।

'अमिततेजस्वी ब्रह्मर्षि श्रीमान् कुशध्वज मेरे पिता थे, जो बृहस्पतिके पुत्र थे और बुद्धिमें भी उन्हींके समान माने जाते थे ॥ ८ ½ ॥

तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः ॥ ९ ॥
सम्भूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ।

'प्रतिदिन वेदाभ्यास करनेवाले उन महात्मा पितासे वाङ्मयी कन्याके रूपमें मेरा प्रादुर्भाव हुआ था। मेरा नाम वेदवती है ॥ ९ ½ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १० ॥
ते चापि गत्वा पितरं वरणं रोचयन्ति मे ।

'जब मैं बड़ी हुई, तब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग भी पिताजीके पास जा-जाकर उनसे मुझे माँगने लगे ॥ १० ½ ॥

न च मां स पिता तेभ्यो दत्तवान् राक्षसेश्वर ॥ ११ ॥
कारणं तद् वदिष्यामि निशामय महाभुज ।

'महाबाहु राक्षसेश्वर ! पिताजीने उनके हाथमें मुझे नहीं सौंपा। इसका क्या कारण था, मैं बता रही हूँ, सुनिये ॥ ११ ½ ॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ॥ १२ ॥
अभिप्रेतस्त्रिलोकेशस्तस्मान्नान्यस्य मे पिता ।
दातुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा बलदर्पितः ॥ १३ ॥
शम्भुर्नाम ततो राजा दैत्यानौ कुपितोऽभवत् ।
तेन रात्रौ शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥

'पिताजीकी इच्छा थी कि तीनों लोकोंके स्वामी देवेश्वर भगवान् विष्णु मेरे दामाद हों। इसीलिये वे दूसरे किसीके हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे। उनके इस अभिप्रायको सुनकर बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा और उस पापीने रातमें सोते समय मेरे पिताजीकी हत्या कर डाली ॥ १२—१४ ॥

ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

'इससे मेरी महाभागा माताको बड़ा दुःख हुआ और वे पिताजीके शवको हृदयसे लगाकर चिताकी आगमें प्रविष्ट हो गयीं ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्यं पितुर्नारायणं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन समुद्वहे ॥ १६ ॥

'तबसे मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि भगवान् नारायणके प्रति पिताजीका जो मनोरथ था, उसे मैं सफल करूँगी। इसलिये मैं उन्हींको अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ ॥ १६ ॥

इति प्रतिज्ञामारुह्य चरामि विपुलं तपः ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं मया राक्षसपुङ्गव ॥ १७ ॥

'यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ। राक्षसराज ! आपके प्रश्नके अनुसार यह सब बात मैंने आपको बता दी ॥ १७ ॥

नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ॥ १८ ॥

'नारायण ही मेरे पति हैं। उन पुरुषोत्तमके सिवा दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता। उन नारायणदेवको प्राप्त करनेके लिये ही मैंने इस कठोर व्रतका आश्रय लिया है ॥ १८ ॥

विज्ञातस्त्वं हि मे राजन् गच्छ पौलस्त्यनन्दन ।
जानामि तपसा सर्वं त्रैलोक्ये यद्धि वर्तते ॥ १९ ॥

'राजन् ! पौलस्त्यनन्दन ! मैंने आपको पहचान लिया है। आप जाइये। त्रिलोकीमें जो कोई भी वस्तु विद्यमान है, वह सब मैं तपस्याद्वारा जानती हूँ' ॥ १९ ॥

सोऽब्रवीद् रावणो भूयस्तां कन्यां सुमहाव्रताम् ।
अवरुह्य विमानाग्रात् कन्दर्पशरपीडितः ॥ २० ॥

यह सुनकर रावण कामबाणसे पीड़ित हो विमानसे उतर गया और उस उत्तम एवं महान् व्रतका पालन करनेवाली कन्यासे फिर बोला— ॥ २० ॥

अवलिप्तासि सुश्रोणि यस्यास्ते मतिरीदृशी ।
वृद्धानां मृगशावाक्षि भ्राजते पुण्यसंचयः ॥ २१ ॥

'सुश्रोणि ! तुम गर्वीली जान पड़ती हो, तभी तो तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गयी है। मृगशावकलोचने ! इस तरह पुण्यका संग्रह बूढ़ी स्त्रियोंको ही शोभा देता है, तुम-जैसे युवतीको नहीं ॥ २१ ॥

त्वं सर्वगुणसम्पन्ना नार्हसे वक्तुमीदृशम् ।
त्रैलोक्यसुन्दरी भीरु यौवनं तेऽतिवर्तते ॥ २२ ॥

'तुम तो सर्वगुणसम्पन्न एवं त्रिलोकीकी अद्वितीय सुन्दरी हो। तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। भीरु ! तुम्हारी जवानी बीती जा रही है ॥ २२ ॥

अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशग्रीव इति श्रुतः ।
तस्य मे भव भार्या त्वं भुङ्क्ष्व भोगान् यथासुखम् ॥ २३ ॥

'भद्रे ! मैं लङ्काका राजा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। तुम मेरी भार्या हो जाओ और सुखपूर्वक उत्तम भोग भोगो ॥ २३ ॥

कश्च तावदसौ यं त्वं विष्णुरित्यभिभाषसे ।
वीर्येण तपसा चैव भोगेन च बलेन च ॥ २४ ॥
स मया नो समो भद्रे यं त्वं कामयसेऽङ्गने ।

'पहले यह तो बताओ, तुम जिसे विष्णु कहती हो, वह कौन है ? अङ्गने ! भद्रे ! तुम जिसे चाहती हो, वह बल,

पराक्रम, तप और भोग-वैभवके द्वारा मेरी समानता नहीं कर सकता' ॥२४½॥

इत्युक्तवति तस्मिंस्तु वेदवत्यथ साब्रवीत्॥ २५॥
मा मैवमिति सा कन्या तमुवाच निशाचरम्।

उसके ऐसा कहनेपर कुमारी वेदवती उस निशाचरसे बोली—'नहीं, नहीं, ऐसा न कहो ॥२५½॥

त्रैलोक्याधिपतिं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम्॥ २६॥
त्वदृते राक्षसेन्द्रान्यः कोऽवमन्येत बुद्धिमान्।

'राक्षसराज! भगवान् विष्णु तीनों लोकोंके अधिपति हैं। सारा संसार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन पुरुष है, जो बुद्धिमान् होकर भी उनकी अवहेलना करेगा' ॥२६½॥

एवमुक्तस्तया तत्र वेदवत्या निशाचरः॥ २७॥
मूर्धजेषु तदा कन्यां कराग्रेण परामृशत्।

वेदवतीके ऐसा कहनेपर उस राक्षसने अपने हाथसे उस कन्याके केश पकड़ लिये ॥ २७½॥

ततो वेदवती क्रुद्धा केशान् हस्तेन साच्छिनत्॥ २८॥
असिर्भूत्वा करस्तस्याः केशांश्छित्त्वांस्तदाकरोत्।

इससे वेदवतीको बड़ा क्रोध हुआ। उसने अपने हाथसे उन केशोंको काट दिया। उसके हाथने तलवार बनकर तत्काल उसके केशोंको मस्तकसे अलग कर दिया ॥ २८½॥

सा ज्वलन्तीव रोषेण दहन्तीव निशाचरम्॥ २९॥
उवाचाग्निं समाधाय मरणाय कृतत्वरा।

वेदवती रोषसे प्रज्वलित-सी हो उठी। वह जल मरनेके लिये उतावली हो अग्निकी स्थापना करके उस निशाचरको दग्ध करती हुई-सी बोली— ॥२९½॥

धर्षितायास्त्वयानार्य न मे जीवितमिष्यते॥ ३०॥
रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हुताशनम्।

'नीच राक्षस! तूने मेरा तिरस्कार किया है; अतः अब इस जीवनको सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है। इसलिये तेरे देखते-देखते मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी ॥३०½॥

यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने॥ ३१॥
तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः।

'तुझ पापात्माने इस वनमें मेरा अपमान किया है। इसलिये मैं तेरे वधके लिये फिर उत्पन्न होऊँगी ॥३१½॥

नहि शक्यः स्त्रिया हन्तुं पुरुषः पापनिश्चयः॥ ३२॥
शापे त्वयि मयोत्सृष्टे तपसश्च व्ययो भवेत्।

'स्त्री अपनी शारीरिक शक्तिसे किसी पापाचारी पुरुषका वध नहीं कर सकती। यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण हो जायगी ॥३२½॥

यदि त्वस्ति मया किंचित् कृतं दत्तं हुतं तथा॥ ३३॥
तस्मात् त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता।

'यदि मैंने कुछ भी सत्कर्म, दान और होम किये हों तो अगले जन्ममें मैं सती-साध्वी अयोनिजा कन्याके रूपमें प्रकट होऊँ तथा किसी धर्मात्मा पिताकी पुत्री बनूँ' ॥३३½॥

एवमुक्त्वा प्रविष्टा सा ज्वलितं जातवेदसम्॥ ३४॥
पपात च दिवो दिव्या पुष्पवृष्टिः समन्ततः।

ऐसा कहकर वह प्रज्वलित अग्निमें समा गयी। उस समय उसके चारों ओर आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥३४½॥

पुनरेव समुद्भूता पद्मे पद्मसमप्रभा॥ ३५॥
तस्मादपि पुनः प्राप्ता पूर्ववत् तेन रक्षसा।

तदनन्तर दूसरे जन्ममें वह कन्या पुनः एक कमलसे प्रकट हुई। उस समय उसकी कान्ति कमलके समान ही सुन्दर थी। उस राक्षसने पहलेकी ही भाँति फिर वहाँसे भी उस कन्याको प्राप्त कर लिया ॥३५½॥

कन्यां कमलगर्भाभां प्रगृह्य स्वगृहं ययौ॥ ३६॥
प्रगृह्य रावणस्त्वेतां दर्शयामास मन्त्रिणे।

कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर कान्तिवाली उस कन्याको लेकर रावण अपने घर गया। वहाँ उसने मन्त्रीको वह कन्या दिखायी ॥३६½॥

लक्षणज्ञो निरीक्ष्यैव रावणं चैवमब्रवीत्॥ ३७॥
गृहस्थैषा हि सुश्रोणी त्वद्वधायैव दृश्यते।

मन्त्री बालक-बालिकाओंके लक्षणोंको जाननेवाला था। उसने उसे अच्छी तरह देखकर रावणसे कहा—'राजन्! यह सुन्दरी कन्या यदि घरमें रही तो आपके वधका ही कारण होगी, ऐसा लक्षण देखा जाता है' ॥३७½॥

एतच्छ्रुत्वार्णवे राम तां प्रचिक्षेप रावणः॥ ३८॥
सा चैव क्षितिमासाद्य यज्ञायतनमध्यगा।
राज्ञो हलमुखोत्कृष्टा पुनरप्युत्थिता सती॥ ३९॥

श्रीराम! यह सुनकर रावणने उसे समुद्रमें फेंक दिया। तत्पश्चात् वह भूमिको प्राप्त होकर राजा जनकके यज्ञमण्डपके मध्यवर्ती भूभागमें जा पहुँची। वहाँ राजाके हलके मुखभागसे उस भूभागके जोते जानेपर वह सती साध्वी कन्या फिर प्रकट हो गयी ॥ ३८-३९ ॥

सैषा जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो।
तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्वं हि सनातनः॥ ४०॥

प्रभो! वही यह वेदवती महाराज जनककी पुत्रीके रूपमें प्रादुर्भूत हो आपकी पत्नी हुई है। महाबाहो! आप ही सनातन विष्णु हैं ॥ ४० ॥

पूर्वं क्रोधहतः शत्रुर्ययासौ निहतस्तया।
उपाश्रयित्वा शैलाभस्तव वीर्यममानुषम्॥ ४१॥

उस वेदवतीने पहले ही अपने रोषजनित शापके द्वारा आपके उस पर्वताकार शत्रुको मार डाला था, जिसे अब आपने आक्रमण करके मौतके घाट उतारा है। प्रभो! आपका पराक्रम अलौकिक है ॥ ४१ ॥

एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः।
क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ॥ ४२ ॥

इस प्रकार यह महाभागा देवी विभिन्न कल्पोंमें पुनः रावणवधके उद्देश्यसे मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होती रहेगी। यज्ञवेदीपर अग्निशिखाके समान हलसे जोते गये क्षेत्रमें इसका आविर्भाव हुआ है ॥ ४२ ॥

एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत् कृते युगे।
त्रेतायुगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः ॥ ४३ ॥
उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः।
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥ ४४ ॥

यह वेदवती पहले सत्ययुगमें प्रकट हुई थी। फिर त्रेतायुग आनेपर उस राक्षस रावणके वधके लिये मिथिलावर्ती राजा जनकके कुलमें सीतारूपसे अवतीर्ण हुई। सीता (हल जोतनेसे भूमिपर बनी हुई रेखा) से उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य इस देवीको सीता कहते हैं ॥ ४३-४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

रावणद्वारा मरुत्तकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पक्षियोंको वरदान देना

प्रविष्टायां हुताशं तु वेदवत्यां स रावणः।
पुष्पकं तु समारुह्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन! वेदवतीके अग्निमें प्रवेश कर जानेपर रावण पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो पृथ्वीपर सब ओर भ्रमण करने लगा ॥ १ ॥

ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सह दैवतैः।
उशीरबीजमासाद्य ददर्श स तु रावणः ॥ २ ॥

उसी यात्रामें उशीरबीज नामक देशमें पहुँचकर रावणने देखा, राजा मरुत्त देवताओंके साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं ॥ २ ॥

संवर्तो नाम ब्रह्मर्षिः साक्षाद् भ्राता बृहस्पतेः।
याजयामास धर्मज्ञः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

उस समय साक्षात् बृहस्पतिके भाई तथा धर्मके मर्मको जाननेवाले ब्रह्मर्षि संवर्त सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे रहकर वह यज्ञ करा रहे थे ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा देवास्तु तद् रक्षो वरदानेन दुर्जयम्।
तिर्यग्योनिं समाविष्टास्तस्य धर्षणभीरवः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजीके वरदानसे जिसको जीतना कठिन हो गया था, उस राक्षस रावणको वहाँ देखकर उसके आक्रमणसे भयभीत हो देवतालोग तिर्यग् योनिमें प्रवेश कर गये ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूरः संवृत्तो धर्मराजस्तु वायसः।
कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥

इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिट और वरुण हंस हो गये ॥ ५ ॥

अन्येष्वपि गतेष्वेवं देवेश्वरनिषूदन।
रावणः प्राविशद् यज्ञं सारमेय इवाशुचिः ॥ ६ ॥

शत्रुसूदन श्रीराम! इसी तरह दूसरे-दूसरे देवता भी जब विभिन्न रूपोंमें स्थित हो गये, तब रावणने उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, मानो कोई अपवित्र कुत्ता वहाँ आ गया हो ॥ ६ ॥

तं च राजानमासाद्य रावणो राक्षसाधिपः।
प्राह युद्धं प्रयच्छेति निर्जितोऽस्मीति वा वद ॥ ७ ॥

राजा मरुत्तके पास पहुँचकर राक्षसराज रावणने कहा—'मुझसे युद्ध करो या अपने मुँहसे यह कह दो कि मैं पराजित हो गया' ॥ ७ ॥

ततो मरुत्तो नृपतिः को भवानित्युवाच तम्।
अवहास्य ततो मुक्त्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

तब राजा मरुत्तने पूछा—'आप कौन हैं?' उनका प्रश्न सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला— ॥ ८ ॥

अकुतूहलभावेन प्रीतोऽस्मि तव पार्थिव।
धनदस्यानुजं यो मां नावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

'भूपाल! मैं कुबेरका छोटा भाई रावण हूँ। फिर भी तुम मुझे नहीं जानते और मुझे देखकर भी तुम्हारे मनमें न तो कौतूहल हुआ, न भय हो; इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥

त्रिषु लोकेषु कोऽन्योऽस्ति यो न जानाति मे बलम्।
भ्रातरं येन निर्जित्य विमानमिदमाहृतम् ॥ १० ॥

'तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा होगा, जो मेरे बलको न जानता हो। मैं वह रावण हूँ, जिसने अपने भाई कुबेरको जीतकर यह विमान छीन लिया है' ॥ १० ॥

ततो मरुत्तः स नृपस्तं रावणमथाब्रवीत्।
धन्यः खलु भवान् येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ॥ ११ ॥

तब राजा मरुत्तने रावणसे कहा—'तुम धन्य हो, जिसने अपने बड़े भाईको रणभूमिमें पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

न त्वया सदृशः श्लाघ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
कं त्वं प्राक्केवलं धर्मं चरित्वा लब्धवान् वरम् ॥ १२ ॥

'तुम्हारे-जैसा स्पृहणीय पुरुष तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। तुमने पूर्वकालमें किस शुद्ध धर्मका आचरण करके वर प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

श्रुतपूर्वं हि न मया भाषसे यादृशं स्वयम् ।
तिष्ठेदानीं न मे जीवन् प्रतियास्यसि दुर्मते ॥ १३ ॥
अद्य त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

'तुम स्वयं जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी है। दुर्बुद्धे! इस समय खड़े तो रहो। मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे। आज अपने पैने बाणोंसे मारकर तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ' ॥ १३½ ॥

ततः शरासने गृह्य सायकांश्च नराधिपः ॥ १४ ॥
रणाय निर्ययौ क्रुद्धः संवर्तो मार्गमावृणोत् ।

तदनन्तर राजा मरुत्त धनुष-बाण लेकर बड़े रोषके साथ युद्धके लिये निकले, परंतु महर्षि संवर्तने उनका रास्ता रोक लिया ॥ १४½ ॥

सोऽब्रवीत् स्नेहसंयुक्तं मरुत्तं तं महानृषिः ॥ १५ ॥
श्रोतव्यं यदि मद्वाक्यं सम्प्रहारो न ते क्षमः ।

उन महर्षिने महाराज मरुत्तसे स्नेहपूर्वक कहा— राजन्! यदि मेरी बात सुनना और उसपर ध्यान देना उचित समझो तो सुनो। तुम्हारे लिये युद्ध करना उचित नहीं है ॥ १५½ ॥

माहेश्वरमिदं सत्रमसमाप्तं कुलं दहेत् ॥ १६ ॥
दीक्षितस्य कुतो युद्धं क्रोधित्वं दीक्षिते कुतः ।

'यह माहेश्वर यज्ञ आरम्भ किया गया है। यदि पूरा न हुआ तो तुम्हारे समस्त कुलको दग्ध कर डालेगा। जो यज्ञकी दीक्षा ले चुका है, उसके लिये युद्धका अवसर ही कहाँ है? यज्ञदीक्षित पुरुषमें क्रोधके लिये स्थान ही कहाँ है? ॥ १६½ ॥

संशयश्च जये नित्यं राक्षसश्च सुदुर्जयः ॥ १७ ॥
स निवृत्तो गुरोर्वाक्यान्मरुत्तः पृथिवीपतिः ।
विसृज्य सशरं चापं स्वस्थो मखमुखोऽभवत् ॥ १८ ॥

'युद्धमें किसकी विजय होगी, इस प्रश्नको लेकर सदा संशय ही बना रहता है। उधर यह राक्षस अत्यन्त दुर्जय है।' अपने आचार्यके इस कथनसे पृथ्वीपति मरुत्त युद्धसे निवृत्त हो गये। उन्होंने धनुष-बाण त्याग दिया और स्वस्थभावसे वे यज्ञके लिये उत्सुक हो गये ॥ १७-१८ ॥

ततस्तं निर्जितं मत्वा घोषयामास वै शुकः ।
रावणो जयतीत्युच्चैर्हर्षान्नादं विमुक्तवान् ॥ १९ ॥

तब उन्हें पराजित हुआ मानकर शुकने यह घोषणा कर दी कि महाराज रावणकी विजय हुई और वह बड़े हर्षके साथ उच्चस्वरसे सिंहनाद करने लगा ॥ १९ ॥

तान् भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षीन् यज्ञमागतान् ।
वितृप्तो रुधिरैस्तेषां पुनः सम्प्रययौ महीम् ॥ २० ॥

उस यज्ञमें आकर बैठे हुए महर्षियोंको खाकर उनके रक्तसे पूर्णतः तृप्त हो रावण फिर पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २० ॥

रावणे तु गते देवाः सेन्द्राश्चैव दिवौकसः ।
ततः स्वां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि चाब्रुवन् ॥ २१ ॥

राक्षसके चले जानेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता पुनः अपने स्वरूपमें प्रकट हो उन-उन प्राणियोंको (जिनके रूपमें वे स्वयं प्रकट हुए थे) वरदान देते हुए बोले ॥ २१ ॥

हर्षात् तदाब्रवीदिन्द्रो मयूरं नीलबर्हिणम् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ भुजङ्गाद्धि न ते भयम् ॥ २२ ॥

सबसे पहले इन्द्रने हर्षपूर्वक नीले पंखवाले मोरसे कहा—'धर्मज्ञ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें सर्पसे भय नहीं होगा ॥ २२ ॥

इदं नेत्रसहस्रं तु यत् तद् बर्हे भविष्यति ।
वर्षमाणे मयि मुदं प्राप्स्यसे प्रीतिलक्षणाम् ॥ २३ ॥
एवमिन्द्रो वरं प्रादान्मयूरस्य सुरेश्वरः ॥ २४ ॥

'मेरे जो ये सहस्र नेत्र हैं, इनके समान चिह्न तुम्हारी पाँखमें प्रकट होंगे। जब मैं मेघरूप होकर वर्षा करूँगा, उस समय तुम्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होगी। वह प्रसन्नता मेरी प्रसन्नताको लक्षित करानेवाली होगी।' इस प्रकार देवराज इन्द्रने मोरको वरदान दिया ॥ २३-२४ ॥

नीलाः किल पुरा बर्हा मयूराणां नराधिप ।
सुराधिपाद् वरं प्राप्य गताः सर्वेऽपि बर्हिणः ॥ २५ ॥

नरेश्वर श्रीराम! इस वरदानके पहले मोरोंके पंख केवल नीले रंगके ही होते थे। देवराजसे उक्त वर पाकर सब मयूर वहाँसे चले गये ॥ २५ ॥

धर्मराजोऽब्रवीद् राम प्राग्वंशे वायसं प्रति ।
पक्षिंस्तवास्मि सुप्रीतः पीतस्य वचनं शृणु ॥ २६ ॥

श्रीराम! तदनन्तर धर्मराजने प्राग्वंशको[1] छतपर बैठे हुए कौएसे कहा—'पक्षी! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। प्रसन्न होकर जो कुछ कहता हूँ, मेरे इस वचनको सुनो ॥ २६ ॥

यथान्ये विविधैः रोगैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न संशयः ॥ २७ ॥

'जैसे दूसरे प्राणियोंको मैं नाना प्रकारके रोगोंद्वारा पीड़ित करता हूँ, वे रोग मेरी प्रसन्नताके कारण तुमपर अपना प्रभाव

---

१. यज्ञशालाके पूर्वभागमें यजमान और उसकी पत्नी आदिके ठहरनेके लिये बने हुए गृहको प्राग्वंश कहते हैं। यह घर हविर्गृहके पूर्व ओर होता है।

नहीं डाल सकेंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

मृत्युस्ते भयं नास्ति वरान् मम विहंगम ।
यावत् त्वां न वधिष्यन्ति नरास्तावद् भविष्यसि ॥ २८ ॥

'विहङ्गम ! मेरे वरदानसे तुम्हें मृत्युका भय नहीं होगा । जबतक मनुष्य आदि प्राणी तुम्हारा वध नहीं करेंगे, तबतक तुम जीवित रहोगे ॥ २८ ॥

ये च मद्विषयस्था वै मानवाः क्षुधयार्दिताः ।
त्वयि भुक्ते सुतृप्तास्ते भविष्यन्ति सबान्धवाः ॥ २९ ॥

'मेरे राज्य—यमलोकमें स्थित रहकर जो मानव भूखसे पीड़ित हैं, उनके पुत्र आदि इस भूतलपर सब तुम्हें भोजन करावेंगे, तब वे बन्धु-बान्धवोंसहित परम तृप्त होंगे' ॥ २९ ॥

वरुणस्त्वब्रवीद्धंसं गङ्गातोयविचारिणम् ।
श्रूयतां प्रीतिसंयुक्तं वचः पत्ररथेश्वर ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् वरुणने गङ्गाजीके जलमें विचरनेवाले हंसको सम्बोधित करके कहा—'पक्षिराज ! मेरा प्रेमपूर्ण वचन सुनो— ॥ ३० ॥

वर्णो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसंनिभः ।
भविष्यति तवोदग्रः शुद्धफेनसमप्रभः ॥ ३१ ॥

'तुम्हारे शरीरका रंग चन्द्रमाके मण्डल तथा शुद्ध फेनके समान परम उज्ज्वल, सौम्य एवं मनोरम होगा ॥ ३१ ॥

मच्छरीरं समासाद्य कान्तो नित्यं भविष्यसि ।
प्राप्स्यसे चातुलां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३२ ॥

'मेरे अद्भुत जलका आश्रय लेकर तुम सदा कान्तिमान् बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी । यही मेरे प्रेमका परिचायक चिह्न होगा' ॥ ३२ ॥

हंसानां हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरः ।
पक्षा नीलाग्रसंवीताः क्रोडाः शष्पाग्रनिर्मलाः ॥ ३३ ॥

श्रीराम ! पूर्वकालमें हंसोंका रंग पूर्णतः श्वेत नहीं था । उनकी पाँखोंका अग्रभाग नीला और दोनों भुजाओंके बीचका भाग नूतन दूर्वादलके अग्रभाग-सा कोमल एवं श्याम वर्णसे युक्त होता था ॥ ३३ ॥

अथाब्रवीद् वैश्रवणः कृकलासं गिरौ स्थितम् ।
हरण्यं सम्प्रयच्छामि वर्णं प्रीतस्तवाप्यहम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर विश्रवाके पुत्र कुबेरने पर्वतशिखरपर बैठे हुए कृकलास (गिरगिट) से कहा—'मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्णके समान सुन्दर रंग प्रदान करता हूँ ॥ ३४ ॥

सदृश्यं च शिरो नित्यं भविष्यति तवाक्षयम् ।
एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३५ ॥

'तुम्हारा सिर सदा ही सुवर्णके समान रंगका एवं अक्षय होगा । मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा यह (काला) रंग सुनहरे रंगमें परिवर्तित हो जायगा' ॥ ३५ ॥

एवं दत्त्वा वरांस्तेभ्यस्तस्मिन् यज्ञोत्सवे सुराः ।
निवृत्ते सह राज्ञा ते पुनः स्वभवनं गताः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उन्हें उत्तम वर देकर वे सब देवता वह यज्ञोत्सव समाप्त होनेपर राजा मरुत्तके साथ पुनः अपने भवन—स्वर्गलोकको चले गये ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

—★—

एकोनविंशः सर्गः

रावणके द्वारा अनरण्यका वध तथा उनके द्वारा उसे शापकी प्राप्ति

अथ जित्वा मरुत्तं स प्रययौ राक्षसाधिपः ।
नगराणि नरेन्द्राणां युद्धकाङ्क्षी दशाननः ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) पूर्वोक्त रूपसे राजा मरुत्तको जीतनेके पश्चात् राक्षसराज दशग्रीव क्रमशः अन्य नरेशोंके नगरोंमें भी युद्धकी इच्छासे गया ॥ १ ॥

समासाद्य तु राजेन्द्रान् महेन्द्रवरुणोपमान् ।
अब्रवीद् राक्षसेन्द्रस्तु युद्धं मे दीयतामिति ॥ २ ॥
निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत एष मे हि सुनिश्चयः ।
अन्यथा कुर्वतामेवं मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥

महेन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी उन महाराजोंके पास जाकर वह राक्षसराज उनसे कहता—'राजाओ ! तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा यह कह दो कि 'हम हार गये ।' यही मेरा अच्छी तरह किया हुआ निश्चय है । इसके विपरीत करनेसे तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा' ॥ २-३ ॥

ततस्त्वभीरवः प्राज्ञाः पार्थिवा धर्मनिश्चयाः ।
मन्त्रयित्वा ततोऽन्योन्यं राजानः सुमहाबलाः ॥ ४ ॥
निर्जिताः समेत्यभाषन्त ज्ञात्वा वरबलं रिपोः ।

तब निर्भय, बुद्धिमान् तथा धर्मपूर्ण विचार रखनेवाले बहुत-से महाबली राजा परस्पर सलाह करके शत्रुकी प्रबलताको समझकर बोले—'राक्षसराज ! हम तुमसे हार मान लेते हैं' ॥ ४½ ॥

दुष्यन्तः सुरथो गाधिर्गयो राजा पुरूरवाः ॥ ५ ॥
एते सर्वेऽब्रुवंस्तात निर्जिताः स्मेति पार्थिवाः ।

दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय, राजा पुरूरवा—इन सभी भूपालोंने अपने-अपने राजत्वकालमें रावणके सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ५½ ॥

अथायोध्यां समासाद्य रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥
सुगुप्तामनरण्येन शक्रेणेवामरावतीम् ।
स तं पुरुषशार्दूलं पुरंदरसमं बले ॥ ७ ॥
प्राह राजानमासाद्य युद्धं देहीति रावणः ।
निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूहि त्वमेवं मम शासनम् ॥ ८ ॥

इसके बाद राक्षसोंका राजा रावण इन्द्रद्वारा सुरक्षित अमरावतीकी भाँति महाराज अनरण्यद्वारा पालित अयोध्यापुरीमें आया। वहाँ पुरन्दर (इन्द्र) के समान पराक्रमी पुरुषसिंह राजा अनरण्यसे मिलकर बोला—'राजन्! तुम मुझसे युद्ध करनेका वचन दो अथवा कह दो कि 'मैं हार गया।' यही मेरा आदेश है' ॥ ६—८ ॥

अयोध्याधिपतिस्तस्य श्रुत्वा पापात्मनो वचः ।
अनरण्यस्तु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रमथाब्रवीत् ॥ ९ ॥

उस पापात्माकी वह बात सुनकर अयोध्यानरेश अनरण्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे उस राक्षसराजसे बोले— ॥ ९ ॥

दीयते द्वन्द्वयुद्धं ते राक्षसाधिपते मया ।
संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव चैवं भवाम्यहम् ॥ १० ॥

'निशाचरपते! मैं तुम्हें द्वन्द्वयुद्धका अवसर देता हूँ। ठहरो, शीघ्र युद्धके लिये तैयार हो जाओ। मैं भी तैयार हो रहा हूँ' ॥ १० ॥

अथ पूर्वं श्रुतार्थेन निर्जितं सुमहद् बलम् ।
निष्क्रामत् तन्नरेन्द्रस्य बलं रक्षोवधोद्यतम् ॥ ११ ॥

राजाने रावणकी दिग्विजयकी बात पहलेसे ही सुन रखी थी, इसलिये उन्होंने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी। नरेशकी वह सारी सेना उस समय राक्षसके वधके लिये उत्साहित हो नगरसे बाहर निकली ॥ ११ ॥

नागानां दशसाहस्रं वाजिनां नियुतं तथा ।
रथानां बहुसाहस्रं पत्तीनां च नरोत्तम ॥ १२ ॥
महीं संछाद्य निष्क्रान्तं सपदातिरथं रणे ।

नरश्रेष्ठ श्रीराम! दस हजार हाथीसवार, एक लाख घुड़सवार, कई हजार रथी और पैदल सैनिक पृथ्वीको आच्छादित करके युद्धके लिये आगे बढ़े। रथों और पैदलोंसहित सारी सेना रणक्षेत्रमें जा पहुँची ॥ १२½ ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहद् युद्धं युद्धविशारद ॥ १३ ॥
अनरण्यस्य नृपते राक्षसेन्द्रस्य चाद्भुतम् ।

युद्धविशारद रघुवीर! फिर तो राजा अनरण्य और निशाचर रावणमें बड़ा अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ १३½ ॥

तद् रावणबलं प्राप्य बलं तस्य महीपतेः ॥ १४ ॥
प्राणश्यत तदा सर्वं हव्यं हुतमिवानले ।

उस समय राजाकी सारी सेना रावणकी सेनाके साथ टक्कर लेकर उसी तरह नष्ट होने लगी, जैसे अग्निमें दी हुई आहुति पूर्णतः भस्म हो जाती है ॥ १४½ ॥

युद्ध्वा च सुचिरं कालं कृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥ १५ ॥
प्रज्वलन्तं तमासाद्य क्षिप्रमेवावशेषितम् ।
प्राविशत् संकुलं तत्र शलभा इव पावकम् ॥ १६ ॥

उस सेनाने बहुत देरतक युद्ध किया, बड़ा पराक्रम दिखाया; परंतु तेजस्वी रावणका सामना करके वह बहुत थोड़ी संख्यामें शेष रह गयी और अन्ततोगत्वा जैसे पतिङ्गे आगमें जलकर भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार कालके गालमें चली गयी ॥ १५-१६ ॥

सोऽपश्यत् तन्नरेन्द्रस्तु नश्यमानं महाबलम् ।
महार्णवं समासाद्य वनापगशतं यथा ॥ १७ ॥

राजाने देखा, मेरी विशाल सेना उसी प्रकार नष्ट होती चली जा रही है, जैसे जलसे भरी हुई सैकड़ों नदियाँ महासागरके पास पहुँचकर उसीमें विलीन हो जाती हैं ॥ १७ ॥

ततः शक्रधनुःप्रख्यं धनुर्विस्फारयन् स्वयम् ।
आससाद नरेन्द्रस्तं रावणं क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥

तब महाराज अनरण्य क्रोधसे मूर्च्छित हो अपने इन्द्रधनुषके समान महान् शरासनको टंकारते हुए रावणका सामना करनेके लिये आये ॥ १८ ॥

अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुकसारणाः ।
प्रहस्तसहिता भग्ना व्यद्रवन्त मृगा इव ॥ १९ ॥

फिर तो जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार मारीच, शुक, सारण तथा प्रहस्त—ये चारों राक्षस मन्त्री राजा अनरण्यसे परास्त होकर भाग खड़े हुए ॥ १९ ॥

ततो बाणशतान्यष्टौ पातयामास मूर्धनि ।
तस्य राक्षसराजस्य इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् इक्ष्वाकुवंशको आनन्दित करनेवाले राजा अनरण्यने राक्षसराज रावणके मस्तकपर आठ सौ बाण मारे ॥ २० ॥

तस्य बाणाः पतन्तस्ते चक्रिरे न क्षतं क्वचित् ।
वारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धनि ॥ २१ ॥

परंतु जैसे बादलोंसे पर्वतशिखरपर गिरती हुई जलधाराएँ उसे क्षति नहीं पहुँचातीं, उसी प्रकार वे बरसते हुए बाण उस निशाचरके शरीरपर कहीं घाव न कर सके ॥ २१ ॥

ततो राक्षसराजेन क्रुद्धेन नृपतिस्तदा ।
तलेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथान्निपपात ह ॥ २२ ॥

इसके बाद राक्षसराजने कुपित होकर राजाके मस्तकपर

एक तमाचा मारा। इससे आहत होकर राजा रथसे नीचे गिर पड़े ॥ २२ ॥

स राजा पतितो भूमौ विह्वलः प्रविवेपितः।
वज्रदग्ध इवारण्ये सालो निपतितो यथा ॥ २३ ॥

जैसे वनमें वज्रपातसे दग्ध हुआ सालवृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार राजा अनरण्य व्याकुल हो भूमिपर गिरे और थर-थर काँपने लगे ॥ २३ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद् रक्ष इक्ष्वाकुं पृथिवीपतिम्।
किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युध्यता ॥ २४ ॥

यह देख रावण जोर-जोरसे हँस पड़ा और उन इक्ष्वाकुवंशी नरेशसे बोला—'इस समय मेरे साथ युद्ध करके तुमने क्या फल प्राप्त किया है ?' ॥ २४ ॥

त्रैलोक्ये नास्ति यो द्वन्द्वं मम दद्यान्नराधिप।
शङ्के प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि बलं मम ॥ २५ ॥

'नरेश्वर ! तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो मुझे द्वन्द्वयुद्ध दे सके। जान पड़ता है तुमने भोगोंमें अधिक आसक्त रहनेके कारण मेरे बल-पराक्रमको नहीं सुना था' ॥ २५ ॥

तस्यैवं ब्रुवतो राजा मन्दासुर्वाक्यमब्रवीत्।
किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २६ ॥

राजाकी प्राणशक्ति क्षीण हो रही थी। उन्होंने इस प्रकार बातें करनेवाले रावणका वचन सुनकर कहा—'राक्षसराज ! अब यहाँ क्या किया जा सकता है ? क्योंकि कालका उल्लङ्घन करना अत्यन्त दुष्कर है ॥ २६ ॥

नह्यहं निर्जितो रक्षस्त्वया चात्मप्रशंसिना।
कालेनैव विपन्नोऽहं हेतुभूतस्तु मे भवान् ॥ २७ ॥

'राक्षस ! तू अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा कर रहा है; किंतु तूने जो आज मुझे पराजित किया है, इसमें काल ही कारण है। वास्तवमें कालने ही मुझे मारा है। तू तो मेरी मृत्युमें निमित्तमात्र बन गया है ॥ २७ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं प्राणपरिक्षये।
नह्यहं विमुखो रक्षो युद्ध्यमानस्त्वया हतः ॥ २८ ॥

'मेरे प्राण जा रहे हैं, अतः इस समय मैं क्या कर सकता हूँ ? निशाचर ! मुझे संतोष है कि मैंने युद्धसे मुँह नहीं मोड़ा। युद्ध करता हुआ ही मैं तेरे हाथसे मारा गया हूँ ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुपरिभावित्वाद् वचो वक्ष्यामि राक्षस।
यदि दत्तं यदि हुतं यदि मे सुकृतं तपः।
यदि गुप्ताः प्रजाः सम्यक् तदा सत्यं वचोऽस्तु मे ॥ २९ ॥

'परंतु राक्षस ! तूने अपने व्यङ्ग्यपूर्ण वचनसे इक्ष्वाकुकुलका अपमान किया है, इसलिये मैं तुझे शाप दूँगा—तेरे लिये अमङ्गलजनक बात कहूँगा। यदि मैंने दान, पुण्य, होम और तप किये हों, यदि मेरे द्वारा धर्मके अनुसार प्रजाजनोंका ठीक-ठीक पालन हुआ हो तो मेरी बात सत्य होकर रहे ॥ २९ ॥

उत्पत्स्यते कुले ह्यस्मिन्निक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
रामो दाशरथिर्नाम स ते प्राणान् हरिष्यति ॥ ३० ॥

'महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंके इस वंशमें ही दशरथनन्दन श्रीराम प्रकट होंगे, जो तेरे प्राणोंका अपहरण करेंगे' ॥ ३० ॥

ततो जलधरोदग्रस्ताडितो देवदुन्दुभिः।
तस्मिन्नुदाहृते शापे पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ॥ ३१ ॥

राजाके इस प्रकार शाप देते ही मेघके समान गम्भीर स्वरमें देवताओंकी दुन्दुभि बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥

ततः स राजा राजेन्द्र गतः स्थानं त्रिविष्टपम्।
स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोऽप्यसर्पत ॥ ३२ ॥

राजाधिराज श्रीराम ! तदनन्तर राजा अनरण्य स्वर्गलोकको सिधारे। उनके स्वर्गगामी हो जानेपर राक्षस रावण वहाँसे अन्यत्र चला गया ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनविंश सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

नारदजीका रावणको समझाना, उनके कहनेसे रावणका युद्धके लिये यमलोकको जाना तथा नारदजीका इस युद्धके विषयमें विचार करना

ततो वित्रासयन् मर्त्यान् पृथिव्यां राक्षसाधिपः।
आससाद घने तस्मिन् नारदं मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन !) इसके बाद राक्षसराज रावण मनुष्योंको भयभीत करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा। एक दिन पुष्पक विमानसे यात्रा करते समय उसे बादलोंके बीचमें मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी मिले ॥ १ ॥

तस्याभिवादनं कृत्वा दशग्रीवो निशाचरः।
अब्रवीत् कुशलं पृष्ट्वा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

निशाचर दशग्रीवने उनका अभिवादन करके कुशल-समाचारकी जिज्ञासा की और उनके आगमनका कारण पूछा— ॥ २ ॥

नारदस्तु महातेजा देवर्षिरमितप्रभः ।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम् ॥ ३ ॥

तब बादलोंकी पीठपर खड़े हुए अमित कान्तिमान् महातेजस्वी देवर्षि नारदने पुष्पक विमानपर बैठे हुए रावणसे कहा— ॥ ३ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विश्रवसः सुत ।
प्रीतोऽस्म्यभिजनोपेत विक्रमैरूर्जितैस्तव ॥ ४ ॥

'उत्तम कुलमें उत्पन्न विश्रवणकुमार राक्षसराज रावण ! सौम्य ! ठहरो, मैं तुम्हारे बढ़े हुए बल-विक्रमसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

विष्णुना दैत्यघातैश्च गन्धर्वोरगधर्षणैः ।
त्वया समं विमर्दैश्च भृशं हि परितोषितः ॥ ५ ॥

'दैत्योंका विनाश करनेवाले अनेक संग्राम करके भगवान् विष्णुने तथा गन्धर्वों और नागोंको पददलित करनेवाले युद्धोंद्वारा तुमने मुझे समानरूपसे संतुष्ट किया है ॥ ५ ॥

किंचिद् वक्ष्यामि तावत् तु श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ।
तन्मे निगदतस्तात समाधिं श्रवणे कुरु ॥ ६ ॥

'इस समय यदि तुम सुनोगे तो मैं तुमसे कुछ सुननेयोग्य बात कहूँगा । तात ! मेरे मुँहसे निकली हुई उस बातको सुननेके लिये तुम अपने चित्तको एकाग्र करो ॥ ६ ॥

किमयं वध्यते तात त्वयावध्येन दैवतैः ।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः ॥ ७ ॥

'तात ! तुम देवताओंके लिये भी अवध्य होकर इस भूलोकके निवासियोंका वध क्यों कर रहे हो ? यहाँके प्राणी तो मृत्युके अधीन होनेके कारण स्वयं ही मरे हुए हैं; फिर तुम भी इन मरे हुओंको क्यों मार रहे हो ? ॥ ७ ॥

देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ।
अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः ॥ ८ ॥

'देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस भी जिसे नहीं मार सकते, ऐसे विख्यात वीर होकर भी तुम इस मनुष्यलोकको क्लेश पहुँचाओ, यह कदापि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

नित्यं श्रेयसि सम्मूढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम् ।
हन्यात् कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम् ॥ ९ ॥

'जो सदा अपने कल्याण-साधनमें मूढ़ हैं, बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे घिरे हुए हैं और बुढ़ापा तथा सैकड़ों रोगोंसे युक्त हैं, ऐसे लोगोंको कोई भी वीर पुरुष कैसे मार सकता है ? ॥ ९ ॥

तैस्तैरनिष्टोपगमैरजस्रं यत्र कुत्र कः ।
मतिमान् मानुषे लोके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥

'जो नाना प्रकारके अनिष्टोंकी प्राप्तिसे जहाँ कहीं भी पीड़ित है, उस मनुष्यलोकमें आकर कौन बुद्धिमान् वीर पुरुष युद्धके द्वारा मनुष्योंके वधमें अनुरक्त होगा ? ॥ १० ॥

क्षीयमाणं दैवहतं क्षुत्पिपासाजरादिभिः ।
विषादशोकसम्मूढं लोकं त्वं क्षपयस्व मा ॥ ११ ॥

'यह लोक तो यों ही भूख, प्यास और जरा आदिसे क्षीण हो रहा है तथा विषाद और शोकमें डूबकर अपनी विवेक-शक्ति खो बैठा है । दैवके मारे हुए इस मर्त्यलोकका तुम विनाश न करो ॥ ११ ॥

पश्य तावन्महाबाहो राक्षसेश्वर मानुषम् ।
मूढमेवं विचित्रार्थं यस्य न ज्ञायते गतिः ॥ १२ ॥

'महाबाहु राक्षसराज ! देखो तो सही, यह मनुष्यलोक ज्ञानशून्य होनेके कारण मूढ़ होनेपर भी किस तरह नाना प्रकारके क्षुद्र पुरुषार्थोंमें आसक्त है ? इसे इस बातका भी पता नहीं है कि कब दुःख और सुख आदि भोगनेका अवसर आयेगा ? ॥ १२ ॥

क्वचिद् वादित्रनृत्यादि सेव्यते मुदितैर्जनैः ।
रुद्यते चापरैरार्तैर्धाराश्रुनयनाननैः ॥ १३ ॥

'यहाँ कहीं कुछ मनुष्य तो आनन्दमग्न होकर गाजे-बाजे और नाच आदिका सेवन करते हैं—उनके द्वारा मन बहलाते हैं तथा कहीं कितने ही लोग दुःखसे पीड़ित हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए रोते रहते हैं ॥ १३ ॥

मातापितृसुतस्नेहभार्याबन्धुमनोरमैः ।
मोहितोऽयं जनो ध्वस्तः क्लेशं स्वं नावबुध्यते ॥ १४ ॥

'माता, पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा भाईके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनसूबे बाँधनेके कारण यह मनुष्यलोक मोहग्रस्त हो परमार्थसे भ्रष्ट हो रहा है । इसे अपने बन्धनजनित क्लेशका अनुभव ही नहीं होता है ॥ १४ ॥

तत्किमेवं परिक्लिश्य लोकं मोहनिराकृतम् ।
जित एव त्वया सौम्य मर्त्यलोको न संशयः ॥ १५ ॥

'इस प्रकार जो मोह (अज्ञान) के कारण परम पुरुषार्थसे वञ्चित हो गया है, ऐसे मनुष्य-लोकको क्लेश पहुँचाकर तुम्हें क्या मिलेगा ? सौम्य तुमने मनुष्य-लोकको तो जीत ही लिया है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ १५ ॥

अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।
तन्निगृह्णीष्व पौलस्त्य यमं परपुरंजय ॥ १६ ॥
तस्मिञ्जिते जितं सर्वं भवत्येव न संशयः ।

'शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले पुलस्त्यनन्दन ! इन सब मनुष्योंको यमलोकमें अवश्य जाना पड़ता है । अतः यदि शक्ति हो तो तुम यमराजको अपने काबूमें करो । उन्हें जीत लेनेपर तुम सबको जीत सकते हो; इसमें संशय नहीं है' ॥ १६½ ॥

एवमुक्तस्तु लङ्केशो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १७ ॥
अब्रवीन्नारदं तत्र सम्प्रहस्याभिवाद्य च ।

नारदजीके ऐसा कहनेपर लङ्कापति रावण अपने तेजसे उद्दीप्त होनेवाले उन देवर्षिको प्रणाम करके हँसता हुआ बोला— ॥ १७½ ॥

महर्षे देवगन्धर्वविहार समरप्रिय ॥ १८ ॥
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं रसातलम् ।

'महर्षे ! आप देवताओं और गन्धर्वोंके लोकमें विहार करनेवाले हैं। युद्धके दृश्य देखना आपको बहुत ही प्रिय है। मैं इस समय दिग्विजयके लिये रसातलमें जानेको उद्यत हूँ ॥१८½॥

ततो लोकत्रयं जित्वा स्थाप्य नागान् सुरान् वशे ॥ १९ ॥
समुद्रममृतार्थं च मथिष्यामि रसालयम् ।

'फिर तीनों लोकोंको जीतकर नागों और देवताओंको अपने वशमें करके अमृतकी प्राप्तिके लिये रसनिधि समुद्रका मन्थन करूँगा' ॥१९½॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवं नारदो भगवानृषिः ॥ २० ॥
क्व खल्विदानीं मार्गेण त्वयेहान्येन गम्यते ।
अयं खलु सुदुर्गम्यः प्रेतराजपुरं प्रति ॥ २१ ॥
मार्गो गच्छति दुर्धर्ष यमस्यामित्रकर्शन ।

यह सुनकर देवर्षि भगवान् नारदने कहा—'शत्रुसूदन ! यदि तुम रसातलको जाना चाहते हो तो इस समय उसका मार्ग छोड़कर दूसरे रास्तेसे कहाँ जा रहे हो ? दुर्धर्ष वीर ! रसातलका यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है और यमराजकी पुरीसे होकर ही जाता है' ॥२०-२१½॥

स तु शारदमेघाभं हासं मुक्त्वा दशाननः ॥ २२ ॥
उवाच कृतमित्येव वचनं चेदमब्रवीत् ।

नारदजीके ऐसा कहनेपर दशमुख रावण शरदृतुके बादलकी भाँति अपना उज्ज्वल हास बिखेरता हुआ बोला—'देवर्षे ! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली।' इसके बाद उसने यों कहा— ॥ २२½॥

तस्मादेवमहं ब्रह्मन् वैवस्वतवधोद्यतः ॥ २३ ॥
गच्छामि दक्षिणामाशां यत्र सूर्यात्मजो नृपः ।

'ब्रह्मन् ! अब यमराजका वध करनेके लिये उद्यत होकर मैं उस दक्षिण दिशाको जाता हूँ, जहाँ सूर्यपुत्र राजा यम निवास करते हैं ॥२३½॥

मया हि भगवन् क्रोधात् प्रतिज्ञातं रणार्थिना ॥ २४ ॥
अवजेष्यामि चतुरो लोकपालानिति प्रभो ।

'प्रभो ! भगवन् ! मैंने युद्धकी इच्छासे क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि चारों लोकपालोंको परास्त करूँगा ॥ २४½॥

तदिह प्रस्थितोऽहं वै पितृराजपुरं प्रति ॥ २५ ॥
प्राणिसंक्लेशकर्तारं योजयिष्यामि मृत्युना ।

'अतः मैं यहाँसे यमपुरीको प्रस्थान कर रहा हूँ। संसारके प्राणियोंको मौतका कष्ट देनेवाले सूर्यपुत्र यमको स्वयं ही मृत्युसे संयुक्त कर दूँगा' ॥ २५½॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मुनिं तमभिवाद्य च ॥ २६ ॥
प्रययौ दक्षिणामाशां प्रविष्टः सह मन्त्रिभिः ।

ऐसा कहकर दशग्रीवने मुनिको प्रणाम किया और मन्त्रियोंके साथ वह दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया ॥२६½॥

नारदस्तु महातेजा मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ २७ ॥
चिन्तयामास विप्रेन्द्रो विधूम इव पावकः ।

उसके चले जानेपर धूमरहित अग्निके समान महातेजस्वी विप्रवर नारदजी दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो इस प्रकार विचार करने लगे— ॥२७½॥

येन लोकास्त्रयः सेन्द्राः क्लिश्यन्ते सचराचराः ॥ २८ ॥
क्षीणे चायुषि धर्मेण स कालो जेष्यते कथम् ।

'आयु क्षीण होनेपर जिनके द्वारा धर्मपूर्वक इन्द्रसहित तीनों लोकोंके चराचर प्राणी क्लेशमें डाले जाते—दण्डित होते हैं, वे कालस्वरूप यमराज इस रावणके द्वारा कैसे जीते जायँगे ? ॥२८½॥

स्वदत्तकृतसाक्षी यो द्वितीय इव पावकः ॥ २९ ॥
लब्धसंज्ञा विचेष्टन्ते लोका यस्य महात्मनः ।
यस्य नित्यं त्रयो लोका विद्रवन्ति भयार्दिताः ॥ ३० ॥
तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ।

'जो जीवोंके दान और कर्मके साक्षी हैं, जिनका तेज द्वितीय अग्निके समान है, जिन महात्मासे चेतना पाकर सम्पूर्ण जीव नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं, जिनके भयसे पीड़ित हो तीनों लोकोंके प्राणी उनसे दूर भागते हैं, उन्हींके पास यह राक्षसराज स्वयं ही कैसे जायगा ? ॥२९-३०½॥

यो विधाता च धाता च सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥ ३१ ॥
त्रैलोक्यं विजितं येन तं कथं विजयिष्यते ।
अपरं किं तु कृत्वैवं विधानं संविधास्यति ॥ ३२ ॥

'जो त्रिलोकीको धारण-पोषण करनेवाले तथा पुण्य और पापके फल देनेवाले हैं और जिन्होंने तीनों लोकोंपर विजय पायी है, उन्हीं कालदेवको यह राक्षस कैसे जीतेगा ? काल ही सबका साधन है। यह राक्षस कालके अतिरिक्त दूसरे किस साधनका सम्पादन करके उस कालपर विजय प्राप्त करेगा ? ॥ ३१-३२ ॥

कौतूहलं समुत्पन्नो यास्यामि यमसादनम् ।
विमर्दं द्रष्टुमनयोर्यमराक्षसयोः स्वयम् ॥ ३३ ॥

'अब तो मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया है, अतः इन यमराज और राक्षसराजका युद्ध देखनेके लिये मैं स्वयं भी यमलोकको जाऊँगा' ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

रावणका यमलोकपर आक्रमण और उसके द्वारा यमराजके सैनिकोंका संहार

एवं संचिन्त्य विप्रेन्द्रो जगाम लघुविक्रमः।
आख्यातुं तद् यथावृत्तं यमस्य सदनं प्रति॥ १॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) ऐसा विचारकर शीघ्र चलनेवाले विप्रवर नारदजी रावणके आक्रमणका समाचार बतानेके लिये यमलोकमें गये॥ १॥

अपश्यत् स यमं तत्र देवमग्निपुरस्कृतम्।
विधानमनुतिष्ठन्तं प्राणिनो यस्य यादृशम्॥ २॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, यमदेवता अग्निको साक्षीके रूपमें सामने रखकर बैठे हैं और जिस प्राणीका जैसा कर्म है, उसीके अनुसार फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं॥ २॥

स तु दृष्ट्वा यमः प्राप्तं महर्षिं तत्र नारदम्।
अब्रवीत् सुखामासीनमर्घ्यमावेद्य धर्मतः॥ ३॥

महर्षि नारदको वहाँ आया देख यमराजने आतिथ्य-धर्मके अनुसार उनके लिये अर्घ्य आदि निवेदन करके कहा—॥ ३॥

कच्चित् क्षेमं नु देवर्षे कच्चिद् धर्मो न नश्यति।
किमागमनकृत्यं ते देवगन्धर्वसेवित॥ ४॥

'देवताओं और गन्धर्वोंसे सेवित देवर्षे! कुशल तो है न? धर्मका नाश तो नहीं हो रहा है? आज यहाँ आपके शुभागमनका क्या उद्देश्य है?'॥ ४॥

अब्रवीत् तु तदा वाक्यं नारदो भगवानृषिः।
श्रूयतामभिधास्यामि विधानं च विधीयताम्॥ ५॥
एष नाम्ना दशग्रीवः पितृराज निशाचरः।
उपयाति वशं नेतुं विक्रमैस्त्वां सुदुर्जयम्॥ ६॥

तब भगवान् नारद मुनि बोले—'पितृराज! सुनिये—मैं एक आवश्यक बात बता रहा हूँ, आप सुनकर उसके प्रतीकारका भी कोई उपाय कर लें। यद्यपि आपको जीतना अत्यन्त कठिन है, तथापि यह दशग्रीव नामक निशाचर अपने पराक्रमोंद्वारा आपको वशमें करनेके लिये यहाँ आ रहा है॥ ५-६॥

एतेन कारणेनाहं त्वरितो ह्यागतः प्रभो।
दण्डप्रहरणस्याद्य तव किं नु भविष्यति॥ ७॥

'प्रभो! इसी कारणसे मैं तुरंत यहाँ आया हूँ कि आपको इस सङ्कटकी सूचना दे दूँ, परंतु आप तो कालदण्डरूपी आयुधको धारण करनेवाले हैं, आपको उस राक्षसके आक्रमणसे क्या हानि होगी?'॥ ७॥

एतस्मिन्नन्तरे दूरादंशुमन्तमिवोदितम्।
ददृशुर्दीप्तमायान्तं विमानं तस्य रक्षसः॥ ८॥

इस प्रकारकी बातें हो ही रही थीं कि उस राक्षसका उदित हुए सूर्यके समान तेजस्वी विमान दूरसे आता दिखायी दिया॥ ८॥

तं देशं प्रभया तस्य पुष्पकस्य महाबलः।
कृत्वा वितिमिरं सर्वं समीपमभ्यवर्तत॥ ९॥

महाबली रावण पुष्पककी प्रभासे उस समस्त प्रदेशको अन्धकारशून्य करके अत्यन्त निकट आ गया॥ ९॥

सोऽपश्यत् स महाबाहुर्दशग्रीवस्ततस्ततः।
प्राणिनः सुकृतं चैव भुञ्जानांश्चैव दुष्कृतम्॥ १०॥

महाबाहु दशग्रीवने यमलोकमें आकर देखा कि यहाँ बहुत-से प्राणी अपने-अपने पुण्य तथा पापका फल भोग रहे हैं॥ १०॥

अपश्यत् सैनिकांश्चास्य यमस्यानुचरैः सह।
यमस्य पुरुषैरुग्रैर्घोररूपैर्भयानकैः॥ ११॥
ददर्श वध्यमानांश्च क्लिश्यमानांश्च देहिनः।
क्रोशतश्च महानादं तीव्रनिष्टनतत्परान्॥ १२॥

उसने यमराजके सेवकोंके साथ उनके सैनिकोंको भी देखा। उसकी दृष्टिमें यमयातनाका दृश्य भी आया। घोर रूपधारी उग्र प्रकृतिवाले भयानक यमदूत कितने ही प्राणियोंको मारते और क्लेश पहुँचाते थे, जिससे वे बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे॥ ११-१२॥

कृमिभिर्भक्ष्यमाणांश्च सारमेयैश्च दारुणैः।
श्रोत्रायासकरा वाचो वदतश्च भयावहाः॥ १३॥

किन्हींको कीड़े खा रहे थे और कितनोंको भयङ्कर कुत्ते नोच रहे थे। वे सब-के-सब दुःखी हो-होकर कानोंको पीड़ा देनेवाला भयानक चीत्कार करते थे॥ १३॥

संतार्यमाणान् वैतरणीं बहुशः शोणितोदकाम्।
बालुकासु च तप्तासु तप्यमानान् मुहुर्मुहुः॥ १४॥

किन्हींको बारम्बार रक्तसे भरी हुई वैतरणी नदी पार करनेके लिये विवश किया जाता था और कितनोंको तपायी हुई बालुकाओंपर बार-बार चलाकर संतप्त किया जाता था॥ १४॥

असिपत्रवने चैव भिद्यमानानधार्मिकान्।
रौरवे क्षारनद्यां च क्षुरधारासु चैव हि॥ १५॥
पानीयं याचमानांश्च तृषितान् क्षुधितानपि।
शवभूतान् कृशान् दीनान् विवर्णान् मुक्तमूर्धजान्॥ १६॥
मलपङ्कधरान् दीनान् रुक्षांश्च परिधावतः।
ददर्श रावणो मार्गे शतशोऽथ सहस्रशः॥ १७॥

कुछ पापी असिपत्र-वनमें, जिसके पत्ते तलवारकी धारके समान तीखे थे, विदीर्ण किये जा रहे थे। किन्हींको रौरव नरकमें डाला जाता था। कितनोंको खारे जलसे भरी हुई नदियोंमें डुबोया जाता था और बहुतोंको छुरोंकी धारोंपर दौड़ाया जाता था। कई प्राणी भूख और प्याससे तड़प रहे थे और थोड़े-से जलकी याचना कर रहे थे। कोई शवके समान

कङ्काल, दीन, दुर्बल, उदास और खुले बालोंसे युक्त दिखायी देते थे। कितने ही प्राणी अपने अङ्गोंमें मैल और कीचड़ लगाये दयनीय तथा रूखे शरीरसे चारों ओर भाग रहे थे। इस तरहके सैकड़ों और हजारों जीवोंको राक्षसने मार्गमें यातना भोगते देखा ॥ १६—१७ ॥

कांश्चिच्च गृहमुख्येषु गीतवादित्रनिःस्वनैः।
प्रमोदमानानद्राक्षीद् रावणः सुकृतैः स्वकैः ॥ १८ ॥

दूसरी ओर रावणने देखा कुछ पुण्यात्मा जीव अपने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे अच्छे-अच्छे घरोंमें रहकर संगीत और वाद्योंकी मनोहर ध्वनिसे आनन्दित हो रहे हैं ॥ १८ ॥

गोरसं गोप्रदातारो ह्यन्नं चैवान्नदायिनः।
गृहांश्च गृहदातारः स्वकर्मफलमश्नतः ॥ १९ ॥

गोदान करनेवाले गोरसको, अन्न देनेवाले अन्नको और गृह प्रदान करनेवाले लोग गृहको पाकर अपने सत्कर्मोंका फल भोग रहे हैं ॥ १९ ॥

सुवर्णमणिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलंकृतान्।
धार्मिकानपरांस्तत्र दीप्यमानान् स्वतेजसा ॥ २० ॥

दूसरे धर्मात्मा पुरुष वहाँ सुवर्ण, मणि और मुक्ताओंसे अलंकृत हो यौवनके मदसे मत्त रहनेवाली सुन्दरी स्त्रियोंके साथ अपनी अङ्गकान्तिसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २० ॥

ददर्श स महाबाहू रावणो राक्षसाधिपः।
ततस्तान् भिद्यमानांश्च कर्मभिर्दुष्कृतैः स्वकैः ॥ २१ ॥
रावणो मोचयामास विक्रमेण बलाद् बली।
प्राणिनो मोक्षितास्तेन दशग्रीवेण रक्षसा ॥ २२ ॥

महाबाहु राक्षसराज रावणने इन सबको देखा। देखकर बलवान् राक्षस दशग्रीवने अपने पाप-कर्मोंके कारण यातना भोगनेवाले प्राणियोंको पराक्रमद्वारा बलपूर्वक मुक्त कर दिया ॥ २१-२२ ॥

सुखमापुर्मुहूर्तं ते ह्यतर्कितमचिन्तितम्।
प्रेतेषु मुच्यमानेषु राक्षसेन महीयसा ॥ २३ ॥
प्रेतगोप्ताः समंक्रुद्धा राक्षसेन्द्रमभिद्रवन्।

इससे थोड़ी देरतक उन पापियोंको बड़ा सुख मिला, उसके मिलनेकी न तो उन्हें सम्भावना थी और न उसके विषयमें वे कुछ सोच ही सके थे। उस महान् राक्षसके द्वारा जब सभी प्रेत यातनासे मुक्त कर दिये गये, तब उन प्रेतोंकी रक्षा करनेवाले यमदूत अत्यन्त कुपित हो राक्षसराजपर टूट पड़े ॥ २३½ ॥

ततो हलहलाशब्दः सर्वदिग्भ्यः समुत्थितः ॥ २४ ॥
धर्मराजस्य योधानां शूराणां समुधावताम्।

फिर तो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओरसे धावा करनेवाले धर्मराजके शूरवीर योद्धाओंका महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥ २४½ ॥

ते प्रासैः परिघैः शूलैर्मुसलैः शक्तितोमरैः ॥ २५ ॥
पुष्पकं समधर्षन्त शूराः शतसहस्रशः।
तस्यासनानि प्रासादान् वेदिकास्तोरणानि च ॥ २६ ॥
पुष्पकस्य बभञ्जुस्ते शीघ्रं मधुकरा इव।

जैसे फूलपर झुंड-के-झुंड भौंरे जुट जाते हैं, उसी प्रकार पुष्पक विमानपर सैकड़ों, हजारों शूरवीर यमदूत चढ़ आये और प्रासों, परिघों, शूलों, मूसलों, शक्तियों तथा तोमरोंद्वारा उसे तहस-नहस करने लगे। उन्होंने पुष्पक विमानके आसन, प्रासाद, वेदी और फाटक शीघ्र ही तोड़ डाले ॥ २५-२६½ ॥

देवनिष्ठानभूतं तद् विमानं पुष्पकं मृधे ॥ २७ ॥
भज्यमानं तथैवासीदक्षयं ब्रह्मतेजसा।

देवताओंका अधिष्ठानभूत वह पुष्पक विमान उस युद्धमें तोड़ा जानेपर भी ब्रह्माजीके प्रभावसे ज्यों-का-त्यों हो जाता था; क्योंकि वह नष्ट होनेवाला नहीं था ॥ २७½ ॥

असंख्या सुमहत्यासीत् तस्य सेना महात्मनः ॥ २८ ॥
शूराणामग्रयातॄणां सहस्राणि शतानि च।

महामना यमकी विशाल सेना असंख्य थी। उसमें सैकड़ों-हजारों शूरवीर आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले थे ॥ २८½ ॥

ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा ॥ २९ ॥
ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम्।
अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः ॥ ३० ॥

यमदूतोंके आक्रमण करनेपर रावणके वे महावीर मन्त्री तथा स्वयं राजा दशग्रीव भी वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा यमलोकके सैकड़ों प्रासादोंको उखाड़कर उनके द्वारा पूरी शक्ति लगाकर इच्छानुसार युद्ध करने लगे ॥ २९-३० ॥

ते तु शोणितदिग्धाङ्गाः सर्वशस्त्रसमाहताः।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधनं महत् ॥ ३१ ॥

राक्षसराजके मन्त्रियोंके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे। सम्पूर्ण शस्त्रोंके आघातसे वे घायल हो चुके थे। फिर भी उन्होंने बड़ा भारी युद्ध किया ॥ ३१ ॥

अन्योन्यं ते महाभागा जघ्नुः प्रहरणैर्भृशम्।
यमस्य च महाबाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥

महाबाहु श्रीराम! यमराज तथा रावणके वे महाभाग मन्त्री एक-दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा बड़े वेगसे आघात-प्रत्याघात करने लगे ॥ ३२ ॥

अमात्यांस्तांस्तु संत्यज्य यमयोधा महाबलाः।
तमेव चाभ्यधावन्त शूलवर्षैर्दशाननम् ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् यमराजके महाबली योद्धाओंने राक्षसके मन्त्रियोंको छोड़कर उस दशग्रीवके ही ऊपर शूलोंकी वर्षा करते हुए धावा किया ॥ ३३ ॥

ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः।
फुल्लाशोक इवाभाति पुष्पके राक्षसाधिपः ॥ ३४ ॥

रावणका सारा शरीर शस्त्रोंकी मारसे जर्जर हो गया था। उस

खूनसे लथपथ हो गया और पुष्पक विमानके ऊपर फूले हुए अशोक वृक्षके समान प्रतीत होने लगा ॥ ३४ ॥

स तु शूलगदाप्रासाञ्छक्तितोमरसायकान् ।
मुसलानि शिलावृक्षान् मुमोचास्त्रबलाद् बली ॥ ३५ ॥

तब बलवान् रावणने अपने अस्त्र-बलसे यमराजके सैनिकोंपर शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, पत्थर और वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ की ॥ ३५ ॥

तरूणां च शिलानां च शस्त्राणां चातिदारुणम् ।
यमसैन्येषु तद् वर्षं पपात धरणीतले ॥ ३६ ॥

वृक्षों, शिलाखण्डों और शस्त्रोंकी वह अत्यन्त भयंकर वृष्टि भूतलपर खड़े हुए यमराजके सैनिकोंपर पड़ने लगी ॥ ३६ ॥

तांस्तु सर्वान् विनिर्भिद्य तदस्त्रमपहत्य च ।
जघ्नुस्ते राक्षसं घोरमेकं शतसहस्रशः ॥ ३७ ॥

वे सैनिक भी सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो उसके सारे आयुधोंको छिन्न-भिन्न करके उसके द्वारा छोड़े हुए दिव्यास्त्रका भी निवारण कर एकमात्र उस भयंकर राक्षसको ही मारने लगे ॥ ३७ ॥

परिवार्य च तं सर्वे शैलं मेघोत्करा इव ।
भिन्दिपालैश्च शूलैश्च निरुच्छ्वासमपोथयन् ॥ ३८ ॥

जैसे बादलोंके समूह पर्वतपर सब ओरसे जलकी धाराएँ गिराते हैं, उसी प्रकार यमराजके समस्त सैनिकोंने रावणको चारों ओरसे घेरकर उसे भिन्दिपालों और शूलोंसे छेदना आरम्भ कर दिया। उसको दम लेनेकी भी फुरसत नहीं दी ॥ ३८ ॥

विमुक्तकवचः क्रुद्धः सिक्तः शोणितविस्रवैः ।
ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवतिष्ठत ॥ ३९ ॥

रावणका कवच कटकर गिर पड़ा। उसके शरीरसे रक्तकी धारा बहने लगी। वह उस रक्तसे नहा उठा और कुपित हो पुष्पक विमान छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥

ततः स कार्मुकी बाणी समरे चाभिवर्धत ।
लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन क्रुद्धस्तस्थौ यथान्तकः ॥ ४० ॥

वहाँ दो घड़ीके बाद उसने अपने-आपको सँभाला। फिर तो वह धनुष और बाण हाथमें ले बढ़े हुए उत्साहसे सम्पन्न हो समराङ्गणमें कुपित हुए यमराजके समान खड़ा हुआ ॥ ४० ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमस्त्रं संधाय कार्मुके ।
तिष्ठ तिष्ठेति तानुक्त्वा तद्चापं व्यपकर्षत ॥ ४१ ॥

उसने अपने धनुषपर पाशुपत नामक दिव्य अस्त्रका संधान किया और उन सैनिकोंसे 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए उस धनुषको खींचा ॥ ४१ ॥

आकर्णात् स विकृष्याथ चापमिन्द्रारिराहवे ।
मुमोच तं शरं क्रुद्धस्त्रिपुरे शंकरो यथा ॥ ४२ ॥

जैसे भगवान् शङ्करने त्रिपुरासुरपर पाशुपतास्त्रका प्रयोग किया था, उसी प्रकार उस इन्द्रद्रोही रावणने अपने धनुषको कानतक खींचकर वह बाण छोड़ दिया ॥ ४२ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीत् सधूमज्वालमण्डलम् ।
वनं दहिष्यतो घर्मे दावाग्नेरिव मूर्च्छतः ॥ ४३ ॥

उस समय उसके बाणका रूप धूम और ज्वालाओंके मण्डलसे युक्त हो ग्रीष्म ऋतुमें जंगलको जलानेके लिये चारों ओर फैलते हुए दावानलके समान प्रतीत होने लगा ॥ ४३ ॥

ज्वालामाली स तु शरः क्रव्यादानुगतो रणे ।
मुक्तो गुल्मान् द्रुमांश्चापि भस्म कृत्वा प्रधावति ॥ ४४ ॥

रणभूमिमें ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ वह बाण धनुषसे छूटते ही वृक्षों और झाड़ियोंको जलाता हुआ तीव्र गतिसे आगे बढ़ा और उसके पीछे-पीछे मांसाहारी जीव-जन्तु चलने लगे ॥ ४४ ॥

ते तस्य तेजसा दग्धाः सैन्या वैवस्वतस्य तु ।
रणे तस्मिन् निपतिता माहेन्द्रा इव केतवः ॥ ४५ ॥

उस युद्धस्थलमें यमराजके वे सारे सैनिक पाशुपतास्त्रके तेजसे दग्ध हो इन्द्रध्वजके समान नीचे गिर पड़े ॥ ४५ ॥

ततस्तु सचिवैः सार्धं राक्षसो भीमविक्रमः ।
ननाद सुमहानादं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर अपने मन्त्रियोंके साथ वह भयानक पराक्रमी राक्षस पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-सा बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके वधके लिये उठाये हुए कालदण्डको ब्रह्माजीके कहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोकसे प्रस्थान

स तस्य तु महानादं श्रुत्वा वैवस्वतः प्रभुः ।
शत्रुं विजयिनं मेने स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ १ ॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) रावणके उस महानादको सुनकर सूर्यपुत्र भगवान् यमने यह समझ लिया कि 'शत्रु विजयी हुआ और मेरी सेना मारी गयी' ॥ १ ॥

स हि योधान् हतान् मत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
अब्रवीत् त्वरितः सूतं रथो मे उपनीयताम् ॥ २ ॥

'मेरे योद्धा मारे गये'—यह जानकर यमराजके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वे उतावले होकर सारथिसे बोले—'मेरा रथ ले आओ' ॥ २ ॥

तस्य सूतस्तदा दिव्यमुपस्थाप्य महारथम् ।
स्थितः स च महातेजा अध्यारोहत तं रथम् ॥ ३ ॥

तब उनके सारथिने तत्काल एक दिव्य एवं विशाल रथ वहाँ उपस्थित कर दिया और वह सामने विनीतभावसे खड़ा हो गया। फिर वे महातेजस्वी यम देवता उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ ३ ॥

प्राससमुद्गरहस्तश्च मृत्युस्तस्याग्रतः स्थितः ।
येन संक्षिप्यते सर्वं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥ ४ ॥

उनके आगे प्रास और मुद्गर हाथमें लिये साक्षात् मृत्यु देवता खड़े थे, जो प्रवाहरूपसे सदा बने रहनेवाले इस समस्त त्रिभुवनका संहार करते हैं ॥ ४ ॥

कालदण्डस्तु पार्श्वस्थो मूर्तिमानस्य चाभवत् ।
यमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलदग्निवत् ॥ ५ ॥

उनके पार्श्वभागमें कालदण्ड मूर्तिमान् होकर खड़ा हुआ, जो उनका मुख्य एवं दिव्य आयुध है। वह अपने तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था ॥ ५ ॥

तस्य पार्श्वेषु निच्छिद्राः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकस्पर्शसंकाशः स्थितो मूर्तश्च मुद्गरः ॥ ६ ॥

उनके दोनों बगलमें छिद्ररहित कालपाश खड़े थे और जिसका स्पर्श अग्निके समान दुःसह है, वह मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर उपस्थित था ॥ ६ ॥

ततो लोकत्रयं क्षुब्धमकम्पत्त दिवौकसः ।
कालं दृष्ट्वा तथा क्रुद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ ७ ॥

समस्त लोकोंको भय देनेवाले साक्षात् कालको कुपित हुआ देख तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी। समस्त देवता काँप उठे ॥ ७ ॥

ततस्त्वचोदयत् सूतस्तानश्वान् रुचिरप्रभान् ।
प्रययौ भीमसंनादो यत्र रक्षःपतिः स्थितः ॥ ८ ॥

तदनन्तर सारथिने सुन्दर कान्तिवाले घोड़ोंको हाँका और वह रथ भयानक आवाज करता हुआ उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ राक्षसराज रावण खड़ा था ॥ ८ ॥

मुहूर्तेन यमं ते तु हया हरिहयोपमाः ।
प्रापयन् मनसस्तुल्या यत्र तत् प्रस्तुतं रणम् ॥ ९ ॥

इन्द्रके घोड़ोंके समान तेजस्वी और मनके समान शीघ्रगामी उन घोड़ोंने यमराजको क्षणभरमें उस स्थानपर पहुँचा दिया, जहाँ वह युद्ध चल रहा था ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा तथैव विकृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।
सचिवा राक्षसेन्द्रस्य सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १० ॥

मृत्युदेवताके साथ उस विकराल रथको आया देख राक्षसराजके सचिव सहसा वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ १० ॥

लघुसत्त्वतया ते हि नष्टसंज्ञा भयार्दिताः ।
नेह योद्धुं समर्थाः स्म इत्युक्त्वा प्रययुर्दिशः ॥ ११ ॥

उनकी शक्ति थोड़ी थी। इसलिये वे भयसे पीड़ित हो अपना होश-हवास खो बैठे और 'हम यहाँ युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं' ऐसा कहकर विभिन्न दिशाओंमें भाग गये ॥ ११ ॥

स तु तं तादृशं दृष्ट्वा रथं लोकभयावहम् ।
नाक्षुभ्यत दशग्रीवो न चापि भयमाविशत् ॥ १२ ॥

परंतु समस्त संसारको भयभीत करनेवाले वैसे विकराल रथको देखकर भी दशग्रीवके मनमें न तो क्षोभ हुआ और न भय ही ॥ १२ ॥

स तु रावणमासाद्य व्यसृजच्छक्तितोमरान् ।
यमो मर्माणि संक्रुद्धो रावणस्य न्यकृन्तत ॥ १३ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए यमराजने रावणके पास पहुँचकर शक्ति और तोमरोंका प्रहार किया तथा रावणके मर्मस्थानोंको छेद डाला ॥ १३ ॥

रावणस्तु ततः स्वस्थः शरवर्षं मुमोच ह ।
तस्मिन् वैवस्वतरथे तोयवर्षमिवाम्बुदः ॥ १४ ॥

तब रावणने भी सँभलकर यमराजके रथपर बाणोंकी झड़ी लगा दी, मानो मेघ जलकी वर्षा कर रहा हो ॥ १४ ॥

ततो महाशक्तिशतैः पात्यमानैर्महोरसि ।
नाशक्नोत् प्रतिकर्तुं स राक्षसः शल्यपीडितः ॥ १५ ॥

तदनन्तर उसकी विशाल छातीपर सैकड़ों महाशक्तियोंकी मार पड़ने लगी। वह राक्षस शल्योंके प्रहारसे इतना पीड़ित हो चुका था कि यमराजसे बदला लेनेमें समर्थ न हो सका ॥ १५ ॥

एवं नानाप्रहरणैर्यमेनामित्रकर्षिणा ।
सप्तरात्रं कृतः संख्ये विसंज्ञो विमुखो रिपुः ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुसूदन यमने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए रणभूमिमें लगातार सात रातोंतक युद्ध किया। इससे उनका शत्रु रावण अपनी सुध-बुध खोकर युद्धसे विमुख हो गया ॥ १६ ॥

ततोऽऽसीत् तुमुलं युद्धं यमराक्षसयोर्द्वयोः ।
जयमाकाङ्क्षतोर्वीर समरेष्वनिवर्तिनोः ॥ १७ ॥

वीर रघुनन्दन! वे दोनों योद्धा समरभूमिसे पीछे हटनेवाले नहीं थे और दोनों ही अपनी विजय चाहते थे; इसलिये उन यमराज और राक्षस दोनोंमें उस समय घोर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रणाजिरे ॥ १८ ॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण प्रजापतिको

आगे करके उस समराङ्गणमें एकत्र हुए ॥ १८ ॥

संवर्त इव लोकानां युध्यतोरभवत् तदा ।
राक्षसानां च मुख्यस्य प्रेतानामीश्वरस्य च ॥ १९ ॥

उस समय राक्षसोंके राजा रावण तथा प्रेतराज यमके युद्धपरायण होनेपर समस्त लोकोंके प्रलयका समय उपस्थित हुआ-सा जान पड़ता था ॥ १९ ॥

राक्षसेन्द्रोऽपि विस्फार्य चापमिन्द्राशनिप्रभम् ।
निरन्तरमिवाकाशं कुर्वन् बाणांस्ततोऽसृजत् ॥ २० ॥

राक्षसराज रावण भी इन्द्रकी अशनिके सदृश अपने धनुषको खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा, इससे आकाश ठसाठस भर गया—उसमें तिलभर भी खाली जगह नहीं रह गयी ॥ २० ॥

मृत्युं चतुर्भिर्विशिखैः सूतं सप्तभिरार्दयत् ।
यमं शतसहस्रेण शीघ्रं मर्मस्वताडयत् ॥ २१ ॥

उसने चार बाण मारकर मृत्युको और सात बाणोंसे यमके सारथिको भी पीड़ित कर दिया। फिर जल्दी-जल्दी लाख बाण मारकर यमराजके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

ततः क्रुद्धस्य वदनाद् यमस्य समजायत ।
ज्वालामाली सनिःश्वासः सधूमः कोपपावकः ॥ २२ ॥

तब यमराजके क्रोधकी सीमा न रही। उनके मुखसे वह रोष अग्नि बनकर प्रकट हुआ। वह आग ज्वाला-मालाओंसे मण्डित, श्वासवायुसे संयुक्त तथा धूमसे आच्छन्न दिखायी देती थी ॥ २२ ॥

तदाश्चर्यमथो दृष्ट्वा देवदानवसंनिधौ ।
प्रहर्षितौ सुसंरब्धौ मृत्युकालौ बभूवतुः ॥ २३ ॥

देवताओं तथा दानवोंके समीप यह आश्चर्यजनक घटना देखकर रोषावेशसे भरे हुए मृत्यु एवं कालको बड़ा हर्ष हुआ ॥ २३ ॥

ततो मृत्युः क्रुद्धतरो वैवस्वतमभाषत ।
मुञ्च मां समरे यावद्धन्मीमं पापराक्षसम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर मृत्युदेवने अत्यन्त कुपित होकर वैवस्वत यमसे कहा—'आप मुझे छोड़िये—आज्ञा दीजिये, मैं समराङ्गणमें इस पापी राक्षसको अभी मार डालता हूँ ॥ २४ ॥

नैषा रक्षो भवेदद्य मर्यादा हि निसर्गतः ।
हिरण्यकशिपुः श्रीमान् नमुचिः शम्बरस्तथा ॥ २५ ॥
निसन्दिर्धूमकेतुश्च बलिर्वैरोचनोऽपि च ।
शम्भुर्दैत्यो महाराजो वृत्रो बाणस्तथैव च ॥ २६ ॥
राजर्षयः शास्त्रविदो गन्धर्वाः समहोरगाः ।
ऋषयः पन्नगा दैत्या यक्षाश्च ह्यप्सरोगणाः ॥ २७ ॥
युगान्तपरिवर्ते च पृथिवी समहार्णवा ।
क्षयं नीता महाराज सपर्वतसरिद्द्रुमा ॥ २८ ॥
एते चान्ये च बहवो बलवन्तो दुरासदाः ।
विनिपन्ना मया दृष्टाः किमुतायं निशाचरः ॥ २९ ॥

'महाराज ! यह मेरी स्वभावसिद्ध मर्यादा है कि मुझसे भिड़कर यह राक्षस जीवित नहीं रह सकता। श्रीमान् हिरण्यकशिपु, नमुचि, शम्बर, निसन्दि, धूमकेतु, विरोचनकुमार बलि, शम्भुनामक दैत्य, महाराज वृत्र तथा बाणासुर, कितने ही शास्त्रवेत्ता राजर्षि, गन्धर्व, बड़े-बड़े नाग, ऋषि, सर्प, दैत्य, यक्ष, अप्सराओंके समुदाय, युगान्तकालमें समुद्रों, पर्वतों, सरिताओं और वृक्षोंसहित पृथ्वी—ये सब मेरे द्वारा क्षयको प्राप्त हुए हैं। ये तथा दूसरे बहुतेरे बलवान् एवं दुर्जय वीर भी मेरे द्वारा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं, फिर यह निशाचर किस गिनतीमें है ? ॥ २५—२९ ॥

मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम् ।
नहि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति ॥ ३० ॥

'धर्मज्ञ ! आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं इसे अवश्य मार डालूँगा। जिसे मैं देख लूँ, वह कोई बलवान् होनेपर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ३० ॥

बलं मम न खल्वेतन्मयादृष्टा निसर्गतः ।
स दृष्टो न मया काल मुहूर्तमपि जीवति ॥ ३१ ॥

'काल ! मेरी दृष्टि पड़नेपर वह रावण दो घड़ी भी जीवन धारण नहीं कर सकेगा। मेरे इस कथनका तात्पर्य केवल अपने बलको प्रकाशित करना मात्र नहीं है; अपितु यह स्वभावसिद्ध मर्यादा है' ॥ ३१ ॥

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
अब्रवीत् तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठेनं निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥

'मृत्युकी यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उससे कहा—'तुम ठहरो, मैं ही इसे मारे डालता हूँ' ॥ ३२ ॥

ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः ।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें करके सामर्थ्यशाली वैवस्वत यमने अपने अमोघ कालदण्डको हाथसे उठाया ॥ ३३ ॥

यस्य पार्श्वेषु निहिताः कालपाशाः प्रतिष्ठिताः ।
पावकाशनिसंकाशो मुद्गरो मूर्तिमान् स्थितः ॥ ३४ ॥

उस कालदण्डके पार्श्वभागोंमें कालपाश प्रतिष्ठित थे और वज्र एवं अग्नितुल्य तेजस्वी मुद्गर भी मूर्तिमान् होकर स्थित था ॥ ३४ ॥

दर्शनादेव यः प्राणान् प्राणिनामपि कर्षति ।
किं पुनः स्पृशमानस्य पात्यमानस्य वा पुनः ॥ ३५ ॥

वह कालदण्ड दृष्टिमें आनेमात्रसे प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण कर लेता था। फिर जिससे उसका स्पर्श हो जाय अथवा जिसके ऊपर उसकी मार पड़े, उस पुरुषके प्राणोंका संहार करना उसके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ३५ ॥

स ज्वालापरिवारस्तु निर्दहन्निव राक्षसम् ।
तेन स्पृष्टो बलवता महाप्रहरणोऽस्फुरत् ॥ ३६ ॥

ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह कालदण्ड उस राक्षसको दग्ध-सा कर देनेके लिये उद्यत था। बलवान् यमराजके हाथमें लिया हुआ वह महान् आयुध अपने तेजसे प्रकाशित हो उठा ॥ ३६ ॥

ततो विदुद्रुवुः सर्वे तस्मात् त्रस्ता रणाजिरे।
सुराश्च क्षुभिताः सर्वे दृष्ट्वा दण्डोद्यतं यमम् ॥ ३७ ॥

उसके उठते ही समराङ्गणमें खड़े हुए समस्त सैनिक भयभीत होकर भाग चले। कालदण्ड उठाये यमराजको देखकर समस्त देवता भी क्षुब्ध हो उठे ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रहर्तुकामे तु यमे दण्डेन रावणम्।
यमं पितामहः साक्षाद् दर्शयित्वेदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

यमराज उस दण्डसे रावणपर प्रहार करना ही चाहते थे कि साक्षात् पितामह ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दर्शन देकर इस प्रकार कहा— ॥ ३८ ॥

वैवस्वत महाबाहो न खल्वमितविक्रम।
न हन्तव्यस्त्वयैतेन दण्डेनैष निशाचरः ॥ ३९ ॥

'अमित पराक्रमी महाबाहु वैवस्वत! तुम इस कालदण्डके द्वारा निशाचर रावणका वध न करो ॥ ३९ ॥

वरः खलु मयैतस्मै दत्तस्त्रिदशपुङ्गव।
स त्वया नानृतः कार्यो यन्मया व्याहृतं वचः ॥ ४० ॥

'देवप्रवर! मैंने इसे देवताओंद्वारा न मारे जा सकनेका वर दिया है। मेरे मुँहसे जो बात निकल चुकी है, उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥

यो हि मामनृतं कुर्याद् देवो वा मानुषोऽपि वा।
त्रैलोक्यमनृतं तेन कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

'जो देवता अथवा मनुष्य मुझे असत्यवादी बना देगा, उसे समस्त त्रिलोकीको मिथ्याभाषी बनानेका दोष लगेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

क्रुद्धेन विप्रमुक्तोऽयं निर्विशेषं प्रियाप्रिये।
प्रजाः संहरते रौद्रो लोकत्रयभयावहः ॥ ४२ ॥

'यह कालदण्ड तीनों लोकोंके लिये भयंकर तथा रौद्र है। तुम्हारे द्वारा क्रोधपूर्वक छोड़ा जानेपर यह प्रिय और अप्रिय जनोंमें भेदभाव न रखता हुआ सामने पड़ी हुई समस्त प्रजाका संहार कर डालेगा ॥ ४२ ॥

अमोघो ह्येष सर्वेषां प्राणिनाममितप्रभः।
कालदण्डो मया सृष्टः पूर्वं मृत्युपुरस्कृतः ॥ ४३ ॥

'इस अमित तेजस्वी कालदण्डको भी पूर्वकालमें मैंने ही बनाया था। यह किसी भी प्राणीपर व्यर्थ नहीं होता है। इसके प्रहारसे सबकी मृत्यु हो जाती है ॥ ४३ ॥

तन्न खल्वेष ते सौम्य पात्यो रावणमूर्धनि।
नह्यस्मिन् पतिते कश्चिन्मुहूर्तमपि जीवति ॥ ४४ ॥

'अतः सौम्य! तुम इसे रावणके मस्तकपर न गिराओ। इसकी मार पड़नेपर कोई एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता ॥ ४४ ॥

यदि ह्यस्मिन् निपतिते न म्रियेतैष राक्षसः।
म्रियते वा दशग्रीवस्तदाप्युभयतोऽनृतम् ॥ ४५ ॥

'कालदण्ड पड़नेपर यदि यह राक्षस रावण न मरा तो अथवा मर गया तो—दोनों ही दशाओंमें मेरी बात असत्य होगी ॥ ४५ ॥

तन्निवर्तय लङ्केशाद् दण्डमेतं समुद्यतम्।
सत्यं च मां कुरुष्वाद्य लोकांस्त्वं यद्यवेक्षसे ॥ ४६ ॥

'इसलिये हाथमें उठाये हुए इस कालदण्डको तुम लङ्कापति रावणकी ओरसे हटा लो। यदि समस्त लोकोंपर तुम्हारी दृष्टि है तो आज रावणकी रक्षा करके मुझे सत्यवादी बनाओ' ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच यमस्तदा।
एष व्यावर्तितो दण्डः प्रभविष्णुर्हि नो भवान् ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा यमराजने उत्तर दिया—'यदि ऐसी बात है तो लीजिये मैंने इस दण्डको हटा लिया। आप हम सब लोगोंके प्रभु हैं (अतः आपकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है) ॥ ४७ ॥

किं त्विदानीं मया शक्यं कर्तुं रणगतेन हि।
न मया यद्ययं शक्यो हन्तुं वरपुरस्कृतः ॥ ४८ ॥

'परंतु वरदानसे युक्त होनेके कारण यदि मेरे द्वारा इस निशाचरका वध नहीं हो सकता तो इस समय इसके साथ युद्ध करके ही मैं क्या करूँगा? ॥ ४८ ॥

एष तस्मात् प्रणश्यामि दर्शनादस्य रक्षसः।
इत्युक्त्वा सरथः साश्वस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४९ ॥

'इसलिये अब मैं इसकी दृष्टिसे ओझल होता हूँ,' यों कहकर यमराज रथ और घोड़ोंसहित वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ४९ ॥

दशग्रीवस्तु तं जित्वा नाम विश्राव्य चात्मनः।
आरुह्य पुष्पकं भूयो निष्क्रान्तो यमसादनात् ॥ ५० ॥

इस प्रकार यमराजको जीतकर अपने नामकी घोषणा करके दशग्रीव रावण पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो यमलोकसे चला गया ॥ ५० ॥

स तु वैवस्वतो देवैः सह ब्रह्मपुरोगमैः।
जगाम त्रिदिवं हृष्टो नारदश्च महामुनिः ॥ ५१ ॥

तदनन्तर सूर्यपुत्र यमराज तथा महामुनि नारदजी ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें गये ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

रावणके द्वारा निवातकवचोंसे मैत्री, कालकेयोंका वध तथा वरुणपुत्रोंकी पराजय

ततो जित्वा दशग्रीवो यमं त्रिदशपुङ्गवम्।
रावणस्तु रणश्लाघी स्वसहायान् ददर्श ह॥ १॥

(अगस्त्यजी कहते हैं—रघुनन्दन!) देवेश्वर यमको पराजित करके युद्धका हौसला रखनेवाला दशग्रीव रावण अपने सहायकोंसे मिला॥ १॥

ततो रुधिरसिक्ताङ्गं प्रहारैर्जर्जरीकृतम्।
रावणं राक्षसा दृष्ट्वा विस्मयं समुपागमन्॥ २॥

उसके सारे अङ्ग रक्तसे नहा उठे थे और प्रहारोंसे जर्जर हो गये थे। इस अवस्थामें रावणको देखकर उन राक्षसोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ २॥

जयेन वर्धयित्वा च मारीचप्रमुखास्ततः।
पुष्पकं भेजिरे सर्वे सान्त्विता रावणेन तु॥ ३॥

'महाराजकी जय हो' ऐसा कहकर रावणकी अभ्युदय-कामना करके वे मारीच आदि सब राक्षस पुष्पकविमानपर बैठे। उस समय रावणने उन सबको सान्त्वना दी॥ ३॥

ततो रसातलं रक्षः प्रविष्टः पयसां निधिम्।
दैत्योरगगणाध्युष्टं वरुणेन सुरक्षितम्॥ ४॥

तदनन्तर वह राक्षस रसातलमें जानेकी इच्छासे दैत्यों और नागोंसे सेवित तथा वरुणके द्वारा सुरक्षित जलनिधि समुद्रमें प्रविष्ट हुआ॥ ४॥

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम्॥ ५॥

नागराज वासुकिद्वारा पालित भोगवती पुरीमें प्रवेश करके उसने नागोंको अपने वशमें कर लिया और वहाँसे हर्षपूर्वक मणिमयीपुरीको प्रस्थान किया॥ ५॥

निवातकवचास्तत्र दैत्या लब्धवरा वसन्।
राक्षसस्तान् समागम्य युद्धाय समुपाह्वयत्॥ ६॥

उस पुरीमें निवातकवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्माजीसे उत्तम वर प्राप्त थे। उस राक्षसने वहाँ जाकर उन सबको युद्धके लिये ललकारा॥ ६॥

ते तु सर्वे सुविक्रान्ता दैतेया बलशालिनः।
नानाप्रहरणास्तत्र प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः॥ ७॥

वे सब दैत्य बड़े पराक्रमी और बलशाली थे। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा युद्धके लिये सदा उत्साहित एवं उन्मत्त रहते थे॥ ७॥

शूलैस्त्रिशूलैः कुलिशैः पट्टिशासिपरश्वधैः।
अन्योन्यं बिभिदुः क्रुद्धा राक्षसा दानवास्तथा॥ ८॥

उनका राक्षसोंके साथ युद्ध आरम्भ हो गया। वे राक्षस और दानव कुपित हो एक-दूसरेको शूल, त्रिशूल, वज्र, पट्टिश, खड्ग और फरसोंसे घायल करने लगे॥ ८॥

तेषां तु युध्यमानानां साग्रः संवत्सरो गतः।
न चान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा॥ ९॥

उनके युद्ध करते हुए एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया; किंतु उनमेंसे किसी भी पक्षकी विजय या पराजय नहीं हुई॥ ९॥

ततः पितामहस्तत्र त्रैलोक्यगतिरव्ययः।
आजगाम द्रुतं देवो विमानवरमास्थितः॥ १०॥

तब त्रिभुवनके आश्रयभूत अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्मा एक उत्तम विमानपर बैठकर वहाँ शीघ्र आये॥ १०॥

निवातकवचानां तु निवार्य रणकर्म तत्।
वृद्धः पितामहो वाक्यमुवाच विदितार्थवत्॥ ११॥

बूढ़े पितामहने निवातकवचोंके उस युद्ध-कर्मको रोक दिया और उनसे स्पष्ट शब्दोंमें यह बात कही—॥ ११॥

नह्ययं रावणो युद्धे शक्यो जेतुं सुरासुरैः।
न भवन्तः क्षयं नेतुमपि सामरदानवैः॥ १२॥

'दानवो! समस्त देवता और असुर मिलकर भी युद्धमें इस रावणको परास्त नहीं कर सकते। इसी तरह समस्त देवता और दानव एक साथ आक्रमण करें तो भी वे तुम लोगोंका संहार नहीं कर सकते॥ १२॥

राक्षसस्य सखित्वं च भवद्भिः सह रोचते।
अविभक्ताश्च सर्वार्थाः सुहृदां नात्र संशयः॥ १३॥

'(तुम दोनोंमें वरदानजनित शक्ति एक-सी है) इसलिये मुझे तो यह अच्छा लगता है कि तुमलोगोंके साथ इस राक्षसकी मैत्री हो जाय; क्योंकि सुहृदोंके सभी अर्थ (भोग्य-पदार्थ) एक-दूसरेके लिये समान होते हैं—पृथक्-पृथक् बँटे नहीं रहते हैं। निःसंदेह ऐसी ही बात है'॥ १३॥

ततोऽग्निसाक्षिकं सख्यं कृतवांस्तत्र रावणः।
निवातकवचैः सार्धं प्रीतिमानभवत् तदा॥ १४॥

तब वहाँ रावणने अग्निको साक्षी बनाकर निवातकवचोंके साथ मित्रता कर ली। इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १४॥

अर्चितस्तैर्यथान्यायं संवत्सरमथोषितः।
स्वपुरान्निर्विशेषं च प्रियं प्राप्तो दशाननः॥ १५॥

फिर निवातकवचोंसे उचित आदर पाकर वह एक वर्षतक वहीं टिका रहा। उस स्थानपर दशाननको अपने नगरके समान ही प्रिय भोग प्राप्त हुए॥ १५॥

तत्रोपधार्य मायानां शतमेकं समाप्तवान्।
सलिलेन्द्रपुरान्वेषी भ्रमति स्म रसातलम्॥ १६॥

उसने निवातकवचोंसे सौ प्रकारकी मायाओंका ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद वह वरुणके नगरका पता लगाता हुआ रसातलमें सब ओर घूमने लगा॥ १६॥

ततोऽश्मनगरं नाम कालकेयैरधिष्ठितम्।
गत्वा तु कालकेयांश्च हत्वा तत्र बलोत्कटान्॥ १७॥
शूर्पणख्याश्च भर्तारमसिना प्राच्छिनत् तदा।
श्यालं च बलवन्तं च विद्युज्जिह्वं बलोत्कटम्॥ १८॥
जिह्वया संलिहन्तं च राक्षसं समरे तदा।

घूमते-घूमते वह अश्मनामक नगरमें जा पहुँचा, जहाँ कालकेय नामक दानव निवास करते थे। कालकेय बड़े बलवान् थे। रावणने वहाँ उन सबका संहार करके शूर्पणखाके पति उत्कट बलशाली अपने बहनोई महाबली विद्युज्जिह्वको, जो उस राक्षसको समराङ्गणमें चाट जाना चाहता था, तलवारसे काट डाला॥ १७-१८½॥

तं विजित्य मुहूर्तेन जघ्ने दैत्यांश्चतुःशतम्॥ १९॥
ततः पाण्डुरमेघाभं कैलासमिव भास्वरम्।
वरुणस्यालयं दिव्यमपश्यद् राक्षसाधिपः॥ २०॥

उसे परास्त करके रावणने दो ही घड़ीमें चार सौ दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया। तत्पश्चात् उस राक्षसराजने वरुणका दिव्य भवन देखा, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल और कैलास पर्वतके समान प्रकाशमान था॥ १९-२०॥

क्षरन्तीं च पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम्।
यस्याः पयोऽभिनिष्यन्दात् क्षीरोदो नाम सागरः॥ २१॥

वहीं सुरभि नामकी गौ भी खड़ी थी, जिसके थनोंसे दूध झर रहा था। कहते हैं, सुरभिके ही दूधकी धारासे क्षीरसागर भरा हुआ है॥ २१॥

ददर्श रावणस्तत्र गोवृषेन्द्रवरारणिम्।
यस्माच्चन्द्रः प्रभवति शीतरश्मिर्निशाकरः॥ २२॥

रावणने महादेवजीके वाहनभूत महावृषभकी जननी सुरभिदेवीका दर्शन किया, जिससे शीतल किरणोंवाले निशाकर चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ है (सुरभिसे क्षीरसमुद्र और क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाका आविर्भाव हुआ है)॥ २२॥

यं समाश्रित्य जीवन्ति फेनपाः परमर्षयः।
अमृतं यत्र चोत्पन्नं स्वधा च स्वधभोजिनाम्॥ २३॥

उन्हीं चन्द्रदेवके उत्पत्तिस्थान क्षीरसमुद्रका आश्रय लेकर फेन पीनेवाले महर्षि जीवन धारण करते हैं। उस क्षीर-सागरसे ही सुधा तथा स्वधाभोजी पितरोंकी स्वधा प्रकट हुई है॥ २३॥

यां ब्रुवन्ति नरा लोके सुरभिं नाम नामतः।
प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा रावणः परमाद्भुताम्।
प्रविवेश महाघोरं गुप्तं बहुविधैर्बलैः॥ २४॥

लोकमें जिनको सुरभि नामसे पुकारा जाता है, उन परम अद्भुत गोमाताकी परिक्रमा करके रावणने नाना प्रकारकी सेनाओंसे सुरक्षित महाभयंकर वरुणालयमें प्रवेश किया॥ २४॥

ततो धाराशताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तदा।
नित्यप्रहृष्टं ददृशे वरुणस्य गृहोत्तमम्॥ २५॥

वहाँ प्रवेश करके उसने वरुणके उत्तम भवनको देखा, जो सदा ही आनन्दमय उत्सवसे परिपूर्ण, अनेक जलधाराओं (फौवारों) से व्याप्त तथा शरत्कालके बादलोंके समान उज्ज्वल था॥ २५॥

ततो हत्वा बलाध्यक्षान् समरे तैश्च ताडितः।
अब्रवीच्च ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेद्यताम्॥ २६॥

तदनन्तर वरुणके सेनापतियोंने समरभूमिमें रावणपर प्रहार किया। फिर रावणने भी उन सबको घायल करके वहाँके योद्धाओंसे कहा—'तुमलोग राजा वरुणसे शीघ्र जाकर मेरी यह बात कहो—॥ २६॥

युद्धार्थी रावणः प्राप्तस्तस्य युद्धं प्रदीयताम्।
यद वा न भयं तेऽस्ति निर्जितोऽस्मीति साञ्जलिः॥ २७॥

'राजन्! राक्षसराज रावण युद्धके लिये आया है, आप चलकर उससे युद्ध कीजिये अथवा हाथ जोड़कर अपनी पराजय स्वीकार कीजिये। फिर आपको कोई भय नहीं रहेगा'॥ २७॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धा वरुणस्य महात्मनः।
पुत्राः पौत्राश्च निष्क्रामन् गौश्च पुष्कर एव च॥ २८॥

इसी बीचमें सूचना पाकर महात्मा वरुणके पुत्र और पौत्र क्रोधसे भरे हुए निकले। उनके साथ 'गौ' और 'पुष्कर' नामक सेनाध्यक्ष भी थे॥ २८॥

ते तु तत्र गुणोपेता बलैः परिवृताः स्वकैः।
युक्त्वा रथान् कामगमानुद्यद्भास्करवर्चसः॥ २९॥

वे सब-के-सब सर्वगुणसम्पन्न तथा उगते हुए सूर्यके तुल्य तेजस्वी थे। इच्छानुसार चलनेवाले रथोंपर आरूढ़ हो अपनी सेनाओंसे घिरकर वे वहाँ युद्धस्थलमें आये॥ २९॥

ततो युद्धं समभवद् दारुणं रोमहर्षणम्।
सलिलेन्द्रस्य पुत्राणां रावणस्य च धीमतः॥ ३०॥

फिर तो वरुणके पुत्रों और बुद्धिमान् रावणमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ ३०॥

अमात्यैश्च महावीर्यैर्दशग्रीवस्य रक्षसः।
वारुणं तद् बलं सर्वं क्षणेन विनिपातितम्॥ ३१॥

राक्षस दशग्रीवके महापराक्रमी मन्त्रियोंने एक ही क्षणमें वरुणकी सारी सेनाको मार गिराया॥ ३१॥

समीक्ष्य स्वबलं संख्ये वरुणस्य सुतास्तदा।
अर्दिताः शरजालेन निवृत्ता रणकर्मणः॥ ३२॥

युद्धमें अपनी सेनाकी यह अवस्था देख वरुणके पुत्र उस समय बाण-समूहोंसे पीड़ित होनेके कारण कुछ देरके लिये युद्ध-कर्मसे हट गये॥ ३२॥

महीतलगतास्ते तु रावणं दृश्य पुष्पके।
आकाशमाशु विविशुः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः॥ ३३॥

भूतलपर स्थित होकर उन्होंने जब रावणको पुष्पक विमानपर बैठा देखा, तब वे भी शीघ्रगामी रथोंद्वारा तुरंत ही आकाशमें जा पहुँचे ॥ ३३ ॥

महदासीत् ततस्तेषां तुल्यं स्थानमवाप्य तत्।
आकाशयुद्धं तुमुलं देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥

अब बराबरका स्थान मिल जानेसे रावणके साथ उनका भारी युद्ध छिड़ गया। उनका वह आकाश-युद्ध देव-दानव-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ३४ ॥

ततस्ते रावणं युद्धे शरैः पावकसंनिभैः।
विमुखीकृत्य संहृष्टा विनेदुर्विविधान् रवान् ॥ ३५ ॥

उन वरुण-पुत्रोंने अपने अग्नितुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें रावणको विमुख करके बड़े हर्षके साथ नाना प्रकारके स्वरोंमें महान् सिंहनाद किया ॥ ३५ ॥

ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीक्ष्य धर्षितम्।
त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युद्धाकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥ ३६ ॥

राजा रावणको तिरस्कृत हुआ देख महोदरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने मृत्युका भय छोड़कर युद्धकी इच्छासे वरुणपुत्रोंकी ओर देखा ॥ ३६ ॥

तेन ते वारुणा युद्धे कामगाः पवनोपमाः।
महोदरेण गदया हयास्ते प्रययुः क्षितिम् ॥ ३७ ॥

वरुणके घोड़े युद्धमें हवासे बातें करनेवाले थे और स्वामीकी इच्छाके अनुसार चलते थे। महोदरने उनपर गदासे आघात किया। गदाकी चोट खाकर वे घोड़े धराशायी हो गये ॥ ३७ ॥

तेषां वरुणसूनूनां हत्वा योधान् हयांश्च तान्।
मुमोचाशु महानादं विरथान् प्रेक्ष्य तान् स्थितान् ॥ ३८ ॥

वरुण-पुत्रोंके योद्धाओं और घोड़ोंको मारकर उन्हें रथहीन हुआ देख महोदर तुरन्त ही जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ३८ ॥

ते तु तेषां रथाः साश्वाः सह सारथिभिर्वरैः।
महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥ ३९ ॥

महोदरकी गदाके आघातसे वरुण-पुत्रोंके वे रथ घोड़ों और श्रेष्ठ सारथियोंसहित चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

ते तु त्यक्त्वा रथान् पुत्रा वरुणस्य महात्मनः।
आकाशे विष्ठिताः शूराः स्वप्रभावान्न विव्यथुः ॥ ४० ॥

महात्मा वरुणके वे शूरवीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर अपने ही प्रभावसे आकाशमें खड़े हो गये। उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥ ४० ॥

धनूंषि कृत्वा सज्यानि विनिर्भिद्य महोदरम्।
रावणं समरे क्रुद्धाः सहिताः समवारयन् ॥ ४१ ॥

उन्होंने धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और महोदरको क्षत-विक्षत करके एक साथ कुपित हो रावणको घेर लिया ॥ ४१ ॥

सायकैश्चापविभ्रष्टैर्वज्रकल्पैः सुदारुणैः।
दारयन्ति स्म संक्रुद्धा मेघा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥

फिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंके समान धनुषसे छूटे हुए वज्र-तुल्य भयंकर सायकोंद्वारा रावणको विदीर्ण करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः कालाग्निरिव मूर्च्छितः।
शरवर्षं महाघोरं तेषां मर्मस्वपातयत् ॥ ४३ ॥

यह देख दशग्रीव प्रलयकालकी अग्निके समान रोषसे प्रज्वलित हो उठा और उन वरुण-पुत्रोंके मर्मस्थानोंपर महाघोर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४३ ॥

मुसलानि विचित्राणि ततो भल्लशतानि च।
पट्टिशांश्चैव शक्तीश्च शतघ्नीर्महतीरपि ॥ ४४ ॥
पातयामास दुर्धर्षस्तेषामुपरि विष्ठितः।

पुष्पक विमानपर बैठे हुए उस दुर्धर्ष वीरने उन सबके ऊपर विचित्र मूसलों, सैकड़ों भल्लों, पट्टिशों, शक्तियों और बड़ी-बड़ी शतघ्नियोंका प्रहार किया ॥ ४४½ ॥

अपविद्धास्तु ते वीरा विनिष्पेतुः पदातयः ॥ ४५ ॥
ततस्तेनैव सहसा सीदन्ति स्म पदातिनः।
महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः षष्टिहायनाः ॥ ४६ ॥

उन अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल हो वे पैदल वीर पुनः युद्धके लिये आगे बढ़े; परंतु पैदल होनेके कारण रावणकी उस अस्त्र-वर्षासे ही सहसा संकटमें पड़कर बड़ी भारी कीचड़में फँसे हुए साठ वर्षके हाथीके समान कष्ट पाने लगे ॥ ४५-४६ ॥

सीदमानान् सुतान् दृष्ट्वा विह्वलान् स महाबलः।
ननाद रावणो हर्षान्महानम्बुधरो यथा ॥ ४७ ॥

वरुणके पुत्रोंको दुःखी एवं व्याकुल देख महाबली रावण महान् मेघके समान बड़े हर्षसे गर्जना करने लगा ॥ ४७ ॥

ततो रक्षो महानादान् मुक्त्वा हन्ति स्म वारुणान्।
नानाप्रहरणोपेतैर्धारापातैरिवाम्बुदः ॥ ४८ ॥

जोर-जोरसे सिंहनाद करके वह निशाचर पुनः नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा वरुण-पुत्रोंको मारने लगा, मानो बादल अपनी धारावाहिक वृष्टिसे वृक्षोंको पीड़ित कर रहा हो ॥ ४८ ॥

ततस्ते विमुखाः सर्वे पतिता धरणीतले।
रणात् स्वपुरुषैः शीघ्रं गृहाण्येव प्रवेशिताः ॥ ४९ ॥

फिर तो वे सभी वरुण पुत्र युद्धसे विमुख हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तत्पश्चात् उनके सेवकोंने उन्हें रणभूमिसे हटाकर शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया ॥ ४९ ॥

तानब्रवीत् ततो रक्षो वरुणाय निवेद्यताम्।
रावणं त्वब्रवीन्मन्त्री प्रहासो नाम वारुणः ॥ ५० ॥

तदनन्तर उस राक्षसने वरुणके सेवकोंसे कहा—'अब वरुणसे जाकर कहो कि वे स्वयं युद्धके लिये आवें' तब

वरुणके मन्त्री प्रभासने रावणसे कहा— ॥ ५० ॥

गतः खलु महाराजो ब्रह्मलोकं जलेश्वरः ।
गान्धर्वं वरुणः श्रोतुं यं त्वमाह्वयसे युधि ॥ ५१ ॥

'राक्षसराज ! जिन्हें तुम युद्धके लिये बुला रहे हो, वे जलके स्वामी महाराज वरुण संगीत सुननेके लिये ब्रह्मलोकमें गये हुए हैं ॥ ५१ ॥

तत् किं तव यथा वीर परिश्रम्य गते नृपे ।
ये तु संनिहिता वीराः कुमारास्ते पराजिताः ॥ ५२ ॥

'वीर ! राजा वरुणके चले जानेपर यहाँ युद्धके लिये व्यर्थ परिश्रम करनेसे तुम्हें क्या लाभ ? उनके जो वीर पुत्र यहाँ मौजूद थे, वे तो तुमसे परास्त हो ही गये' ॥ ५२ ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ।
हर्षान्नादं विमुञ्चन् वै निष्क्रान्तो वरुणालयात् ॥ ५३ ॥

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण वहाँ अपने नामकी घोषणा करके बड़े हर्षसे सिंहनाद करता हुआ वरुणालयसे बाहर निकल गया ॥ ५३ ॥

आगतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्य सः ।
लङ्कामभिमुखो रक्षो नभस्तलगतो ययौ ॥ ५४ ॥

वह जिस मार्गसे आया था, उसीसे लौटकर आकाशमार्गसे लङ्काकी ओर चल दिया ॥ ५४ ॥*

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

रावणद्वारा अपहृत हुई देवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका विलाप एवं शाप, रावणका रोती हुई शूर्पणखाको आश्वासन देना और उसे खरके साथ दण्डकारण्यमें भेजना

निवर्तमानः संहृष्टो रावणः स दुरात्मवान् ।
जह्रे पथि नरेन्द्रर्षिदेवदानवकन्यकाः ॥ १ ॥

लौटते समय दुरात्मा रावण बड़े हर्षमें भरा था । उसने मार्गमें अनेकानेक नरेशों, ऋषियों, देवताओं और दानवोंकी कन्याओंका अपहरण किया ॥ १ ॥

दर्शनीयां हि यां रक्षः कन्यां स्त्रीं वाथ पश्यति ।
हत्वा बन्धुजनं तस्या विमाने तां रुरोध सः ॥ २ ॥

वह राक्षस जिस कन्या अथवा स्त्रीको दर्शनीय रूप-सौन्दर्यसे युक्त देखता, उसके रक्षक बन्धुजनोंका वध करके उसे विमानपर बिठाकर रोक लेता था ॥ २ ॥

एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।
यक्षदानवकन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार उसने नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, यक्षों और दानवोंकी भी बहुत-सी कन्याओंको हरकर विमानपर चढ़ा लिया ॥ ३ ॥

ता हि सर्वाः समं दुःखान्मुमुचुर्बाष्पजं जलम् ।
तुल्यमग्न्यर्चिषां तत्र शोकाग्निभयसम्भवम् ॥ ४ ॥

उन सबने एक साथ ही दुःखके कारण नेत्रोंसे आँसू बहाना आरम्भ किया । शोकाग्नि और भयसे प्रकट होनेवाले उनके आँसुओंकी एक-एक बूँद वहाँ आगकी चिनगारी-सी जान पड़ती थी ॥ ४ ॥

ताभिः सर्वानवद्याभिर्नदीभिरिव सागरः ।
आपूरितं विमानं तद् भयशोकाशिवाश्रुभिः ॥ ५ ॥

जैसे नदियाँ सागरको भरती हैं, उसी प्रकार उन समस्त सुन्दरियोंने भय और शोकसे उत्पन्न हुए अमङ्गलजनक अश्रुओंसे उस विमानको भर दिया ॥ ५ ॥

नागगन्धर्वकन्याश्च महर्षितनयाश्च याः ।
दैत्यदानवकन्याश्च विमाने शतशोऽस्रदन् ॥ ६ ॥

नागों, गन्धर्वों, महर्षियों, दैत्यों और दानवोंकी सैकड़ों कन्याएँ उस विमानपर रो रही थीं ॥ ६ ॥

दीर्घकेश्यः सुचार्वङ्ग्यः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
पीनस्तनतटा मध्ये वज्रवेदिसमप्रभाः ॥ ७ ॥
रथकूबरसंकाशैः श्रोणिदेशैर्मनोहराः ।
स्त्रियः सुराङ्गनाप्रख्या निष्टप्तकनकप्रभाः ॥ ८ ॥

उनके केश बड़े-बड़े थे । सभी अङ्ग सुन्दर एवं मनोहर थे । उनके मुखकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमाकी छविको लज्जित करती थी । उरोजोंके तटप्रान्त उभरे हुए थे । उनका मध्यभाग हीरेके चबूतरेके समान प्रकाशित होता था । नितम्ब-देश रथके कूबर-जैसे जान पड़ते थे और उनके कारण उनकी मनोहरता बढ़ रही थी । वे सभी स्त्रियाँ

* कुछ प्रतियोंमें तेईसवें सर्गके बाद पाँच प्रक्षिप्त सर्ग उपलब्ध होते हैं, जिनमें रावणकी दिग्विजय-यात्राका विस्तारपूर्वक वर्णन है । अनावश्यक विस्तारके भयसे यहाँ उनको नहीं लिया गया है ।

देवाङ्गनाओंके समान कान्तिमती और तपाये हुए सुवर्णके समान सुनहरी आभासे उद्भासित होती थीं ॥ ७-८ ॥

शोकदुःखभयत्रस्ता विह्वलाश्च सुमध्यमाः ।
तासां निःश्वासवातेन सर्वतः सम्प्रदीपितम् ॥ ९ ॥
अग्निहोत्रमिवाभाति संनिरुद्धाग्नि पुष्पकम् ।

सुन्दर मध्यभागवाली वे सभी सुन्दरियाँ शोक, दुःख और भयसे त्रस्त एवं विह्वल थीं। उनकी गरम-गरम निःश्वासवायुसे वह पुष्पक-विमान सब ओरसे प्रज्वलित-सा हो रहा था और जिसके भीतर अग्निकी स्थापना की गयी हो, उस अग्निहोत्रगृहके समान जान पड़ता था ॥ ९½ ॥

दशग्रीववशं प्राप्तास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥ १० ॥
दीनवक्त्रेक्षणाः श्यामा मृग्यः सिंहवशा इव ।

दशग्रीवके वशमें पड़ी हुई वे शोकाकुल अबलाएँ सिंहके पंजेमें पड़ी हुई हरिणियोंके समान दुःखी हो रही थीं। उनके मुख और नेत्रोंमें दीनता छा रही थी और उन सबकी अवस्था सोलह वर्षके लगभग थी ॥ १० ½ ॥

काचिच्चिन्तयती तत्र किं नु मां भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥
काचिद् दध्यौ सुदुःखार्ता अपि मां मारयेदयम् ।

कोई सोचती थी, क्या यह राक्षस मुझे खा जायगा ? कोई अत्यन्त दुःखसे आर्त हो इस चिन्तामें पड़ी थी कि क्या यह निशाचर मुझे मार डालेगा ? ॥ ११ ½ ॥

इति मातृः पितॄन् स्मृत्वा भर्तॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ १२ ॥
दुःखशोकसमाविष्टा विलेपुः सहिताः स्त्रियः ।

वे स्त्रियाँ माता, पिता, भाई तथा पतिको याद करके दुःखशोकमें डूब जातीं और एक साथ करुणाजनक विलाप करने लगती थीं ॥ १२ ½ ॥

कथं नु खलु मे पुत्रो भविष्यति मया विना ॥ १३ ॥
कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ।

'हाय ! मेरे बिना मेरा नन्हा-सा बेटा कैसे रहेगा। मेरी माँकी क्या दशा होगी और मेरे भाई कितने चिन्तित होंगे' ऐसा कहकर वे शोकके सागरमें डूब जाती थीं ॥ १३ ½ ॥

हा कथं नु करिष्यामि भर्तुस्तस्मादहं विना ॥ १४ ॥
मृत्यो प्रसादयामि त्वां नय मां दुःखभागिनीम् ।
किं नु तद् दुष्कृतं कर्म पुरा देहान्तरे कृतम् ॥ १५ ॥
एवं स्म दुःखिताः सर्वाः पतिताः शोकसागरे ।
न खल्विदानीं पश्यामो दुःखस्यास्यान्तमात्मनः ॥ १६ ॥

'हाय ! अपने उन पतिदेवसे बिछुड़कर मैं क्या करूँगी ? (कैसे रहूँगी) । हे मृत्युदेव ! मेरी प्रार्थना है कि तुम प्रसन्न हो जाओ और मुझ दुखियाको इस लोकसे उठा ले चलो। हाय ! पूर्व-जन्ममें दूसरे शरीरद्वारा हमने कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे हम सब-की-सब दुःखसे पीड़ित हो शोकके समुद्रमें गिर पड़ी हैं। निश्चय ही इस समय हमें अपने इस दुःखका अन्त होता नहीं दिखायी देता ॥ १४—१६ ॥

अहो धिङ्मानुषं लोकं नास्ति खल्वधमः परः ।
यद् दुर्बला बलवता भर्तारो रावणेन नः ॥ १७ ॥
सूर्येणोदयता काले नक्षत्राणीव नाशिताः ।

'अहो ! इस मनुष्यलोकको धिक्कार है ! इससे बढ़कर अधम दूसरा कोई लोक नहीं होगा; क्योंकि यहाँ इस बलवान् रावणने हमारे दुर्बल पतियोंको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे सूर्यदेव उदय होनेके साथ ही नक्षत्रोंको अदृश्य कर देते हैं ॥ १७ ½ ॥

अहो सुबलवद् रक्षो वधोपायेषु रज्यते ॥ १८ ॥
अहो दुर्वृत्तमास्थाय नात्मानं वै जुगुप्सते ।

'अहो ! यह अत्यन्त बलवान् राक्षस वधके उपायोंमें ही आसक्त रहता है। अहो ! यह पापी दुराचारके पथपर चलकर भी अपने-आपको धिक्कारता नहीं है ॥ १८ ½ ॥

सर्वथा सदृशस्तावद् विक्रमोऽस्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥
इदं त्वसदृशं कर्म परदाराभिमर्शनम् ।

'इस दुरात्माका पराक्रम इसकी तपस्याके सर्वथा अनुरूप है, परंतु यह परायी स्त्रियोंके साथ जो बलात्कार कर रहा है, यह दुष्कर्म इसके योग्य कदापि नहीं है ॥ १९ ½ ॥

यस्मादेष परक्यासु रमते राक्षसाधमः ॥ २० ॥
तस्माद् वै स्त्रीकृतेनैव वधं प्राप्स्यति दुर्मतिः ।

'यह नीच निशाचर परायी स्त्रियोंके साथ रमण करता है, इसलिये स्त्रीके कारण ही इस दुर्बुद्धि राक्षसका वध होगा' ॥ २० ॥

सतीभिर्वरनारीभिरेवं वाक्येऽभ्युदीरिते ॥ २१ ॥
नेदुर्दुन्दुभयः खस्थाः पुष्पवृष्टिः पपात च ।

उन श्रेष्ठ सती-साध्वी नारियोंने जब ऐसी बातें कह दीं, उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २१ ½ ॥

शप्तः स्त्रीभिः स तु समं हतौजा इव निष्प्रभः ॥ २२ ॥
पतिव्रताभिः साध्वीभिर्बभूव विमना इव ।

पतिव्रता साध्वी स्त्रियोंके इस तरह शाप देनेपर रावणकी शक्ति घट गयी, वह निस्तेज-सा हो गया और उसके मनमें उद्वेग-सा होने लगा ॥ २२ ½ ॥

एवं विलपितं तासां शृण्वन् राक्षसपुङ्गवः ॥ २३ ॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ।

इस प्रकार उनका विलाप सुनते हुए राक्षसराज रावणने निशाचरोंद्वारा सत्कृत हो लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३ ½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरा राक्षसी कामरूपिणी ॥ २४ ॥
सहसा पतिता भूमौ भगिनी रावणस्य सा ।

इसी समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली भयंकर राक्षसी शूर्पणखा, जो रावणकी बहिन थी, सहसा सामने आकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २४ ½ ॥

तां स्वसारं समुत्थाप्य रावणः परिसान्त्वयन् ॥ २५ ॥
अब्रवीत् किमिदं भद्रे वक्तुकामासि मां द्रुतम्।

रावणने अपनी उस बहिनको उठाकर सान्त्वना दी और पूछा—'भद्रे! तुम अभी मुझसे शीघ्रतापूर्वक कौन-सी बात कहना चाहती थी?' ॥२५½॥

सा बाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्।

शूर्पणखाके नेत्रोंमें आँसू भरे थे, उसकी आँखें रोते-रोते लाल हो गयी थीं। वह बोली—'राजन्! तुम बलवान् हो, इसीलिये न तुमने मुझे बलपूर्वक विधवा बना दिया है? ॥२६½॥

एते राजंस्त्वया वीर्याद् दैत्या विनिहता रणे ॥ २७ ॥
कालकेया इति ख्याताः सहस्राणि चतुर्दश।

'राक्षसराज! तुमने रणभूमिमें अपने बल-पराक्रमसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध कर दिया है ॥२७½॥

प्राणेभ्योऽपि गरीयान् मे तत्र भर्ता महाबलः ॥ २८ ॥
सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगन्धिना।

'तात! उन्हींमें मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर आदरणीय मेरे महाबली पति भी थे। तुमने उन्हें भी मार डाला। तुम नाममात्रके भाई हो। वास्तवमें मेरे शत्रु निकले! ॥२८½॥

त्वयास्मि निहता राजन् स्वयमेव हि बन्धुना ॥ २९ ॥
राजन् वैधव्यशब्दं च भोक्ष्यामि त्वत्कृतं ह्यहम्।

'राजन्! सगे भाई होकर भी तुमने स्वयं ही अपने हाथों मेरा (मेरे पतिदेवका) वध कर डाला। अब तुम्हारे कारण मैं 'वैधव्य' शब्दका उपभोग करूँगी—विधवा कहलाऊँगी ॥२९½॥

ननु नाम त्वया रक्ष्यो जामाता समरेष्वपि ॥ ३० ॥
स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे।

'भैया! तुम मेरे पिताके तुल्य हो। मेरे पति तुम्हारे दामाद थे, क्या तुम्हें युद्धमें अपने दामाद या बहनोईकी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये थी? तुमने स्वयं ही युद्धमें अपने दामादका वध किया है; क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं आती?' ॥३०½॥

एवमुक्तो दशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया ॥ ३१ ॥
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः।

रोती और कोसती हुई बहिनके ऐसा कहनेपर दशग्रीवने उसे सान्त्वना देकर समझाते हुए मधुर वाणीमें कहा— ॥३१½॥

अलं वत्से रुदित्वा ते न भेतव्यं च सर्वशः ॥ ३२ ॥
दानमानप्रसादैस्त्वां तोषयिष्यामि यत्नतः।

'बेटी! अब रोना व्यर्थ है, तुम्हें किसी तरह भयभीत नहीं होना चाहिये। मैं दान, मान और अनुग्रहद्वारा यत्नपूर्वक तुम्हें संतुष्ट करूँगा ॥३२½॥

युद्धप्रमत्तो व्याक्षिप्तो जयाकाङ्क्षी क्षिपञ्शरान् ॥ ३३ ॥
नाहमज्ञासिषं युध्यन् स्वान् परान् वापि संयुगे।
जामातरं न जाने स्म प्रहरन् युद्धदुर्मदः ॥ ३४ ॥

'मैं युद्धमें उन्मत्त हो गया था, मेरा चित्त ठिकाने नहीं था, मुझे केवल विजय पानेकी धुन थी, इसलिये लगातार बाण चलाता रहा। समराङ्गणमें जूझते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रह जाता था। मैं रणोन्मत्त होकर प्रहार कर रहा था, इसलिये 'दामाद' को पहचान न सका ॥ ३३-३४ ॥

तेनासौ निहतः संख्ये मया भर्ता तव स्वसः।
अस्मिन् काले तु तत् प्राप्तं तत् करिष्यामि ते हितम् ॥ ३५ ॥

'बहिन! यही कारण है जिससे युद्धमें तुम्हारे पति मेरे हाथसे मारे गये। अब इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसके अनुसार मैं सदा तुम्हारे हितका ही साधन करूँगा ॥ ३५ ॥

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः।
चतुर्दशानां भ्राता ते सहस्राणां भविष्यति ॥ ३६ ॥
प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः।

'तुम ऐश्वर्यशाली भाई खरके पास चलकर रहो। तुम्हारा भाई महाबली खर चौदह हजार राक्षसोंका अधिपति होगा। वह उन सबको जहाँ चाहेगा, भेजेगा और उन सबको अन्न, पान एवं वस्त्र देनेमें समर्थ होगा ॥३६½॥

तत्र मातृष्वसेयस्ते भ्राताय वै खरः प्रभुः ॥ ३७ ॥
भविष्यति तवादेशं सदा कुर्वन् निशाचरः।

'यह तुम्हारा मौसेरा भाई निशाचर खर सब कुछ करनेमें समर्थ है और आदेशका सदा पालन करता रहेगा ॥३७½॥

शीघ्रं गच्छत्वयं वीरो दण्डकान् परिरक्षितुम् ॥ ३८ ॥
दूषणोऽस्य बलाध्यक्षो भविष्यति महाबलः।

'यह वीर (मेरी आज्ञासे) शीघ्र ही दण्डकारण्यकी रक्षामें जानेवाला है; महाबली दूषण इसका सेनापति होगा ॥३८½॥

तत्र ते वचनं शूरः करिष्यति सदा खरः ॥ ३९ ॥
रक्षसां कामरूपाणां प्रभुरेष भविष्यति।

'वहाँ शूरवीर खर सदा तुम्हारी आज्ञाका पालन करेगा और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंका स्वामी होगा' ॥३९½॥

एवमुक्त्वा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेश ह ॥ ४० ॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां वीर्यशालिनाम्।
स तैः परिवृतः सर्वैः राक्षसैर्घोरदर्शनैः ॥ ४१ ॥

आगच्छत खरः शीघ्रं दण्डकानकुतोभयः।
स तत्र कारयामास राज्यं निहतकण्टकम्।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद् दण्डके वने॥ ४२॥

राक्षसोंकी सेनाको खरके साथ जानेकी आज्ञा दी। उन भयङ्कर राक्षसोंसे घिरा हुआ खर शीघ्र ही दण्डकारण्यमें आया और निर्भय होकर वहाँका अकण्टक राज्य भोगने लगा। उसके साथ शूर्पणखा भी वहाँ दण्डकवनमें रहने लगी॥ ४०—४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशः सर्गः

यज्ञोंद्वारा मेघनादकी सफलता, विभीषणका रावणको पर-स्त्री-हरणके दोष बताना, कुम्भीनसीको आश्वासन दे मधुको साथ ले रावणका देवलोकपर आक्रमण करना

स तु दत्त्वा दशग्रीवो बलं घोरं खरस्य तत्।
भगिनीं स समाश्वास्य हृष्टः स्वस्थतरोऽभवत्॥ १॥

खरको राक्षसोंकी भयङ्कर सेना देकर और बहिनको धीरज बँधाकर रावण बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थचित्त हो गया॥ १॥

ततो निकुम्भिला नाम लङ्कोपवनमुत्तमम्।
तद् राक्षसेन्द्रो बलवान् प्रविवेश सहानुगः॥ २॥

तदनन्तर बलवान् राक्षसराज रावण लङ्काके निकुम्भिला नामक उत्तम उपवनमें गया। उसके साथ बहुत-से सेवक भी थे॥ २॥

ततो यूपशताकीर्णं सौम्यचैत्योपशोभितम्।
ददर्श विष्ठितं यज्ञं श्रिया सम्प्रज्वलन्निव॥ ३॥

रावण अपनी शोभा एवं तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसने निकुम्भिलामें पहुँचकर देखा, एक यज्ञ हो रहा है, जो सैकड़ों यूपोंसे व्याप्त और सुन्दर देवालयोंसे सुशोभित है॥ ३॥

ततः कृष्णाजिनधरं कमण्डलुशिखाध्वजम्।
ददर्श स्वसुतं तत्र मेघनादं भयावहम्॥ ४॥

फिर वहाँ उसने अपने पुत्र मेघनादको देखा, जो काला मृगचर्म पहने हुए तथा कमण्डलु, शिखा और ध्वज धारण किये बड़ा भयङ्कर जान पड़ता था॥ ४॥

तं समासाद्य लङ्केशः परिष्वज्याथ बाहुभिः।
अब्रवीत् किमिदं वत्स वर्तसे ब्रूहि तत्त्वतः॥ ५॥

उसके पास पहुँचकर लङ्केश्वरने अपनी भुजाओंद्वारा उसका आलिङ्गन किया और पूछा—'बेटा! यह क्या कर रहे हो? ठीक-ठीक बताओ'॥ ५॥

उशना त्वब्रवीत् तत्र यज्ञसम्पत्समृद्धये।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं द्विजश्रेष्ठो महातपाः॥ ६॥

(मेघनाद यज्ञके नियमानुसार मौन रहा) उस समय पुरोहित महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने, जो यज्ञ-सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये वहाँ आये थे, राक्षसशिरोमणि रावणसे कहा—॥ ६॥

अहमाख्यामि ते राजञ्श्रूयतां सर्वमेव तत्।
यज्ञास्ते सप्त पुत्रेण प्राप्तास्ते बहुविस्तराः॥ ७॥

'राजन्! मैं सब बातें बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—आपके पुत्रने बड़े विस्तारके साथ सात यज्ञोंका अनुष्ठान किया है॥ ७॥

अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च यज्ञो बहुसुवर्णकः।
राजसूयस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा॥ ८॥
माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुम्भिः सुदुर्लभे।
वरांस्ते लब्धवान् पुत्रः साक्षात् पशुपतेरिह॥ ९॥

'अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव—ये छः यज्ञ पूर्ण करके जब इसने सातवाँ माहेश्वर यज्ञ, जिसका अनुष्ठान दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आरम्भ किया, तब आपके इस पुत्रको साक्षात् भगवान् पशुपतिसे बहुत-से वर प्राप्त हुए॥ ८-९॥

कामगं स्यन्दनं दिव्यमन्तरिक्षचरं ध्रुवम्।
मायां च तामसीं नाम यया सम्पद्यते तमः॥ १०॥

'साथ ही इच्छानुसार चलनेवाला एक दिव्य आकाशचारी रथ भी प्राप्त हुआ है, इसके सिवा तामसी नामकी माया उत्पन्न हुई है, जिससे अन्धकार उत्पन्न किया जाता है॥ १०॥

एतया किल संग्रामे मायया राक्षसेश्वर।
प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि ज्ञातुं सुरासुरैः॥ ११॥

'राक्षसेश्वर! संग्राममें इस मायाका प्रयोग करनेपर देवता और असुरोंको भी प्रयोग करनेवाले पुरुषकी गतिविधिका पता नहीं लग सकता॥ ११॥

अक्षय्यविषुधी बाणैश्चापं चापि सुदुर्जयम्।
अस्त्रं च बलवद् राजञ्छत्रुविध्वंसनं रणे॥ १२॥

'राजन्! बाणोंसे भरे हुए दो अक्षय तरकस, अटूट धनुष तथा रणभूमिमें शत्रुका विध्वंस करनेवाला प्रबल अस्त्र—इन सबकी प्राप्ति हुई है॥ १२॥

एतान् सर्वान् वरांल्लब्ध्वा पुत्रस्तेऽयं दशानन।
अद्य यज्ञसमाप्तौ च त्वां दिदृक्षन् स्थितो ह्यहम्॥ १३॥

'दशानन! तुम्हारा यह पुत्र इन सभी मनोवाञ्छित वरोंको पाकर आज यज्ञकी समाप्तिके दिन तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ खड़ा है'॥ १३॥

ततोऽब्रवीद् दशग्रीवो न शोभनमिदं कृतम्।
पूजिताः शत्रवो यस्माद् द्रव्यैरिन्द्रपुरोगमाः॥ १४॥

यह सुनकर दशग्रीवने कहा—'बेटा! तुमने यह अच्छा नहीं किया है; क्योंकि इस यज्ञसम्बन्धी द्रव्योंद्वारा मेरे शत्रुभूत इन्द्र आदि देवताओंका पूजन हुआ है॥ १४॥

एहीदानीं कृतं यद्धि सुकृतं तन्न संशयः।
आगच्छ सौम्य गच्छामः स्वमेव भवनं प्रति॥ १५॥

'अस्तु, जो कर दिया, सो अच्छा ही किया; इसमें संशय नहीं है। सौम्य! अब आओ, चलें। हमलोग अपने घरको चलें'॥ १५॥

ततो गत्वा दशग्रीवः सपुत्रः सविभीषणः।
स्त्रियोऽवतारयामास सर्वास्ता बाष्पगद्गदाः॥ १६॥

तदनन्तर दशग्रीवने अपने पुत्र और विभीषणके साथ जाकर पुष्पक विमानसे उन सब स्त्रियोंको उतारा, जिन्हें हरकर ले आया था। वे अब भी आँसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे विलाप कर रही थीं॥ १६॥

लक्षिण्यो रत्नभूताश्च देवदानवरक्षसाम्।
तस्य तासु मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा वाक्यमब्रवीत्॥ १७॥

वे उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित होती थीं और देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंके घरकी रत्न थीं। उनमें रावणकी आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषणने कहा—॥ १७॥

ईदृशैस्त्वं समाचारैर्यशोऽर्थकुलनाशनैः।
धर्षणं प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विचेष्टसे॥ १८॥

'राजन्! ये आचरण यश, धन और कुलका नाश करनेवाले हैं। इनके द्वारा जो प्राणियोंको पीड़ा दी जाती है, उससे बड़ा पाप होता है। इस बातको जानते हुए भी आप सदाचारका उल्लङ्घन करके स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो रहे हैं॥ १८॥

ज्ञातींस्तान् धर्षयित्वेमास्त्वयाऽऽनीता वराङ्गनाः।
त्वामतिक्रम्य मधुना राजन् कुम्भीनसी हता॥ १९॥

'महाराज! इन बेचारी अबलाओंके बन्धु-बान्धवोंको मारकर आप इन्हें हर लाये हैं और इधर आपका उल्लङ्घन करके—आपके सिरपर लात रखकर मधुने मौसेरी बहिन कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया'॥ १९॥

रावणस्त्वब्रवीद् वाक्यं नावगच्छामि किं त्विदम्।
कोऽयं यस्तुत्वयाऽऽख्यातो मधुरित्येव नामतः॥ २०॥

रावण बोला—'मैं नहीं समझता कि तुम क्या कह रहे हो। जिसका नाम तुमने मधु बताया है, वह कौन है?'॥ २०॥

विभीषणस्तु संक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत्।
श्रूयतामस्य पापस्य कर्मणः फलमागतम्॥ २१॥

तब विभीषणने अत्यन्त कुपित होकर भाई रावणसे कहा—'सुनिये, आपके इस पापकर्मका फल हमें बहिनके अपहरणके रूपमें प्राप्त हुआ है॥ २१॥

मातामहस्य योऽस्माकं ज्येष्ठो भ्राता सुमालिनः।
माल्यवानिति विख्यातो वृद्धः प्राज्ञो निशाचरः॥ २२॥
पिता ज्येष्ठो जनन्या नो ह्यस्माकं चार्यकोऽभवत्।
तस्य कुम्भीनसी नाम दुहितुर्दुहिताभवत्॥ २३॥
मातृष्वसुरथास्माकं सा च कन्यानलोद्भवा।
भवत्यस्माकमेवैषा भ्रातॄणां धर्मतः स्वसा॥ २४॥

'हमारे नाना सुमालीके जो बड़े भाई माल्यवान् नामसे विख्यात, बुद्धिमान् और बड़े-बूढ़े निशाचर हैं, वे हमारी माता कैकसीके नाना हैं। इसी नाते वे हमलोगोंके भी बड़े नाना हैं। उनकी पुत्री अनला हमारी मौसी है। उन्हींकी पुत्री कुम्भीनसी है। हमारी मौसी अनलाकी बेटी होनेसे ही यह कुम्भीनसी हम सब भाइयोंकी धर्मतः बहिन होती है॥ २२—२४॥

सा हृता मधुना राजन् राक्षसेन बलीयसा।
यज्ञप्रवृत्ते पुत्रे तु मयि चान्तर्जलोषिते॥ २५॥
कुम्भकर्णो महाराज निद्रामनुभवत्यथ।
निहत्य राक्षसश्रेष्ठानमात्यानिह सम्मतान्॥ २६॥

'राजन्! आपका पुत्र मेघनाद जब यज्ञमें तत्पर हो गया, मैं तपस्याके लिये पानीके भीतर रहने लगा और महाराज! भैया कुम्भकर्ण भी जब नींदका आनन्द लेने लगे, उस समय महाबली राक्षस मधुने यहाँ आकर हमारे आदरणीय मन्त्रियोंको, जो राक्षसोंमें श्रेष्ठ थे, मार डाला और कुम्भीनसीका अपहरण कर लिया॥ २५-२६॥

धर्षयित्वा हृता सा तु गुप्ताप्यन्तःपुरे तव।
श्रुत्वापि तन्महाराज क्षान्तमेव हतो न सः॥ २७॥
यस्मादवश्यं दातव्या कन्या भर्त्रे हि भ्रातृभिः।

'महाराज! यद्यपि कुम्भीनसी अन्तःपुरमें भलीभाँति सुरक्षित थी तो भी उसने आक्रमण करके बलपूर्वक उसका अपहरण किया। पीछे इस घटनाको सुनकर भी हमलोगोंने क्षमा ही की। मधुका वध नहीं किया; क्योंकि जब कन्या विवाहके योग्य हो जाय तो उसे किसी योग्य पतिके हाथमें सौंप देना ही उचित है। हम भाइयोंको अवश्य यह कार्य पहले कर देना चाहिये था॥ २७½॥

तदेतत् कर्मणो ह्यस्य फलं पापस्य दुर्मतेः॥ २८॥
अस्मिन्नेवाभिसम्प्राप्तं लोके विदितमस्तु ते।

'हमारे यहाँसे जो बलपूर्वक कन्याका अपहरण हुआ

है, यह आपकी इस दूषित बुद्धि एवं पापकर्मका फल है, जो आपको इसी लोकमें प्राप्त हो गया। यह बात आपको भलीभाँति विदित हो जानी चाहिये' ॥२८½॥

विभीषणवचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रः स रावणः ॥ २९ ॥
दौरात्म्येनात्मनोद्भूतस्तप्ताम्भा इव सागरः ।
ततोऽब्रवीद् दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ॥ ३० ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण अपनी की हुई दुष्टतासे पीड़ित हो तपे हुए जलवाले समुद्रके समान संतप्त हो उठा। वह रोषसे जलने लगा और उसके नेत्र लाल हो गये। वह बोला— ॥ २९-३० ॥

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं शूराः सज्जीभवन्तु नः ।
भ्राता मे कुम्भकर्णश्च ये च मुख्या निशाचराः ॥ ३१ ॥
वाहनान्यधिरोहन्तु नानाप्रहरणायुधाः ।
अद्य तं समरे हत्वा मधुं रावणनिर्भयम् ॥ ३२ ॥
सुरलोकं गमिष्यामि युद्धाकाङ्क्षी सुहृद्वृतः ।

'मेरा रथ शीघ्र ही जोतकर आवश्यक सामग्रीसे सुसज्जित कर दिया जाय। मेरे शूरवीर सैनिक रणयात्राके लिये तैयार हो जायँ। भाई कुम्भकर्ण तथा अन्य मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सवारियोंपर बैठें। आज रावणका भय न माननेवाले मधुका समराङ्गणमें वध करके मित्रोंको साथ लिये युद्धकी इच्छासे देवलोककी यात्रा करूँगा' ॥३१-३२½॥

अक्षौहिणीसहस्राणि चत्वार्यग्र्याणि रक्षसाम् ॥ ३३ ॥
नानाप्रहरणान्याशु निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणाम् ।

रावणकी आज्ञासे युद्धमें उत्साह रखनेवाले श्रेष्ठ राक्षसोंकी चार हजार अक्षौहिणी सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये शीघ्र लङ्कासे बाहर निकली ॥३३½॥

इन्द्रजित् त्वग्रतः सैन्यात् सैनिकान् परिगृह्य च ॥ ३४ ॥
जगाम रावणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ।

मेघनाद समस्त सैनिकोंको साथ लेकर सेनाके आगे-आगे चला। रावण बीचमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पीछे चलने लगा ॥३४½॥

विभीषणश्च धर्मात्मा लङ्कायां धर्ममाचरन् ॥ ३५ ॥
शेषाः सर्वे महाभागा ययुर्मधुपुरं प्रति ।

विभीषण धर्मात्मा थे। इसलिये वे लङ्कामें ही रहकर धर्मका आचरण करने लगे। शेष सभी महाभाग निशाचर मधुपुरकी ओर चल दिये ॥३५½॥

खरैरुष्ट्रैर्हयैर्दीप्तैः शिशुमारैर्महोरगैः ॥ ३६ ॥
राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्वाऽऽकाशं निरन्तरम् ।

गदहे, ऊँट, घोड़े, शिशुमार (सूँस) और बड़े-बड़े नाग आदि दीप्तिमान् वाहनोंपर आरूढ़ हो सब राक्षस आकाशको अवकाशरहित करते हुए चले ॥३६½॥

दैत्याश्च शतशस्तत्र कृतवैराश्च दैवतैः ॥ ३७ ॥
रावणं प्रेक्ष्य गच्छन्तमन्वगच्छन् हि पृष्ठतः ।

रावणको देवलोकपर आक्रमण करते देख सैकड़ों दैत्य भी उसके पीछे-पीछे चले, जिनका देवताओंके साथ वैर बँध गया था ॥३७½॥

स तु गत्वा मधुपुरं प्रविश्य च दशाननः ॥ ३८ ॥
न ददर्श मधुं तत्र भगिनीं तत्र दृष्टवान् ।

मधुपुरमें पहुँचकर दशमुख रावणने वहाँ कुम्भीनसीको तो देखा, किंतु मधुका दर्शन उसे नहीं हुआ ॥३८½॥

सा च प्रह्वाञ्जलिर्भूत्वा शिरसा चरणौ गता ॥ ३९ ॥
तस्य राक्षसराजस्य त्रस्ता कुम्भीनसी तदा ।

उस समय कुम्भीनसीने भयभीत हो हाथ जोड़कर राक्षसराजके चरणोंपर मस्तक रख दिया ॥३९½॥

तां समुत्थापयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ ४० ॥
रावणो राक्षसश्रेष्ठः किं चापि करवाणि ते ।

तब राक्षसप्रवर रावणने कहा—'डरो मत'; फिर उसने कुम्भीनसीको उठाया और कहा—'मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' ॥४०½॥

साब्रवीद् यदि मे राजन् प्रसन्नस्त्वं महाभुज ॥ ४१ ॥
भर्तारं न ममेहाद्य हन्तुमर्हसि मानद ।
नहीदृशं भयं किंचित् कुलस्त्रीणामिहोच्यते ॥ ४२ ॥
भयानामपि सर्वेषां वैधव्यं व्यसनं महत् ।

वह बोली—'दूसरोंको मान देनेवाले राक्षसराज ! महाबाहो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आज यहाँ मेरे पतिका वध न कीजिये; क्योंकि कुलवधुओंके लिये वैधव्यके समान दूसरा कोई भय नहीं बताया जाता है। वैधव्य ही नारीके लिये सबसे बड़ा भय और सबसे महान् संकट है ॥४१-४२½॥

सत्यवाग् भव राजेन्द्र मामवेक्षस्व याचतीम् ॥ ४३ ॥
त्वयाप्युक्तं महाराज न भेतव्यमिति स्वयम् ।

'राजेन्द्र ! आप सत्यवादी हों—अपनी बात सच्ची करें। मैं आपसे पतिके जीवनकी भीख माँगती हूँ, आप मुझ दुःखिया बहिनकी ओर देखिये, मुझपर कृपा कीजिये। महाराज ! आपने स्वयं भी मुझे आश्वासन देते हुए कहा था कि 'डरो मत।' अतः अपनी उसी बातकी लाज रखिये' ॥४३½॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टः स्वसारं तत्र संस्थिताम् ॥ ४४ ॥
क्व चासौ तव भर्ता वै मम शीघ्रं निवेद्यताम् ।
सह तेन गमिष्यामि सुरलोकं जयाय हि ॥ ४५ ॥

यह सुनकर रावण प्रसन्न हो गया। वह वहाँ खड़ी हुई अपनी बहिनसे बोला—'तुम्हारे पति कहाँ हैं ? उन्हें शीघ्र मुझे सौंप दो। मैं उन्हें साथ लेकर देवलोकपर विजयके लिये जाऊँगा' ॥ ४४-४५ ॥

तव कारुण्यसौहार्दान्निवृत्तोऽस्मि मधोर्वधात् ।
इत्युक्ता सा समुत्थाप्य प्रसुप्तं तं निशावरम् ॥ ४६ ॥
अब्रवीत् सम्प्रहृष्टेव राक्षसी सा पतिं वचः ।

'तुम्हारे प्रति करुणा और सौहार्दके कारण मैंने मधुके वधका विचार छोड़ दिया है।' रावणके ऐसा कहनेपर राक्षसकन्या कुम्भीनसी अत्यन्त प्रसन्न-सी होकर अपने सोये हुए पतिके पास गयी और उस निशाचरको उठाकर बोली— ॥४६½॥

एष प्राप्तो दशग्रीवो मम भ्राता महाबलः ॥ ४७ ॥
सुरलोकजयाकाङ्क्षी साहाय्ये त्वां वृणोति च ।
तदस्य त्वं सहायार्थं सबन्धुर्गच्छ राक्षस ॥ ४८ ॥

'राक्षसप्रवर! ये मेरे भाई महाबली दशग्रीव पधारे हैं और देवलोकपर विजय पानेकी इच्छा लेकर वहाँ जा रहे हैं। इस कार्यके लिये ये आपको भी सहायक बनाना चाहते हैं; अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ इनकी सहायताके लिये जाइये ॥ ४७-४८ ॥

स्निग्धस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितुम् ।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा तथेत्याह मधुर्वचः ॥ ४९ ॥

'मेरे नाते आपपर इनका स्नेह है, आपको जमाता मानकर ये आपके प्रति अनुराग रखते हैं; अतः आपको इनके कार्यकी सिद्धिके लिये अवश्य सहायता करनी चाहिये।' पत्नीकी यह बात सुनकर मधुने 'तथास्तु' कहकर सहायता देना स्वीकार कर लिया ॥ ४९ ॥

ददर्श राक्षसश्रेष्ठं यथान्यायमुपेत्य सः ।
पूजयामास धर्मेण रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥

फिर वह न्यायोचित रीतिसे निकट जाकर निशाचरशिरोमणि राक्षसराज रावणसे मिला। मिलकर उसने धर्मके अनुसार उसका स्वागत-सत्कार किया ॥ ५० ॥

प्राप्य पूजां दशग्रीवो मधुवेश्मनि वीर्यवान् ।
तत्र चैकां निशामुष्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५१ ॥

मधुके भवनमें यथोचित आदर-सत्कार पाकर पराक्रमी दशग्रीव वहाँ एक रात रहा, फिर सबेरे उठकर वहाँसे जानेको उद्यत हुआ ॥ ५१ ॥

ततः कैलासमासाद्य शैलं वैश्रवणालयम् ।
राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

मधुपुरसे यात्रा करके महेन्द्रके तुल्य पराक्रमी राक्षसराज रावण सायंकालतक कुबेरके निवास-स्थान कैलास पर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपनी सेनाका पड़ाव डालनेका विचार किया ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

—★—

षड्विंशः सर्गः

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलकूबरका रावणको भयंकर शाप देना

स तु तत्र दशग्रीवः सह सैन्येन वीर्यवान् ।
अस्तं प्राप्ते दिनकरे निवासं समरोचयत् ॥ १ ॥

जब सूर्य अस्ताचलको चले गये, तब पराक्रमी दशग्रीवने अपनी सेनाके साथ कैलासपर ही रातमें ठहर जाना ठीक समझा ॥ १ ॥

उदिते विमले चन्द्रे तुल्यपर्वतवर्चसि ।
प्रसुप्तं सुमहत् सैन्यं नानाप्रहरणायुधम् ॥ २ ॥

(उसने वहीं छावनी डाल दी) फिर, कैलासके ही समान श्वेत कान्तिवाले निर्मल चन्द्रदेवका उदय हुआ और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित निशाचरोंकी वह विशाल सेना गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ २ ॥

रावणस्तु महावीर्यो निषण्णः शैलमूर्धनि ।
स ददर्श गुणांस्तत्र चन्द्रपादपशोभितान् ॥ ३ ॥

परंतु महापराक्रमी रावण उस पर्वतके शिखरपर चुपचाप बैठकर चन्द्रमाकी चाँदनीसे सुशोभित होनेवाले उस पर्वतके विभिन्न स्थानोंकी (जो सम्पूर्ण कामभोगके उपयुक्त थे) नैसर्गिक छटा निहारने लगा ॥ ३ ॥

कर्णिकारवनैर्दीप्तैः कदम्बबकुलैस्तथा ।
पद्मिनीभिश्च फुल्लाभिर्मन्दाकिन्या जलैरपि ॥ ४ ॥
चम्पकाशोकपुंनागमन्दारतरुभिस्तथा ।
चूतपाटललोध्रैश्च प्रियङ्ग्वर्जुनकेतकैः ॥ ५ ॥
तगरैर्नारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।
एतैरन्यैश्च तरुभिरुद्भासितवनान्तरे ॥ ६ ॥

कहीं कनेरके दीप्तिमान् कानन शोभा पाते थे, कहीं कदम्ब और बकुल (मौलसिरी) वृक्षोंके समूह अपनी सम्पत्ति बिखेर रहे थे, कहीं मन्दाकिनीके जलसे भरी हुई और प्रफुल्ल कमलोंसे अलंकृत पुष्करिणियाँ शोभा दे रही थीं कहीं चम्पा, अशोक, पुंनाग (नागकेसर), मन्दार, आम, पाढ़र, लोध, प्रियङ्गु, अर्जुन, केतक, तगर, नारियल, प्रियाल और पनस आदि वृक्ष अपने पुष्प आदिकी शोभासे उस पर्वत-शिखरके वन्यप्रान्तको उद्भासित कर रहे थे ॥ ४—६ ॥

किन्नरा मदनेनार्ता रक्ता मधुरकण्ठिनः ।
समं सम्प्रजगुर्यत्र मनस्तुष्टिविवर्धनम् ॥ ७ ॥

मधुर कण्ठवाले कामार्त किन्नर अपनी कामिनियोंके साथ वहाँ रागयुक्त गीत गा रहे थे, जो कानोंमें पड़कर मनका आनन्द-वर्धन करते थे ॥ ७ ॥

विद्याधरा मदक्षीबा मदरक्तान्तलोचनाः ।
योषिद्भिः सह संक्रान्ताश्चिक्रीडुर्जहृषुश्च वै ॥ ८ ॥

जिनके नेत्र-प्रान्त मदसे कुछ लाल हो गये थे, वे मदमत्त विद्याधर युवतियोंके साथ क्रीडा करते और हर्षमग्न होते थे ॥ ८ ॥

घण्टानामिव संनादः शुश्रुवे मधुरस्वनः ।
अप्सरोगणसङ्घानां गायतां धनदालये ॥ ९ ॥

वहाँसे कुबेरके भवनमें गाती हुई अप्सराओंके गीतकी मधुर ध्वनि घण्टानादके समान सुनायी पड़ती थी ॥ ९ ॥

पुष्पवर्षाणि मुञ्चन्तो नगाः पवनताडिताः ।
शैलं तं वासयन्तीव मधुमाधवगन्धिनः ॥ १० ॥

वसन्त-ऋतुके सभी पुष्पोंकी गन्धसे युक्त वृक्ष हवाके थपेड़े खाकर फूलोंकी वर्षा करते हुए उस समूचे पर्वतको सुवासित-सा कर रहे थे ॥ १० ॥

मधुपुष्परजःपृक्तं गन्धमादाय पुष्कलम् ।
प्रववौ वर्धयन् कामं रावणस्य सुखोऽनिलः ॥ ११ ॥

विविध कुसुमोंके मधुर मकरन्द तथा परागसे मिश्रित प्रचुर सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द बहती हुई सुखद वायु रावणकी काम-वासनाको बढ़ा रही थी ॥ ११ ॥

गेयात् पुष्पसमृद्ध्या च शैत्याद् वायोर्गिरेर्गुणात् ।
प्रवृत्तायां रजन्यां च चन्द्रस्योदयनेन च ॥ १२ ॥
रावणः स महावीर्यः कामस्य वशमागतः ।
विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य शशिनं समवैक्षत ॥ १३ ॥

सङ्गीतकी मीठी तान, भाँति-भाँतिके पुष्पोंकी समृद्धि, शीतल वायुका स्पर्श, पर्वतके (रमणीयता आदि) आकर्षक गुण, रजनीकी मधुवेला और चन्द्रमाका उदय—उद्दीपनके इन सभी उपकरणोंके कारण वह महापराक्रमी रावण कामके अधीन हो गया और बारम्बार लंबी साँस खींचकर चन्द्रमाकी ओर देखने लगा ॥ १२-१३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दिव्याभरणभूषिता ।
सर्वाप्सरोवरा रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १४ ॥

इसी बीचमें समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ सुन्दरी, पूर्ण-चन्द्रमुखी रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो उस मार्गसे आ निकली ॥ १४ ॥

दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गी मन्दारकृतमूर्धजा ।
दिव्योत्सवकृतारम्भा दिव्यपुष्पविभूषिता ॥ १५ ॥

उसके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप लगा था और केशपाशमें पारिजातके पुष्प गुँथे हुए थे। दिव्य पुष्पोंसे अपना शृङ्गार करके वह प्रिय-समागमरूप दिव्य उत्सवके लिये जा रही थी ॥ १५ ॥

चक्षुर्मनोहरं पीनं मेखलादामभूषितम् ।
समुद्वहन्ती जघनं रतिप्राभृतमुत्तमम् ॥ १६ ॥

मनोहर नेत्र तथा काञ्चीकी लड़ियोंसे विभूषित पीन जघन-स्थलको वह रतिके उत्तम उपहारके रूपमें धारण किये हुए थी ॥ १६ ॥

कृतैर्विशेषकैरार्द्रैः षड्ऋतुकुसुमोद्भवैः ।
बभावन्यतमेव श्रीः कान्तिश्रीद्युतिकीर्तिभिः ॥ १७ ॥

उसके कपोल आदिपर हरिचन्दनसे चित्र-रचना की गयी थी। वह छहों ऋतुओंमें होनेवाले नूतन पुष्पोंके आर्द्र हारोंसे विभूषित थी और अपनी अलौकिक कान्ति, शोभा, द्युति एवं कीर्तिसे युक्त हो उस समय दूसरी लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ॥ १७ ॥

नीलं सतोयमेघाभं वस्त्रं समवगुण्ठिता ।
यस्या वक्त्रं शशिनिभं भ्रुवौ चापनिभे शुभे ॥ १८ ॥

उसका मुख चन्द्रमाके समान मनोहर था और दोनों सुन्दर भौंहें कमान-सी दिखायी देती थीं। वह सजल जलधरके समान नील रंगकी साड़ीसे अपने अङ्गोंको ढके हुए थी ॥ १८ ॥

ऊरू करिकराकारौ करौ पल्लवकोमलौ ।
सैन्यमध्येन गच्छन्ती रावणेनोपलक्षिता ॥ १९ ॥

उसकी जाँघोंका चढ़ाव-उतार हाथीकी सूँडके समान था। दोनों हाथ ऐसे कोमल थे, मानो (देहरूपी रसालकी डालके) नये-नये पल्लव हों। वह सेनाके बीचसे होकर जा रही थी, अतः रावणने उसे देख लिया ॥ १९ ॥

तां समुत्थाय गच्छन्तीं कामबाणवशं गतः ।
करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥

देखते ही वह कामदेवके बाणोंका शिकार हो गया और खड़ा होकर उसने अन्यत्र जाती हुई रम्भाका हाथ पकड़ लिया। बेचारी अबला लाजसे गड़ गयी; परंतु वह निशाचर मुसकराता हुआ उससे बोला— ॥ २० ॥

क्व गच्छसि वरारोहे कां सिद्धिं भजसे स्वयम् ।
कस्याभ्युदयकालोऽयं यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥

'वरारोहे ! कहाँ जा रही हो ? किसकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये स्वयं चल पड़ी हो ? किसके भाग्योदयका समय आया है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा ? ॥ २१ ॥

त्वदाननरसस्याद्य पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
सुधामृतरसस्येव कोऽद्य तृप्तिं गमिष्यति ॥ २२ ॥

'कमल और उत्पलकी सुगन्ध धारण करनेवाले तुम्हारे इस मनोहर मुखारविन्दका रस अमृतका भी अमृत है। आज इस अमृत-रसका आस्वादन करके कौन तृप्त होगा ? ॥ २२ ॥

स्वर्णकुम्भनिभौ पीनौ शुभौ भीरु निरन्तरौ ।
कस्योरःस्थलसंस्पर्शं दास्यतस्ते कुचाविमौ ॥ २३ ॥

'भीरु ! परस्पर सटे हुए तुम्हारे ये सुवर्णमय कलशोंके सदृश सुन्दर पीन उरोज किसके वक्षःस्थलोंको अपना स्पर्श प्रदान करेंगे ? ॥ २३ ॥

सुवर्णचक्रप्रतिमं स्वर्णदामचितं पृथु ।
अध्यारोक्ष्यति कस्तेऽद्य जघनं स्वर्गरूपिणम् ॥ २४ ॥

'सोनेकी लड़ियोंसे विभूषित तथा सुवर्णमय चक्रके समान विपुल विस्तारसे युक्त तुम्हारे पीन जघनस्थलपर जो मूर्तिमान् स्वर्ग-सा जान पड़ता है, आज कौन आरोहण करेगा ? ॥ २४ ॥

मद्विशिष्टः पुमान् कोऽद्य शक्रो विष्णुरथाश्विनौ ।
मामतीत्य हि यच्च त्वं यासि भीरु न शोभनम् ॥ २५ ॥

'इन्द्र, उपेन्द्र अथवा अश्विनीकुमार ही क्यों न हों, इस समय कौन पुरुष मुझसे बढ़कर है ? भीरु ! तुम मुझे छोड़कर अन्यत्र जा रही हो, यह अच्छा नहीं है ॥ २५ ॥

विश्रम त्वं पृथुश्रोणि शिलातलमिदं शुभम् ।
त्रैलोक्ये यः प्रभुश्चैव मदन्यो नैव विद्यते ॥ २६ ॥

'स्थूल नितम्बवाली सुन्दरी ! यह सुन्दर शिला है, इसपर बैठकर विश्राम करो । इस त्रिभुवनका जो स्वामी है, वह मुझसे भिन्न नहीं है—मैं ही सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हूँ ॥ २६ ॥

तदेवं प्राञ्जलिः प्रह्वो याचते त्वां दशाननः ।
भर्तुर्भर्ता विधाता च त्रैलोक्यस्य भजस्व माम् ॥ २७ ॥

'तीनों लोकोंके स्वामीका भी स्वामी तथा विधाता यह दशमुख रावण आज इस प्रकार विनीतभावसे हाथ जोड़कर तुमसे याचना करता है । सुन्दरी ! मुझे स्वीकार करो' ॥ २७ ॥

एवमुक्ताब्रवीद् रम्भा वेपमाना कृताञ्जलिः ।
प्रसीद नार्हसे वक्तुमीदृशं त्वं हि मे गुरुः ॥ २८ ॥

रावणके ऐसा कहनेपर रम्भा काँप उठी और हाथ जोड़कर बोली—'प्रभो ! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा कीजिये । आपको ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये; क्योंकि आप मेरे गुरुजन हैं—पिताके तुल्य हैं ॥ २८ ॥

अन्येभ्योऽपि त्वया रक्ष्या प्राप्नुयां धर्षणं यदि ।
तद्धर्मतः स्नुषा तेऽहं तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥

'यदि दूसरे कोई पुरुष मेरा तिरस्कार करनेपर उतारू हों तो उनसे भी आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये । मैं धर्मतः आपकी पुत्रवधू हूँ—यह आपसे सच्ची बात बता रही हूँ' ॥ २९ ॥

अथाब्रवीद् दशग्रीवश्चरणाधोमुखीं स्थिताम् ।
रोमहर्षमनुप्राप्तां दृष्टमात्रेण तां तदा ॥ ३० ॥

रम्भा अपने चरणोंकी ओर देखती हुई नीचे मुँह किये खड़ी थी । रावणकी दृष्टि पड़नेमात्रसे भयके कारण उसके रोंगटे खड़े हो गये थे । उस समय उससे रावणने कहा— ॥ ३० ॥

सुतस्य यदि मे भार्या ततस्त्वं हि स्नुषा भवेः ।
बाढमित्येव सा रम्भा प्राह रावणमुत्तरम् ॥ ३१ ॥

'रम्भे ! यदि यह सिद्ध हो जाय कि तुम मेरे बेटेकी बहू हो, तभी मेरी पुत्र-वधू हो सकती हो, अन्यथा नहीं ।' तब रम्भाने 'बहुत अच्छा' कहकर रावणको इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ ३१ ॥

धर्मतस्ते सुतस्याहं भार्या राक्षसपुङ्गव ।
पुत्रः प्रियतरः प्राणैर्भ्रातुर्वैश्रवणस्य ते ॥ ३२ ॥

'राक्षसशिरोमणे ! धर्मके अनुसार मैं आपके पुत्रकी ही भार्या हूँ । आपके बड़े भाई कुबेरके पुत्र मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं ॥ ३२ ॥

विख्यातस्त्रिषु लोकेषु नलकूबर इत्ययम् ।
धर्मतो यो भवेद् विप्रः क्षत्रियो वीर्यतो भवेत् ॥ ३३ ॥

'वे तीनों लोकोंमें 'नलकूबर' नामसे विख्यात हैं तथा धर्मानुष्ठानकी दृष्टिसे ब्राह्मण और पराक्रमकी दृष्टिसे क्षत्रिय हैं ॥ ३३ ॥

क्रोधाद् यश्च भवेदग्निः क्षान्त्या च वसुधासमः ।
तस्यास्मि कृतसंकेता लोकपालसुतस्य वै ॥ ३४ ॥

'वे क्रोधमें अग्नि और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं । उन्हीं लोकपालकुमार प्रियतम नलकूबरको आज मैंने मिलनेके लिये संकेत दिया है ॥ ३४ ॥

तमुद्दिश्य तु मे सर्वं विभूषणमिदं कृतम् ।
यथा तस्य हि नान्यस्य भावो मां प्रति तिष्ठति ॥ ३५ ॥

'यह सारा शृङ्गार मैंने उन्हींके लिये धारण किया है; जैसे उनका मेरे प्रति अनुराग है, उसी प्रकार मेरा भी उन्हींके प्रति प्रगाढ़ प्रेम है, दूसरे किसीके प्रति नहीं ॥ ३५ ॥

तेन सत्येन मां राजन् मोक्तुमर्हस्यरिंदम ।
स हि तिष्ठति धर्मात्मा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ॥ ३६ ॥

'शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षसराज ! इस सत्यको दृष्टिमें रखकर आप इस समय मुझे छोड़ दीजिये; वे मेरे धर्मात्मा प्रियतम उत्सुक होकर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे ॥ ३६ ॥

तत्र विघ्नं तु तस्येह कर्तुं नार्हसि मुञ्च माम् ।
सद्भिराचरितं मार्गं गच्छ राक्षसपुङ्गव ॥ ३७ ॥

'उनको सेवाके इस कार्यमें आपको वहाँ विघ्न नहीं डालना चाहिये । मुझे छोड़ दीजिये । राक्षसराज ! आप सत्पुरुषोंद्वारा आचरित धर्मके मार्गपर चलिये ॥ ३७ ॥

माननीयो मम त्वं हि पालनीया तथास्मि ते ।
एवमुक्तो दशग्रीवः प्रत्युवाच विनीतवत् ॥ ३८ ॥

'आप मेरे माननीय गुरुजन हैं, अतः आपको मेरी रक्षा

करनी चाहिये।' यह सुनकर दशग्रीवने उसे नम्रतापूर्वक उत्तर दिया— ॥ ३८ ॥

स्नुषास्मि यदवोचस्त्वमेकपत्नीष्वयं क्रमः।
देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता ॥ ३९ ॥
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः।

'रम्भे! तुम अपनेको जो मेरी पुत्रवधू बता रही हो, वह ठीक नहीं जान पड़ता। यह नाता-रिश्ता उन स्त्रियोंके लिये लागू होता है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हों। तुम्हारे देवलोककी तो स्थिति ही दूसरी है। वहाँ सदासे यही नियम चला आ रहा है कि अप्सराओंका कोई पति नहीं होता। वहाँ कोई एक स्त्रीके साथ विवाह करके नहीं रहता है' ॥३९½॥

एवमुक्त्वा स तां रक्षो निवेश्य च शिलातले ॥ ४० ॥
कामभोगाभिसंरक्तो मैथुनायोपचक्रमे।

ऐसा कहकर उस राक्षसने रम्भाको बलपूर्वक शिलापर बैठा लिया और कामभोगमें आसक्त हो उसके साथ समागम किया ॥४०½॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा भ्रष्टमाल्यविभूषणा ॥ ४१ ॥
गजेन्द्राक्रीडमथिता नदीवाकुलतां गता।

उसके पुष्पहार टूटकर गिर गये, सारे आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। उपभोगके बाद रावणने रम्भाको छोड़ दिया। उसकी दशा उस नदीके समान हो गयी जिसे किसी गजराजने क्रीडा करके मथ डाला हो; वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी ॥४१½॥

लुलिताकुलकेशान्ता करवेपितपल्लवा ॥ ४२ ॥
पवनेनावधूतेव लता कुसुमशालिनी।

वेणी-बन्ध टूट जानेसे उसके खुले हुए केश हवामें उड़ने लगे—उसका शृङ्गार बिगड़ गया। कर-पल्लव काँपने लगे। वह ऐसी लगती थी—मानो फूलोंसे सुशोभित होनेवाली किसी लताको हवाने झकझोर दिया हो ॥४२½॥

सा वेपमाना लज्जन्ती भीता करकृताञ्जलिः ॥ ४३ ॥
नलकूबरमासाद्य पादयोर्निपपात ह।

लज्जा और भयसे काँपती हुई वह नलकूबरके पास गयी और हाथ जोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ी ॥४३½॥

तदवस्थां च तां दृष्ट्वा महात्मा नलकूबरः ॥ ४४ ॥
अब्रवीत् किमिदं भद्रे पादयोः पतितासि मे।

रम्भाको इस अवस्थामें देखकर महामना नलकूबरने पूछा—'भद्रे! क्या बात है? तुम इस तरह मेरे पैरोंपर क्यों पड़ गयीं?' ॥४४½॥

सा वै निःश्वसमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ ४५ ॥
तस्मै सर्वं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे।

वह थर-थर काँप रही थी। उसने लंबी साँस खींचकर हाथ जोड़ लिये और जो कुछ हुआ था, वह सब ठीक-ठीक बताना आरम्भ किया— ॥४५½॥

एष देव दशग्रीवः प्राप्तो गन्तुं त्रिविष्टपम् ॥ ४६ ॥
तेन सैन्यसहायेन निशेयं परिणामिता।

'देव! यह दशमुख रावण स्वर्गलोकपर आक्रमण करनेके लिये आया है। इसके साथ बहुत बड़ी सेना है। उसने आजकी रातमें यहीं डेरा डाला है ॥४६½॥

आयान्ती तेन दृष्टास्मि त्वत्सकाशमरिंदम ॥ ४७ ॥
गृहीता तेन पृष्टास्मि कस्य त्वमिति रक्षसा।

'शत्रुदमन वीर! मैं आपके पास आ रही थी, किंतु उस राक्षसने मुझे देख लिया और मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर पूछा—'तुम किसकी स्त्री हो?' ॥४७½॥

मया तु सर्वं यत् सत्यं तस्मै सर्वं निवेदितम् ॥ ४८ ॥
काममोहाभिभूतात्मा नाश्रौषीत् तद् वचो मम।

'मैंने उसे सब कुछ सच-सच बता दिया, किंतु उसका हृदय कामजनित मोहसे आक्रान्त था, इसलिये मेरी वह बात नहीं सुनी ॥४८½॥

याच्यमानो मया देव स्नुषा तेऽहमिति प्रभो ॥ ४९ ॥
तत् सर्वं पृष्ठतः कृत्वा बलात् तेनास्मि धर्षिता।

'देव! मैं बारम्बार प्रार्थना करती ही रह गयी कि प्रभो! मैं आपकी पुत्रवधू हूँ, मुझे छोड़ दीजिये; किंतु उसने मेरी सारी बातें अनसुनी कर दीं और बलपूर्वक मेरे साथ अत्याचार किया ॥४९½॥

एवं त्वमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि सुव्रत ॥ ५० ॥
नहि तुल्यं बलं सौम्य स्त्रियाश्च पुरुषस्य हि।

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले प्रियतम! इस वेवसीकी दशामें मुझसे जो अपराध बन गया है, उसे आप क्षमा करें। सौम्य! नारी अबला होती है, उसमें पुरुषके बराबर शारीरिक बल नहीं होता है (इसीलिये उस दुष्टसे अपनी रक्षा मैं नहीं कर सकी)' ॥५०½॥

एतच्छ्रुत्वा तु संक्रुद्धस्तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५१ ॥
धर्षणां तां परां श्रुत्वा ध्यानं सम्प्रविवेश ह।

यह सुनकर वैश्रवणकुमार नलकूबरको बड़ा क्रोध हुआ। रम्भापर किये गये उस महान् अत्याचारको सुनकर उन्होंने ध्यान लगाया ॥५१½॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय तदा वैश्रवणात्मजः ॥ ५२ ॥
मुहूर्तात् क्रोधताम्राक्षस्तोयं जग्राह पाणिना।

उस समय दो ही घड़ीमें रावणकी उस करतूतको जानकर वैश्रवणपुत्र नलकूबरके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने अपने हाथमें जल लिया ॥५२½॥

गृहीत्वा सलिलं सर्वमुपस्पृश्य यथाविधि ॥ ५३ ॥
उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम्।

जल लेकर पहले विधिपूर्वक आचमन करके नेत्र आदि सारी इन्द्रियोंका स्पर्श करनेके अनन्तर उन्होंने राक्षसराजको

बड़ा भयंकर शाप दिया ॥५३½॥

अकामा तेन यस्मात् त्वं बलात् भद्रे प्रधर्षिता ॥ ५४ ॥
तस्मात् स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ।

वे बोले—'भद्रे ! तुम्हारी इच्छा न रहनेपर भी रावणने तुमपर बलपूर्वक अत्याचार किया है। अतः वह आजसे दूसरी किसी ऐसी युवतीसे समागम नहीं कर सकेगा जो उसे चाहती न हो ॥५४½॥

यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ॥ ५५ ॥
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ।

'यदि वह कामपीड़ित होकर उसे न चाहनेवाली युवतीपर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तकके सात टुकड़े हो जायँगे ॥५५½॥

तस्मिन्नुदाहृते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥ ५६ ॥
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता ।

नलकूबरके मुखसे प्रज्वलित अग्निके समान दग्ध कर देनेवाले इस शापके निकलते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥५६½॥

पितामहमुखाश्चैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥ ५७ ॥
ज्ञात्वा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसः ।
ऋषयः पितरश्चैव प्रीतिमापुरनुत्तमाम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। रावणके द्वारा की गयी लोकककी सारी दुर्दशाको और उस राक्षसकी मृत्युको भी जानकर ऋषियों तथा पितरोंको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ५३-५८ ॥

श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥ ५९ ॥

उस रोमाञ्चकारी शापको सुनकर दशग्रीवने अपनेको न चाहनेवाली स्त्रियोंके साथ बलात्कार करना छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

तेन नीताः स्त्रियः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिव्रताः ।
नलकूबरनिर्मुक्तं शापं श्रुत्वा मनःप्रियम् ॥ ६० ॥

वह जिन-जिन पतिव्रता स्त्रियोंको हरकर ले गया था, उन सबके मनको नलकूबरका दिया वह शाप बड़ा प्रिय लगा। उसे सुनकर वे सब-की-सब बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः

सेनासहित रावणका इन्द्रलोकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना, भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको लौटाना, देवताओं और राक्षसोंका युद्ध तथा वसुके द्वारा सुमालीका वध

कैलासं लङ्घयित्वा तु ससैन्यवलवाहनः ।
आससाद महातेजा इन्द्रलोकं दशाननः ॥ १ ॥

कैलास-पर्वतको पार करके महातेजस्वी दशमुख रावण सेना और सवारियोंके साथ इन्द्रलोकमें जा पहुँचा ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः ।
देवलोके बभौ शब्दो भिद्यमानार्णवोपमः ॥ २ ॥

सब ओरसे आती हुई राक्षस-सेनाका कोलाहल देवलोकमें ऐसा जान पड़ता था, मानो महासागरके मथे जानेका शब्द प्रकट हो रहा हो ॥ २ ॥

श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तमिन्द्रश्चलित आसनात् ।
देवानथाब्रवीत् तत्र सर्वानेव समागतान् ॥ ३ ॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसनसे उठ गये और अपने पास आये हुए समस्त देवताओंसे बोले— ॥ ३ ॥

आदित्यांश्च वसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान् ।
सज्जा भवत युद्धार्थं रावणस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥

उन्होंने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, साध्यों तथा मरुद्गणोंसे भी कहा—'तुम सब लोग दुरात्मा रावणके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ' ॥ ४ ॥

एवमुक्तास्तु शक्रेण देवाः शक्रसमा युधि ।
संनह्य सुमहासत्त्वा युद्धश्रद्धासमन्विताः ॥ ५ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धमें उन्हींके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले महाबली देवता कवच आदि धारण करके युद्धके लिये उत्सुक हो गये ॥ ५ ॥

स तु दीनः परित्रस्तो महेन्द्रो रावणं प्रति ।
विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्रको रावणसे भय हो गया था। अतः वे दुःखी हो भगवान् विष्णुके पास आये और इस प्रकार बोले— ॥ ६ ॥

विष्णो कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति ।
अहोऽतिबलवद् रक्षो युद्धार्थमभिवर्तते ॥ ७ ॥

'विष्णुदेव ! मैं राक्षस रावणके लिये क्या करूँ ? अहो !

वह अत्यन्त बलशाली निशाचर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आ रहा है ॥ ७ ॥

वरप्रदानाद् बलवान् न खल्वन्येन हेतुना ।
तत् तु सत्यं वचः कार्यं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ ८ ॥

'वह केवल ब्रह्माजीके वरदानके कारण प्रबल हो गया है; दूसरे किसी हेतुसे नहीं। कमलयोनि ब्रह्माजीने जो वर दे दिया है, उसे सत्य करना हम सब लोगोंका काम है ॥ ८ ॥

तद् यथा नमुचिर्वृत्रो बलिर्नरकशम्बरौ ।
त्वद्बलं समवष्टभ्य मया दग्धास्तथा कुरु ॥ ९ ॥

'अतः जैसे पहले आपके बलका आश्रय लेकर मैंने नमुचि, वृत्रासुर, बलि, नरक और शम्बर आदि असुरोंको दग्ध कर डाला है, उसी प्रकार इस समय भी इस असुरका अन्त हो जाय, ऐसा कोई उपाय आप ही कीजिये ॥ ९ ॥

नह्यन्यो देवदेवेश त्वदृते मधुसूदन ।
गतिः परायणं चापि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १० ॥

'मधुसूदन ! आप देवताओंके भी देवता एवं ईश्वर हैं। इस चराचर त्रिभुवनमें आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो हम देवताओंको सहारा दे सके। आप ही हमारे परम आश्रय हैं ॥ १० ॥

त्वं हि नारायणः श्रीमान् पद्मनाभः सनातनः ।
त्वयेमे स्थापिता लोकाः शक्रश्चाहं सुरेश्वरः ॥ ११ ॥

'आप पद्मनाभ हैं—आपहीके नाभिकमलसे जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप ही सनातनदेव श्रीमान् नारायण हैं। आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया है और आपने ही मुझे देवराज इन्द्र बनाया है ॥ ११ ॥

त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
त्वामेव भगवन् सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये ॥ १२ ॥

'भगवन् ! आपने ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसहित इस समस्त त्रिलोकीकी सृष्टि की है और प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत आपमें ही प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

तदाचक्ष्व यथातत्त्वं देवदेव मम स्वयम् ।
असिचक्रसहायस्त्वं योत्स्यसे रावणं प्रति ॥ १३ ॥

'इसलिये देवदेव ! आप ही मुझे कोई ऐसा अमोघ उपाय बताइये, जिससे मेरी विजय हो। क्या आप स्वयं चक्र और तलवार लेकर रावणसे युद्ध करेंगे ?' ॥ १३ ॥

एवमुक्तः स शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः ।
अब्रवीन्न परित्रासः कर्तव्यः श्रूयतां च मे ॥ १४ ॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायणदेव बोले—'देवराज ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मेरी बात सुनो— ॥ १४ ॥

न तावदेष दुष्टात्मा शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
हन्तुं चापि समासाद्य वरदानेन दुर्जयः ॥ १५ ॥

'पहली बात तो यह है इस दुष्टात्मा रावणको सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी न तो मार सकते हैं और न परास्त ही कर सकते हैं; क्योंकि वरदान पानेके कारण यह इस समय दुर्जय हो गया है ॥ १५ ॥

सर्वथा तु महत् कर्म करिष्यति बलोत्कटः ।
राक्षसः पुत्रसहितो दृष्टमेतन्निसर्गतः ॥ १६ ॥

'अपने पुत्रके साथ आया हुआ यह उत्कट बलशाली राक्षस सब प्रकारसे महान् पराक्रम प्रकट करेगा। यह बात मुझे अपनी स्वाभाविक ज्ञानदृष्टिसे दिखायी दे रही है ॥ १६ ॥

यत् तु मां त्वमभाषिष्ठा युध्यस्वेति सुरेश्वर ।
नाहं तं प्रतियोत्स्यामि रावणं राक्षसं युधि ॥ १७ ॥

'सुरेश्वर ! दूसरी बात जो मुझे कहनी है, इस प्रकार है—तुम जो मुझसे कह रहे थे कि 'आप ही उसके साथ युद्ध कीजिये' उसके उत्तरमें निवेदन है कि मैं इस समय युद्धस्थलमें राक्षस रावणका सामना करनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥ १७ ॥

नाहत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते ।
दुर्लभश्चैव कामोऽद्य वरगुप्ताद्धि रावणात् ॥ १८ ॥

'मुझ विष्णुका यह स्वभाव है कि मैं संग्राममें शत्रुका वध किये बिना पीछे नहीं लौटता; परंतु इस समय रावण वरदानसे सुरक्षित है, इसलिये उसकी ओरसे मेरी इस विजय-सम्बन्धिनी इच्छाकी पूर्ति होनी कठिन है ॥ १८ ॥

प्रतिजाने च देवेन्द्र त्वत्समीपे शतक्रतो ।
भवितास्मि यथास्याहं रक्षसो मृत्युकारणम् ॥ १९ ॥

'परंतु देवेन्द्र ! शतक्रतो ! मैं तुम्हारे समीप इस बातकी प्रतिज्ञा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राक्षसकी मृत्युका कारण बनूँगा ॥ १९ ॥

अहमेव निहन्तास्मि रावणं सपुरःसरम् ।
देवता नन्दयिष्यामि ज्ञात्वा कालमुपागतम् ॥ २० ॥

'मैं ही रावणको उसके अग्रगामी सैनिकोंसहित मारूँगा और देवताओंको आनन्दित करूँगा; परंतु यह तभी होगा जब मैं जान लूँगा कि इसकी मृत्युका समय आ पहुँचा है ॥ २० ॥

एतत् ते कथितं तत्त्वं देवराज शचीपते ।
युद्ध्यस्व विगतत्रासः सुरैः सार्धं महाबल ॥ २१ ॥

'देवराज ! ये सब बातें मैंने तुम्हें ठीक-ठीक बता दीं। महाबलशाली शचीवल्लभ ! इस समय तो तुम्हीं देवताओं-सहित जाकर उस राक्षसके साथ निर्भय हो युद्ध करो' ॥ २१ ॥

ततो रुद्राः सहादित्या वसवो मरुतोऽश्विनौ ।
संनद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानभितः पुरात् ॥ २२ ॥

तदनन्तर रुद्र, आदित्य, वसु, मरुद्गण और अश्विनीकुमार आदि देवता युद्धके लिये तैयार होकर तुरंत अमरावतीपुरीसे बाहर निकले और राक्षसोंका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादः शुश्रुवे रजनीक्षये ।
तस्य रावणसैन्यस्य प्रबुद्धस्य समन्ततः ॥ २३ ॥

इसी बीचमें रात बीतते-बीतते सब ओरसे युद्धके लिये उद्यत हुई रावणकी सेनाका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ २३ ॥

ते प्रबुद्धा महावीर्या अन्योन्यमभिवीक्ष्य वै ।
संग्राममेवाभिमुखा अभ्यवर्तन्त हृष्टवत् ॥ २४ ॥

वे महापराक्रमी राक्षससैनिक सबेरे जागनेपर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके लिये ही आगे बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

ततो दैवतसैन्यानां संक्षोभः समजायत ।
तदक्षयं महासैन्यं दृष्ट्वा समरमूर्धनि ॥ २५ ॥

तदनन्तर युद्धके मुहानेपर राक्षसोंकी उस अनन्त एवं विशाल सेनाको देखकर देवताओंकी सेनामें बड़ा क्षोभ हुआ ॥ २५ ॥

ततो युद्धं समभवद् देवदानवरक्षसाम् ।
घोरं तुमुलनिर्ह्रादं नानाप्रहरणोद्यतम् ॥ २६ ॥

फिर तो देवताओंका दानवों और राक्षसोंके साथ भयंकर युद्ध छिड़ गया । भयंकर कोलाहल होने लगा और दोनों ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार आरम्भ हो गयी ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
युद्धार्थं समवर्तन्त सचिवा रावणस्य ते ॥ २७ ॥

इसी समय रावणके मन्त्री शूरवीर राक्षस, जो बड़े भयंकर दिखायी देते थे, युद्धके लिये आगे बढ़ आये ॥ २७ ॥

मारीचश्च प्रहस्तश्च महापार्श्वमहोदरौ ।
अकम्पनो निकुम्भश्च शुकः सारण एव च ॥ २८ ॥
संह्रादो धूमकेतुश्च महादंष्ट्रो घटोदरः ।
जम्बुमाली महाह्रादो विरूपाक्षश्च राक्षसः ॥ २९ ॥
सुप्रघ्नो वज्रकोपश्च दुर्मुखो दूषणः खरः ।
त्रिशिराः करवीराक्षः सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥ ३० ॥
महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यैर्महाबलः ॥ ३१ ॥
रावणस्यार्यकः सैन्यं सुमाली प्रविवेश ह ।

मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, शारण, संह्राद, धूमकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्राद, विरूपाक्ष, सुप्रघ्न, वज्रकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक तथा नरान्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंसे घिरे हुए महाबली सुमालीने, जो रावणका नाना था, देवताओंकी सेनामें प्रवेश किया ॥ २८—३१½ ॥

स दैवतगणान् सर्वान् नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ३२ ॥
व्यध्वंसयत् समं क्रुद्धो वायुर्जलधरानिव ।

उसने कुपित हो नाना प्रकारके पैने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवताओंको उसी तरह मार भगाया, जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ३२½ ॥

तद् दैवतबलं राम हन्यमानं निशाचरैः ॥ ३३ ॥
प्रणुन्नं सर्वतो दिग्भ्यः सिंहनुन्ना मृगा इव ।

श्रीराम ! निशाचरोंकी मार खाकर देवताओंकी वह सेना सिंहद्वारा खदेड़े गये मृगोंकी भाँति सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चली ॥ ३३½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो वसूनामष्टमो वसुः ॥ ३४ ॥
सावित्र इति विख्यातः प्रविवेश रणाजिरम् ।

इसी समय वसुओंमेंसे आठवें वसुने, जिनका नाम सावित्र है, समराङ्गणमें प्रवेश किया ॥ ३४½ ॥

सैन्यैः परिवृतो हृष्टैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ॥ ३५ ॥
त्रासयञ्शत्रुसैन्यानि प्रविवेश रणाजिरम् ।

वे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं उत्साहित सैनिकोंसे घिरे हुए थे । उन्होंने शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए रणभूमिमें पदार्पण किया ॥ ३५½ ॥

तथादित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूषा च तौ समम् ॥ ३६ ॥
निर्भयौ सह सैन्येन तदा प्राविशतां रणे ।

इनके सिवा अदितिके दो महापराक्रमी पुत्र त्वष्टा और पूषाने अपनी सेनाके साथ एक ही समय युद्धस्थलमें प्रवेश किया, वे दोनों वीर निर्भय थे ॥ ३६½ ॥

ततो युद्धं समभवत् सुराणां सह राक्षसैः ॥ ३७ ॥
क्रुद्धानां रक्षसां कीर्तिं समरेष्वनिवर्तिनाम् ।

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा । युद्धसे पीछे न हटनेवाले राक्षसोंकी बढ़ती हुई कीर्ति देख-सुनकर देवता उनके प्रति बहुत कुपित थे ॥ ३७½ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विबुधान् समरे स्थितान् ॥ ३८ ॥
नानाप्रहरणैर्घोरैर्जघ्नुः शतसहस्रशः ।

तत्पश्चात् समस्त राक्षस समरभूमिमें खड़े हुए लाखों देवताओंको नाना प्रकारके घोर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मारने लगे ॥ ३८½ ॥

देवाश्च राक्षसान् घोरान् महाबलपराक्रमान् ॥ ३९ ॥
समरे विमलैः शस्त्रैरुपनिन्युर्यमक्षयम् ।

इसी तरह देवता भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न घोर राक्षसोंको समराङ्गणमें चमकीले अस्त्र-शस्त्रोंसे मार-मारकर यमलोक भेजने लगे ॥ ३९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ॥ ४० ॥
नानाप्रहरणैः क्रुद्धस्तत्सैन्यं सोऽभ्यवर्तत ।
स दैवतबलं सर्वं नानाप्रहरणैः शितैः ॥ ४१ ॥
व्यध्वंसयत संक्रुद्धो वायुर्जलधरं यथा ।

श्रीराम ! इसी बीचमें सुमाली नामक राक्षसने कुपित होकर नाना प्रकारके आयुधोंद्वारा देवसेनापर आक्रमण

किया। उसने अत्यन्त क्रोधसे भरकर बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देनेवाली वायुके समान अपने भाँति-भाँतिके तीखे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समस्त देवसेनाको तितर-बितर कर दिया ॥४०-४१½॥

ते महाबाणवर्षैश्च शूलप्रासैः सुदारुणैः ॥ ४२ ॥
हन्यमानाः सुराः सर्वे न व्यतिष्ठन्त संहताः ।

उसके महान् बाणों और भयङ्कर शूलों एवं प्रासोंकी वर्षासे मारे जाते हुए सभी देवता युद्धक्षेत्रमें संगठित होकर खड़े न रह सके ॥४२½॥

ततो विद्राव्यमाणेषु दैवतेषु सुमालिना ॥ ४३ ॥
वसूनामष्टमः क्रुद्धः सावित्रो वै व्यवस्थितः ।
संवृतः स्वैरथानीकैः प्रहरन्तं निशाचरम् ॥ ४४ ॥

सुमालीद्वारा देवताओंके भगाये जानेपर आठवें वसु सावित्रको बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी रथसेनाओंके साथ आकर उस प्रहार करनेवाले निशाचरके सामने खड़े हो गये ॥ ४३-४४ ॥

विक्रमेण महातेजा वारयामास संयुगे ।
ततस्तयोर्महद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
सुमालिनो वसोश्चैव समरेष्वनिवर्तिनोः ।

महातेजस्वी सावित्रने युद्धस्थलमें अपने पराक्रमद्वारा सुमालीको आगे बढ़नेसे रोक दिया। सुमाली और वसु दोनोंमेंसे कोई भी युद्धसे पीछे हटनेवाला नहीं था; अतः उन दोनोंमें महान् एवं रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया ॥४५½॥

ततस्तस्य महाबाणैर्वसुना सुमहात्मना ॥ ४६ ॥
निहतः पन्नगरथः क्षणेन विनिपातितः ।

तदनन्तर महात्मा वसुने अपने विशाल बाणोंद्वारा सुमालीके सर्प जुते हुए रथको क्षणभरमें तोड़-फोड़कर गिरा दिया ॥४६½॥

हत्वा तु संयुगे तस्य रथं बाणशतैश्चितम् ॥ ४७ ॥
गदां तस्य वधार्थाय वसुर्जग्राह पाणिना ।
ततः प्रगृह्य दीप्ताग्रां कालदण्डोपमां गदाम् ॥ ४८ ॥
तां मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ।

युद्धस्थलमें सैकड़ों बाणोंसे छिदे हुए सुमालीके रथको नष्ट करके वसुने उस निशाचरके वधके लिये कालदण्डके समान एक भयङ्कर गदा हाथमें ली, जिसका अग्रभाग अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसे लेकर सावित्रने सुमालीके मस्तकपर दे मारा ॥४७-४८½॥

सा तस्योपरि चोल्काभा पतन्ती विबभौ गदा ॥ ४९ ॥
इन्द्रप्रमुक्ता गर्जन्ती गिराविव महाशनिः ।

उसके ऊपर गिरती हुई वह गदा उल्काके समान चमक उठी, मानो इन्द्रके द्वारा छोड़ी गयी विशाल अशनि भारी गड़गड़ाहटके साथ किसी पर्वतके शिखरपर गिर रही हो ॥४९½॥

तस्य नैवास्थि न शिरो न मांसं ददृशे तदा ॥ ५० ॥
गदया भस्मतां नीतं निहतस्य रणाजिरे ।

उसकी चोट लगते ही समराङ्गणमें सुमालीका काम तमाम हो गया। न उसकी हड्डीका पता लगा, न मस्तकका और न कहीं उसका मांस ही दिखायी दिया। वह सब कुछ उस गदाकी आगसे भस्म हो गया ॥५०½॥

तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये राक्षसास्ते समन्ततः ॥ ५१ ॥
व्यद्रवन् सहिताः सर्वे क्रोशमानाः परस्परम् ।
विद्राव्यमाणा वसुना राक्षसा नावतस्थिरे ॥ ५२ ॥

युद्धमें सुमालीको मारा गया देख वे सब राक्षस एक-दूसरेको पुकारते हुए एक साथ चारों ओर भाग खड़े हुए। वसुके द्वारा खदेड़े जानेवाले वे राक्षस समरभूमिमें खड़े न रह सके ॥ ५१-५२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २७ ॥

—★—

अष्टाविंशः सर्गः

मेघनाद और जयन्तका युद्ध, पुलोमाका जयन्तको अन्यत्र ले जाना, देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें पदार्पण, रुद्रों तथा मरुद्गणोंद्वारा राक्षससेनाका संहार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध

सुमालिनं हतं दृष्ट्वा वसुना भस्मसात्कृतम् ।
स्वसैन्यं विद्रुतं चापि लक्षयित्वार्दितं सुरैः ॥ १ ॥
ततः स बलवान् क्रुद्धो रावणस्य सुतस्तदा ।
निवर्त्य राक्षसान् सर्वान् मेघनादो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

सुमाली मारा गया, वसुने उसके शरीरको भस्म कर दिया और देवताओंसे पीड़ित होकर मेरी सेना भागी जा रही है, यह देख रावणका बलवान् पुत्र मेघनाद कुपित हो समस्त राक्षसोंको लौटाकर देवताओंसे लोहा लेनेके लिये स्वयं खड़ा हुआ ॥ १-२ ॥

स रथेनाग्निवर्णेन कामगेन महारथः ।
अभिदुद्राव सेनां तां वनान्यग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

वह महारथी वीर इच्छानुसार चलनेवाले अग्नितुल्य

तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वनमें फैलनेवाले प्रज्वलित दावानलके समान उस देवसेनाकी ओर दौड़ा ॥ ३ ॥

ततः प्रविशतस्तस्य विविधायुधधारिणः ।
विदुद्रुवुर्दिशः सर्वा दर्शनादेव देवताः ॥ ४ ॥

नाना प्रकारके आयुध धारण करके अपनी सेनामें प्रवेश करनेवाले उस मेघनादको देखते ही सब देवता सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग चले ॥ ४ ॥

न बभूव तदा कश्चिद् युयुत्सोरस्य सम्मुखे ।
सर्वानाविद्ध्य वित्रस्तांस्ततः शक्रोऽब्रवीत् सुरान् ॥ ५ ॥

उस समय युद्धकी इच्छावाले मेघनादके सामने कोई भी खड़ा न हो सका। तब भयभीत हुए उन समस्त देवताओंको फटकारकर इन्द्रने उनसे कहा— ॥ ५ ॥

न भेतव्यं न गन्तव्यं निवर्तध्वं रणे सुराः ।
एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥ ६ ॥

'देवताओ ! भय न करो, युद्ध छोड़कर न जाओ और रणक्षेत्रमें लौट आओ। यह मेरा पुत्र जयन्त, जो कभी किसीसे परास्त नहीं हुआ है, युद्धके लिये जा रहा है' ॥ ६ ॥

ततः शक्रसुतो देवो जयन्त इति विश्रुतः ।
रथेनाद्भुतकल्पेन संग्रामे सोऽभ्यवर्तत ॥ ७ ॥

तदनन्तर इन्द्रपुत्र जयन्तदेव अद्भुत सजावटसे युक्त रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये आया ॥ ७ ॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे परिवार्य शचीसुतम् ।
रावणस्य सुतं युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे ॥ ८ ॥

फिर तो सब देवता शचीपुत्र जयन्तको चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें आये और रावणके पुत्रपर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां युद्धं समभवत् सदृशं देवरक्षसाम् ।
महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥

उस समय देवताओंका राक्षसोंके साथ और महेन्द्र-कुमारका रावणपुत्रके साथ उनके बल-पराक्रमके अनुरूप युद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

ततो मातलिपुत्रस्य गोमुखस्य स रावणिः ।
सारथेः पातयामास शरान् कनकभूषणान् ॥ १० ॥

रावणकुमार मेघनाद जयन्तके सारथि मातलिपुत्र गोमुखपर सुवर्णभूषित बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १० ॥

शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।
तं चापि रावणिः क्रुद्धः समन्तात् प्रत्यविध्यत ॥ ११ ॥

शचीपुत्र जयन्तने भी मेघनादके सारथिको घायल कर दिया। तब कुपित हुए मेघनादने जयन्तको भी सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ।
रावणिः शक्रतनयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १२ ॥

उस समय क्रोधसे भरा हुआ बलवान् मेघनाद इन्द्रपुत्र जयन्तको आँखें फाड़-फाड़कर देखने और बाणोंकी वर्षासे पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥

ततो नानाप्रहरणाञ्छितधारान् सहस्रशः ।
पातयामास संक्रुद्धः सुरसैन्येषु रावणिः ॥ १३ ॥

अत्यन्त कुपित हुए रावणकुमारने देवताओंकी सेनापर भी तीखी धारवाले नाना प्रकारके सहस्रों अस्त्र-शस्त्र बरसाये ॥ १३ ॥

शतघ्नीमुसलप्रासगदाखड्गपरश्वधान् ।
महान्ति गिरिशृङ्गाणि पातयामास रावणिः ॥ १४ ॥

उसने शतघ्नी, मूसल, प्रास, गदा, खड्ग और फरसे गिराये तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर भी चलाये ॥ १४ ॥

ततः प्रव्यथिताः लोकाः संजज्ञे च तमस्ततः ।
तस्य रावणपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निघ्नतः ॥ १५ ॥

शत्रुसेनाओंके संहारमें लगे हुए रावणकुमारकी मायासे उस समय चारों ओर अन्धकार छा गया; अतः समस्त लोक व्यथित हो उठे ॥ १५ ॥

ततस्तद् दैवतबलं समन्तात् तं शचीसुतम् ।
बहुप्रकारमस्वस्थमभवच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥

तब शचीकुमारके चारों ओर खड़ी हुई देवताओंकी वह सेना बाणोंद्वारा पीड़ित हो अनेक प्रकारसे अस्वस्थ हो गयी ॥ १६ ॥

नाभ्यजानन्त चान्योन्यं रक्षो वा देवताथवा ।
तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात् परिधावत ॥ १७ ॥

राक्षस और देवता आपसमें किसीको पहचान न सके। वे जहाँ-तहाँ बिखरे हुए चारों ओर चक्कर काटने लगे ॥ १७ ॥

देवा देवान् निजघ्नुस्ते राक्षसान् राक्षसास्तथा ।
सम्मूढास्तमसाच्छन्ना व्यद्रवन्नपरे तथा ॥ १८ ॥

अन्धकारसे आच्छादित होकर वे विवेकशक्ति खो बैठे थे। अतः देवता देवताओंको और राक्षस राक्षसोंको ही मारने लगे तथा बहुतेरे योद्धा युद्धसे भाग खड़े हुए ॥ १८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः पुलोमा नाम वीर्यवान् ।
दैत्येन्द्रस्तेन संगृह्य शचीपुत्रोऽपवाहितः ॥ १९ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी वीर दैत्यराज पुलोमा युद्धमें आया और शचीपुत्र जयन्तको पकड़कर वहाँसे दूर हटा ले गया ॥ १९ ॥

संगृह्य तं तु दौहित्रं प्रविष्टः सागरं तदा ।
आर्यकः स हि तस्यासीत् पुलोमा येन सा शची ॥ २० ॥

वह शचीका पिता और जयन्तका नाना था, अतः अपने दौहित्रको लेकर समुद्रमें घुस गया ॥ २० ॥

ज्ञात्वा प्रणाशं तु तदा जयन्तस्याथ देवताः ।
अप्रहृष्टास्ततः सर्वा व्यथिताः सम्प्रदुद्रुवुः ॥ २१ ॥

देवताओंको जब जयन्तके गायब होनेकी बात मालूम

हुई, तब उनकी सारी खुशी छिन गयी और वे दुःखी होकर चारों ओर भागने लगे ॥ २१ ॥

रावणिस्त्वथ संक्रुद्धो बलैः परिवृतः स्वकैः ।
अभ्यधावत देवांस्तान् मुमोच च महास्वनम् ॥ २२ ॥

उधर अपनी सेनाओंसे घिरे हुए रावणकुमार मेघनादने अत्यन्त कुपित हो देवताओंपर धावा किया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा प्रणाशं पुत्रस्य दैवतेषु च विद्रुतम् ।
मातलिं चाह देवेशो रथः समुपनीयताम् ॥ २३ ॥

पुत्र लापता हो गया और देवताओंकी सेनामें भगदड़ मच गयी है—यह देखकर देवराज इन्द्रने मातलिसे कहा—'मेरा रथ ले आओ' ॥ २३ ॥

स तु दिव्यो महाभीमः सज्ज एव महारथः ।
उपस्थितो मातलिना वाह्यमानो महाजवः ॥ २४ ॥

मातलिने एक सजा-सजाया महाभयङ्कर, दिव्य एवं विशाल रथ लाकर उपस्थित कर दिया। उसके द्वारा हाँका जानेवाला वह रथ बड़ा ही वेगशाली था ॥ २४ ॥

ततो मेघा रथे तस्मिंस्तडित्वन्तो महाबलाः ।
अग्रतो वायुचपला नेदुः परमनिःस्वनाः ॥ २५ ॥

तदनन्तर उस रथपर बिजलीसे युक्त महाबली मेघ उसके अग्र-भागमें वायुसे चञ्चल हो बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ २५ ॥

नानावाद्यानि वाद्यन्त गन्धर्वाश्च समाहिताः ।
ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा निर्याते त्रिदशेश्वरे ॥ २६ ॥

देवेश्वर इन्द्रके निकलते ही नाना प्रकारके बाजे बज उठे, गन्धर्व एकाग्र हो गये और अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां समरुद्गणैः ।
वृतो नानाप्रहरणैर्निर्ययौ त्रिदशाधिपः ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, अश्विनीकुमारों और मरुद्गणोंसे घिरे हुए देवराज इन्द्र नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लिये पुरीसे बाहर निकले ॥ २७ ॥

निर्गच्छतस्तु शक्रस्य परुषः पवनो ववौ ।
भास्करो निष्प्रभश्चैव महोल्काश्च प्रपेदिरे ॥ २८ ॥

इन्द्रके निकलते ही प्रचण्ड वायु चलने लगी। सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और आकाशसे बड़ी-बड़ी उल्काएँ गिरने लगीं ॥ २८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥

इसी बीचमें प्रतापी वीर दशग्रीव भी विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य रथपर सवार हुआ ॥ २९ ॥

पन्नगैः सुमहाकायैर्वेष्टितं लोमहर्षणैः ।
येषां निःश्वासवातेन प्रदीप्तमिव संयुगे ॥ ३० ॥

उस रथमें रोंगटे खड़े कर देनेवाले विशालकाय सर्प लिपटे हुए थे। उनकी निःश्वास-वायुसे वह रथ उस युद्धस्थलमें ज्वलित-सा जान पड़ता था ॥ ३० ॥

दैत्यैर्निशाचरैश्चैव स रथः परिवारितः ।
समराभिमुखो दिव्यो महेन्द्रं सोऽभ्यवर्तत ॥ ३१ ॥

दैत्यों और निशाचरोंने उस रथको सब ओरसे घेर रखा था। समराङ्गणकी ओर बढ़ता हुआ रावणका वह दिव्य रथ महेन्द्रके सामने जा पहुँचा ॥ ३१ ॥

पुत्रं तं वारयित्वा तु स्वयमेव व्यवस्थितः ।
सोऽपि युद्धाद् विनिष्क्रम्य रावणिः समुपाविशत् ॥ ३२ ॥

रावण अपने पुत्रको रोककर स्वयं ही युद्धके लिये खड़ा हुआ। तब रावणपुत्र मेघनाद युद्धस्थलसे निकलकर चुपचाप अपने रथपर जा बैठा ॥ ३२ ॥

ततो युद्धे प्रवृत्ते तु सुराणां राक्षसैः सह ।
शस्त्राणि वर्षतां तेषां मेघानामिव संयुगे ॥ ३३ ॥

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। जलकी वर्षा करनेवाले मेघोंके समान देवता युद्धस्थलमें अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नानाप्रहरणोद्यतः ।
नाज्ञायत तदा राजन् युद्धे केनाभ्यपद्यत ॥ ३४ ॥

राजन्! दुष्टात्मा कुम्भकर्ण नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये किसके साथ युद्ध करता था, इसका पता नहीं लगता था (अर्थात् मतवाला होनेके कारण अपने और पराये सभी सैनिकोंके साथ जूझने लगता था) ॥ ३४ ॥

दन्तैः पादैर्भुजैर्हस्तैः शक्तितोमरमुद्गरैः ।
येन तेनैव संक्रुद्धस्ताडयामास देवताः ॥ ३५ ॥

वह अत्यन्त कुपित हो दाँत, लात, भुजा, हाथ, शक्ति, तोमर और मुद्गर आदि जो ही पाता उसीसे देवताओंको पीटता था ॥ ३५ ॥

स तु रुद्रैर्महाघोरैः संगम्याथ निशाचरः ।
प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

वह निशाचर महाभयङ्कर रुद्रोंके साथ भिड़कर घोर युद्ध करने लगा। संग्राममें रुद्रोंने अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा उसे ऐसा क्षत-विक्षत कर दिया था कि उसके शरीरमें थोड़ी-सी भी जगह बिना घावके नहीं रह गयी थी ॥ ३६ ॥

बभौ शस्त्राचिततनुः कुम्भकर्णः क्षरन्नसृक् ।
विद्युत्स्तनितनिर्घोषो धारावानिव तोयदः ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णका शरीर शस्त्रोंसे व्याप्त हो खूनकी धारा बहा रहा था। उस समय वह बिजली तथा गर्जनासे युक्त जलकी धारा गिरानेवाले मेघके समान जान पड़ता था ॥ ३७ ॥

ततस्तद् राक्षसं सैन्यं प्रयुद्धं समरुद्गणैः ।
रणे विद्रावितं सर्वं नानाप्रहरणैस्तदा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर घोर युद्धमें लगी हुई उस सारी राक्षससेनाको

रणभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले रुद्रों और मरुद्गणोंने मार भगाया ॥ ३८ ॥

केचिद् विनिहताः कृत्ताश्चेष्टन्ति स्म महीतले ।
वाहनेष्ववसक्ताश्च स्थिता एवापरे रणे ॥ ३९ ॥

कितने ही निशाचर मारे गये। कितने ही कटकर धरतीपर लोटने और छटपटाने लगे और बहुत-से राक्षस प्राणोंके हो जानेपर भी उस रणभूमिमें अपने वाहनोंपर ही चिपटे रहे ॥ ३९ ॥

रथान् नागान् खरानुष्ट्रान् पन्नगांस्तुरगांस्तथा ।
शिशुमारान् वराहांश्च पिशाचवदनानपि ॥ ४० ॥
तान् समालिङ्ग्य बाहुभ्यां विष्टब्धाः केचिदुत्थिताः ।
देवैस्तु शस्त्रसंपिन्ना मम्रिरे च निशाचराः ॥ ४१ ॥

कुछ राक्षस रथों, हाथियों, गदहों, ऊँटों, सर्पों, घोड़ों, शिशुमारों, वराहों तथा पिशाचमुख वाहनोंको दोनों भुजाओंसे पकड़कर उनसे लिपटे हुए निश्चेष्ट हो गये थे। कितने ही तो पहलेसे मूर्छित होकर पड़े थे, मूर्छा दूर होनेपर उठे, किंतु देवताओंके शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न हो मौतके मुखमें चले गये ॥ ४०-४१ ॥

चित्रकर्म इवाभाति सर्वेषां रणसम्भवः ।
निहतानां प्रसुप्तानां राक्षसानां महीतले ॥ ४२ ॥

प्राणोंसे हाथ धोकर धरतीपर पड़े हुए उन समस्त राक्षसोंका इस तरह युद्धमें मारा जाना जादू-सा आश्चर्यजनक जान पड़ता था ॥ ४२ ॥

शोणितोदकनिष्यन्दा काकगृध्रसमाकुला ।
प्रवृत्ता संयुगमुखे शस्त्रग्राहवती नदी ॥ ४३ ॥

युद्धके मुहानेपर खूनकी नदी बह चली, जिसके भीतर अनेक प्रकारके शस्त्र ग्राहोंका भ्रम उत्पन्न करते थे। उस नदीके तटपर चारों ओर गीध और कौए छा गये थे ॥ ४३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो दशग्रीवः प्रतापवान् ।
निरीक्ष्य तु बलं सर्वं दैवतैर्विनिपातितम् ॥ ४४ ॥

इसी बीचमें प्रतापी दशग्रीवने जब देखा कि देवताओंने हमारे समस्त सैनिकोंको मार गिराया है, तब उसके क्रोधकी सीमा न रही ॥ ४४ ॥

स तं प्रतिविगाह्याशु प्रवृद्धं सैन्यसागरम् ।
त्रिदशान् समरे निघ्नञ्शक्रमेवाभ्यवर्तत ॥ ४५ ॥

वह समुद्रके समान दूरतक फैली हुई देवसेनामें घुस गया और समराङ्गणमें देवताओंको मारता एवं धराशायी करता हुआ तुरंत ही इन्द्रके सामने जा पहुँचा ॥ ४५ ॥

ततः शक्रो महच्चापं विस्फार्य सुमहास्वनम् ।
यस्य विस्फारनिर्घोषैः स्तनन्ति स्म दिशो दश ॥ ४६ ॥

तब इन्द्रने जोर-जोरसे टङ्कार करनेवाले अपने विशाल धनुषको खींचा। उसकी टङ्कार-ध्वनिसे दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं ॥ ४६ ॥

तद् विकृष्य महच्चापमिन्द्रो रावणमूर्धनि ।
पातयामास स शरान् पावकादित्यवर्चसः ॥ ४७ ॥

इस विशाल धनुषको खींचकर इन्द्रने रावणके मस्तकपर अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाण मारे ॥ ४७ ॥

तथैव च महाबाहुर्दशग्रीवो निशाचरः ।
शक्रं कार्मुकविभ्रष्टैः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार महाबाहु निशाचर दशग्रीवने भी अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी वर्षासे इन्द्रको ढक दिया ॥ ४८ ॥

प्रयुध्यतोरथ तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ।
नाज्ञायत तदा किंचित् सर्वं हि तमसा वृतम् ॥ ४९ ॥

वे दोनों घोर युद्धमें तत्पर हो जब बाणोंकी वृष्टि करने लगे, उस समय सब ओर सब कुछ अन्धकारसे आच्छादित हो गया। किसीको किसी भी वस्तुकी पहचान नहीं हो पाती थी ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः

रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न, मेघनादका मायाद्वारा इन्द्रको बंदी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको लौटना

ततस्तमसि संजाते सर्वे ते देवराक्षसाः ।
अयुद्ध्यन्त बलोन्मत्ताः सूदयन्तः परस्परम् ॥ १ ॥

जब सब ओर अन्धकार छा गया, तब बलसे उन्मत्त हुए वे समस्त देवता और राक्षस एक-दूसरेको मारते हुए परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ततस्तु देवसैन्येन राक्षसानां बृहद् बलम् ।
दशांशं स्थापितं युद्धे शेषं नीतं यमक्षयम् ॥ २ ॥

उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विशाल सैन्य-समूहका केवल दसवाँ हिस्सा युद्धभूमिमें खड़ा रहने दिया। शेष सब राक्षसोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

तस्मिंस्तु तामसे युद्धे सर्वे ते देवराक्षसाः।
अन्योन्यं नाभ्यजानन्त युद्धमानाः परस्परम्॥ ३॥

उस तामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर जूझते हुए एक-दूसरेको पहचान नहीं पाते थे॥ ३॥

इन्द्रश्च रावणश्चैव रावणिश्च महाबलः।
तस्मिंस्तमोजालवृते मोहमीयुर्न ते त्रयः॥ ४॥

इन्द्र, रावण और रावणपुत्र महाबली मेघनाद—ये तीन ही उस अन्धकाराच्छन्न समराङ्गणमें मोहित नहीं हुए थे॥ ४॥

स तु दृष्ट्वा बलं सर्वं रावणो निहतं क्षणात्।
क्रोधमभ्यगमत् तीव्रं महानादं च मुक्तवान्॥ ५॥

रावणने देखा, मेरी सारी सेना क्षणभरमें मारी गयी, तब उसके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने बड़ी भारी गर्जना की॥ ५॥

क्रोधात् सूतं च दुर्धर्षः स्यन्दनस्थमुवाच ह।
परसैन्यस्य मध्येन यावदन्तो नयस्व माम्॥ ६॥

उस दुर्जय निशाचरने रथपर बैठे हुए अपने सारथिसे क्रोध-पूर्वक कहा—'सूत! शत्रुओंकी इस सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक तुम इस सेनाके मध्यभागसे होकर मुझे ले चलो॥ ६॥

अद्यैतान् त्रिदशान् सर्वान् विक्रमैः समरे स्वयम्।
नानाशस्त्रमहासारैर्नयामि यमसादनम्॥ ७॥

'आज मैं स्वयं अपने पराक्रमद्वारा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी महान् धारावाहित वृष्टि करके इन सब देवताओंको यमलोक पहुँचा दूँगा॥ ७॥

अहमिन्द्रं वधिष्यामि धनदं वरुणं यमम्।
त्रिदशान् विनिहत्याशु स्वयं स्थास्याम्यधोपरि॥ ८॥

'मैं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमका भी वध करूँगा। सब देवताओंका शीघ्र ही संहार करके स्वयं सबके ऊपर स्थित होऊँगा॥ ८॥

विषादो नैव कर्तव्यः शीघ्रं वाहय मे रथम्।
द्विः खलु त्वां ब्रवीम्यद्य यावदन्तं नयस्व माम्॥ ९॥

'तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये। शीघ्र मेरे रथको ले चलो। मैं तुमसे दो बार कहता हूँ, देवताओंकी सेनाका जहाँतक अन्त है, वहाँतक मुझे अभी ले चलो॥ ९॥

अयं स नन्दनोद्देशो यत्र वर्तावहे वयम्।
नय मामद्य तत्र त्वमुदयो यत्र पर्वतः॥ १०॥

'यह नन्दनवनका प्रदेश है, जहाँ इस समय हम दोनों मौजूद हैं। यहींसे देवताओंकी सेनाका आरम्भ होता है। अब तुम मुझे उस स्थानतक ले चलो, जहाँ उदयाचल है (नन्दनवनसे उदयाचलतक देवताओंकी सेना फैली हुई है)'॥ १०॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तुरगान् स मनोजवान्।
आविदेशाथ शत्रूणां मध्येनैव च सारथिः॥ ११॥

रावणकी यह बात सुनकर सारथिने मनके समान वेगशाली घोड़ोंको शत्रुसेनाके बीचसे हाँक दिया॥ ११॥

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा शक्रो देवेश्वरस्तदा।
रथस्थः समरस्थस्तान् देवान् वाक्यमथाब्रवीत्॥ १२॥

रावणके इस निश्चयको जानकर समरभूमिमें रथपर बैठे हुए देवराज इन्द्रने उन देवताओंसे कहा—॥ १२॥

सुराः शृणुत मद्वाक्यं यत् तावन्मम रोचते।
जीवन्नेव दशग्रीवः साधु रक्षो निगृह्यताम्॥ १३॥

'देवगण! मेरी बात सुनो। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इस निशाचर दशग्रीवको जीवित अवस्थामें ही भलीभाँति कैद कर लिया जाय॥ १३॥

एष ह्यतिबलः सैन्ये रथेन पवनौजसा।
गमिष्यति प्रवृद्धोर्मिः समुद्र इव पर्वणि॥ १४॥

'यह अत्यन्त बलशाली राक्षस वायुके समान वेगशाली रथके द्वारा इस सेनाके बीचमें होकर उसी तरह तीव्रगतिसे आगे बढ़ेगा, जैसे पूर्णिमाके दिन उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त समुद्र बढ़ता है॥ १४॥

नह्येष हन्तुं शक्योऽद्य वरदानात् सुनिर्भयः।
तद् ग्रहीष्यामहे रक्षो यत्ता भवत संयुगे॥ १५॥

'यह आज मारा नहीं जा सकता; क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे पूर्णतः निर्भय हो चुका है। इसलिये हमलोग इस राक्षसको पकड़कर कैद कर लेंगे। तुमलोग युद्धमें इस बातके लिये पूरा प्रयत्न करो॥ १५॥

यथा बलौ निरुद्धे च त्रैलोक्यं भुज्यते मया।
एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते॥ १६॥

'जैसे राजा बलिके बाँध लिये जानेपर ही मैं तीनों लोकोंके राज्यका उपभोग कर रहा हूँ, उसी प्रकार इस पापी निशाचरको बंदी बना लिया जाय, यही मुझे अच्छा लगता है'॥ १६॥

ततोऽन्यं देशमास्थाय शक्रः संत्यज्य रावणम्।
अयुध्यत महाराज राक्षसांस्त्रासयन् रणे॥ १७॥

महाराज श्रीराम! ऐसा कहकर इन्द्रने रावणके साथ युद्ध करना छोड़ दिया और दूसरी ओर जाकर समराङ्गणमें राक्षसोंको भयभीत करते हुए वे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ १७॥

उत्तरेण दशग्रीवः प्रविवेशानिवर्तकः।
दक्षिणेन तु पार्श्वेन प्रविवेश शतक्रतुः॥ १८॥

युद्धसे पीछे न हटनेवाले रावणने उत्तरकी ओरसे देवसेनामें प्रवेश किया और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे राक्षससेनामें॥ १८॥

ततः स योजनशतं प्रविष्टो राक्षसाधिपः।
देवतानां बलं सर्वं शरवर्षैरवाकिरत्॥ १९॥

देवताओंकी सेना चार सौ कोसतक फैली हुई थी।

राक्षसराज रावणने उसके भीतर घुसकर समूची देवसेनाको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ १९ ॥

ततः शक्रो निरीक्ष्याथ प्रणष्टं तु स्वकं बलम् ।
न्यवर्तयदसम्भ्रान्तः समावृत्य दशाननम् ॥ २० ॥

अपनी विशाल सेनाको नष्ट होती देख इन्द्रने बिना किसी घबराहटके दशमुख रावणका सामना किया और उसे चारों ओरसे घेरकर युद्धसे विमुख कर दिया ॥ २० ॥

एतस्मिन्नन्तरे नादो मुक्तो दानवराक्षसैः ।
हा हताः स्म इति ग्रस्तं दृष्ट्वा शक्रेण रावणम् ॥ २१ ॥

इसी समय रावणको इन्द्रके चंगुलमें फँसा हुआ देख दानवों तथा राक्षसोंने 'हाय ! हम मारे गये' ऐसा कहकर बड़े जोरसे आर्तनाद किया ॥ २१ ॥

ततो रथं समास्थाय रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
तत् सैन्यमतिसंक्रुद्धः प्रविवेश सुदारुणम् ॥ २२ ॥

तब रावणका पुत्र मेघनाद क्रोधसे अचेत-सा हो गया और रथपर बैठकर अत्यन्त कुपित हो उसने शत्रुको भयंकर सेनामें प्रवेश किया ॥ २२ ॥

तां प्रविश्य महामायां प्राप्तां पशुपतेः पुरा ।
प्रविवेश सुसंरब्धस्तत् सैन्यं समभिद्रवत् ॥ २३ ॥

पूर्वकालमें पशुपति महादेवजीसे उसको जो तमोमयी महामाया प्राप्त हुई थी, उसमें प्रवेश करके उसने अपनेको छिपा लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक शत्रुसेनामें घुसकर उसे खदेड़ना आरम्भ किया ॥ २३ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्वा शक्रमेवाभ्यधावत ।
महेन्द्रश्च महातेजा नापश्यच्च सुतं रिपोः ॥ २४ ॥

वह सब देवताओंको छोड़कर इन्द्रपर ही टूट पड़ा, परंतु महातेजस्वी इन्द्र अपने शत्रुके उस पुत्रको देख न सके ॥ २४ ॥

विमुक्तकवचस्तत्र वध्यमानोऽपि रावणिः ।
त्रिदशैः सुमहावीर्यैर्न चकार च किंचन ॥ २५ ॥

महापराक्रमी देवताओंकी मार खानेसे यद्यपि वहाँ रावणकुमारका कवच नष्ट हो गया था, तथापि उसने अपने मनमें तनिक भी भय नहीं किया ॥ २५ ॥

स मातलिं समायान्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
महेन्द्रं बाणवर्षेण भूय एवाभ्यवाकिरत् ॥ २६ ॥

उसने अपने सामने आते हुए मातलिको उत्तम बाणोंसे घायल करके सायकोंकी झड़ी लगाकर पुनः देवराज इन्द्रको भी ढक दिया ॥ २६ ॥

ततस्त्यक्त्वा रथं शक्रो विससर्ज च सारथिम् ।
ऐरावतं समारुह्य मृगयामास रावणिम् ॥ २७ ॥

तब इन्द्रने रथको छोड़कर सारथिको विदा कर दिया और ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो वे रावणकुमारकी खोज करने लगे ॥ २७ ॥

स तत्र मायाबलवानदृश्योऽथान्तरिक्षगः ।
इन्द्रं मायापरिक्षिप्तं कृत्वा स प्राद्रवच्छरैः ॥ २८ ॥

मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रबल हो रहा था । वह अदृश्य होकर आकाशमें विचरने लगा और इन्द्रको मायासे व्याकुल करके बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ २८ ॥

स तं यदा परिश्रान्तमिन्द्रं जज्ञेऽथ रावणिः ।
तदैनं मायया बद्ध्वा स्वसैन्यमभितोऽनयत् ॥ २९ ॥

रावणकुमारको जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि इन्द्र बहुत थक गये हैं, तब उन्हें मायासे बाँधकर अपनी सेनामें ले आया ॥ २९ ॥

तं तु दृष्ट्वा बलात् तेन नीयमानं महारणात् ।
महेन्द्रममराः सर्वे किं नु स्यादित्यचिन्तयन् ॥ ३० ॥

महेन्द्रको उस महासमरसे मेघनादद्वारा बलपूर्वक ले जाये जाते देख सब देवता यह सोचने लगे कि अब क्या होगा ? ॥ ३० ॥

दृश्यते न स मायावी शक्रजित् समितिंजयः ।
विद्यावानपि येनेन्द्रो माययापहृतो बलात् ॥ ३१ ॥

'यह युद्धविजयी मायावी राक्षस स्वयं तो दिखायी देता नहीं, इसीलिये इन्द्रपर विजय पानेमें सफल हुआ है । यद्यपि देवराज इन्द्र राक्षसी मायाका संहार करनेकी विद्या जानते हैं, तथापि इस राक्षसने मायाद्वारा बलपूर्वक इनका अपहरण किया है' ॥ ३१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धाः सर्वे सुरगणास्तदा ।
रावणं विमुखीकृत्य शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ३२ ॥

ऐसा सोचते हुए वे सब देवता उस समय रोषसे भर गये और रावणको युद्धसे विमुख करके उसपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे ॥ ३२ ॥

रावणस्तु समासाद्य आदित्यांश्च वसूंस्तदा ।
न शशाक स संग्रामे योद्धुं शत्रुभिरर्दितः ॥ ३३ ॥

रावण आदित्यों और वसुओंका सामना पड़ जानेपर युद्धमें उनके सम्मुख ठहर न सका; क्योंकि शत्रुओंने उसे बहुत पीड़ित कर दिया था ॥ ३३ ॥

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ।
रावणिः पितरं युद्धेऽदर्शनस्थोऽब्रवीदिदम् ॥ ३४ ॥

मेघनादने देखा पिताका शरीर बाणोंके प्रहारसे जर्जर हो गया है और वे युद्धमें उदास दिखायी देते हैं । तब वह अदृश्य रहकर ही रावणसे इस प्रकार बोला— ॥ ३४ ॥

आगच्छ तात गच्छामो रणकर्म निवर्तताम् ।
जितं नो विदितं तेऽस्तु स्वस्थो भव गतज्वरः ॥ ३५ ॥

'पिताजी ! चलें आइये । अब हमलोग घर चलें । युद्ध बंद कर दिया जाय । हमारी जीत हो गयी; अतः आप स्वस्थ, निश्चिन्त एवं प्रसन्न हो जाइये ॥ ३५ ॥

अयं हि सुरसैन्यस्य त्रैलोक्यस्य च यः प्रभुः ।
स गृहीतो देवबलाद् भग्नदर्पाः सुराः कृताः ॥ ३६ ॥

'ये जो देवताओंकी सेना तथा तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्र हैं, इन्हें मैं देवसेनाके बीचसे कैद कर लाया हूँ। ऐसा करके मैंने देवताओंका घमंड चूर कर दिया है ॥ ३६ ॥

यथेष्टं भुङ्क्ष्व लोकांस्त्रीन् निगृह्यारातिमोजसा ।
वृथा किं ते श्रमेणेह युद्धमद्य तु निष्फलम् ॥ ३७ ॥

'आप अपने शत्रुको बलपूर्वक कैद करके इच्छानुसार तीनों लोकोंका राज्य भोगिये। यहाँ व्यर्थ श्रम करनेसे आपको क्या लाभ है ? अब युद्धसे कोई प्रयोजन नहीं है' ॥ ३७ ॥

ततस्ते दैवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।
तच्छ्रुत्वा रावणेर्वाक्यं शक्रहीनाः सुरा गताः ॥ ३८ ॥

मेघनादकी यह बात सुनकर सब देवता युद्धसे निवृत्त हो गये और इन्द्रको साथ लिये बिना ही लौट गये ॥ ३८ ॥

अथ रणविगतः स उत्तमौजा-
स्त्रिदशरिपुः प्रथितो निशाचरेन्द्रः ।
स्वसुतवचनमादृतः प्रियं तत्
समनुनिशम्य जगाद चैव सूनुम् ॥ ३९ ॥

अपने पुत्रके उस प्रिय वचनको आदरपूर्वक सुनकर महान् बलशाली देवद्रोही तथा सुविख्यात राक्षसराज रावण युद्धसे निवृत्त हो गया और अपने बेटेसे बोला— ॥ ३९ ॥

अतिबलसदृशैः पराक्रमैस्त्वं
मम कुलवंशविवर्धनः प्रभो ।
यदयमतुल्यबलस्त्वयाद्य वै
त्रिदशपतिस्त्रिदशाश्च निर्जिताः ॥ ४० ॥

'सामर्थ्यशाली पुत्र ! अपने अत्यन्त बलके अनुरूप पराक्रम प्रकट करके आज तुमने जो इन अनुपम बलशाली देवराज इन्द्रको जीता और देवताओंको भी परास्त किया है, इससे यह निश्चय हो गया कि तुम मेरे कुल और वंशके यश और सम्मानको वृद्धि करनेवाले हो ॥ ४० ॥

नय रथमधिरोप्य वासवं नगर-
मितो व्रज सेनया वृतस्त्वम् ।
अहमपि तव पृष्ठतो द्रुतं
सह सचिवैरनुयामि हृष्टवत् ॥ ४१ ॥

'बेटा ! इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाके साथ यहाँसे लङ्कापुरीको चलो ! मैं भी अपने मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ ॥ ४१ ॥

अथ स बलवृतः सवाहन-
स्त्रिदशपतिं परिगृह्य रावणिः ।
स्वभवनमधिगम्य वीर्यवान्
कृतसमरान् विससर्ज राक्षसान् ॥ ४२ ॥

पिताकी यह आज्ञा पाकर पराक्रमी रावणकुमार मेघनाद देवराजको साथ ले सेना और सवारियोंसहित अपने निवासस्थानको लौटा। वहाँ पहुँचकर उसने युद्धमें भाग लेनेवाले निशाचरोंको विदा कर दिया ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

—★—

त्रिंशः सर्गः

ब्रह्माजीका इन्द्रजित्‌को वरदान देकर इन्द्रको उसकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत पापकर्मको याद दिलाकर उनसे वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये कहना, उस यज्ञको पूर्ण करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना

जिते महेन्द्रेऽतिबले रावणस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्कृत्य ययुर्लङ्कां सुरास्तदा ॥ १ ॥

रावणपुत्र मेघनाद जब अत्यन्त बलशाली इन्द्रको जीतकर अपने नगरमें ले गया, तब सम्पूर्ण देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके लङ्कामें पहुँचे ॥ १ ॥

तत्र रावणमासाद्य पुत्रभ्रातृभिरावृतम् ।
अब्रवीद् गगने तिष्ठन् सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥

ब्रह्माजी आकाशमें खड़े-खड़े ही पुत्रों और भाइयोंके साथ बैठे हुए रावणके निकट जा उसे कोमल वाणीमें समझाते हुए बोले— ॥ २ ॥

वत्स रावण तुष्टोऽस्मि पुत्रस्य तव संयुगे ।
अहोऽस्य विक्रमौदार्यं तव तुल्योऽधिकोऽपि वा ॥ ३ ॥

'वत्स रावण ! युद्धमें तुम्हारे पुत्रकी वीरता देखकर मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ। अहो ! इसका उदार पराक्रम तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर है ॥ ३ ॥

जितं हि भवता सर्वं त्रैलोक्यं स्वेन तेजसा ।
कृता प्रतिज्ञा सफला प्रीतोऽस्मि ससुतस्य ते ॥ ४ ॥

'तुमने अपने तेजसे समस्त त्रिलोकीपर विजय पायी है

और अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली है। इसलिये पुत्रसहित तुमपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

अयं च पुत्रोऽतिबलस्तव रावण वीर्यवान्।
जगतीन्द्रजिदित्येव परिख्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥

'रावण! तुम्हारा यह पुत्र अतिशय बलशाली और पराक्रमी है। आजसे यह संसारमें इन्द्रजित्‌के नामसे विख्यात होगा ॥ ५ ॥

बलवान् दुर्जयश्चैव भविष्यत्येव राक्षसः।
यं समाश्रित्य ते राजन् स्थापितास्त्रिदशा वशे ॥ ६ ॥

'राजन्! यह राक्षस बड़ा बलवान् और दुर्जय होगा, जिसका आश्रय लेकर तुमने समस्त देवताओंको अपने अधीन कर लिया ॥ ६ ॥

तन्मुच्यतां महाबाहो महेन्द्रः पाकशासनः।
किं चास्य मोक्षणार्थाय प्रयच्छन्तु दिवौकसः ॥ ७ ॥

'महाबाहो! अब तुम पाकशासन इन्द्रको छोड़ दो और बताओ इन्हें छोड़नेके बदलेमें देवता तुम्हें क्या दें' ॥ ७ ॥

अथाब्रवीन्महातेजा इन्द्रजित् समितिंजयः।
अमरत्वमहं देव वृणे यद्येष मुच्यते ॥ ८ ॥

तब युद्धविजयी महातेजस्वी इन्द्रजित्‌ने स्वयं ही कहा—'देव! यदि इन्द्रको छोड़ना है तो मैं इसके बदलेमें अमरत्व लेना चाहता हूँ' ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा मेघनादं प्रजापतिः।
नास्ति सर्वामरत्वं हि कस्यचित् प्राणिनो भुवि ॥ ९ ॥
पक्षिणश्चतुष्पदो वा भूतानां वा महौजसाम्।

यह सुनकर महातेजस्वी प्रजापति ब्रह्माजीने मेघनादसे कहा—'बेटा! इस भूतलपर पक्षियों, चौपायों तथा महातेजस्वी मनुष्य आदि प्राणियोंमेंसे कोई भी प्राणी सर्वथा अमर नहीं हो सकता' ॥ ९½ ॥

श्रुत्वा पितामहेनोक्तमिन्द्रजित् प्रभुणाव्ययम् ॥ १० ॥
अथाब्रवीत् स तत्रस्थं मेघनादो महाबलः।

भगवान् ब्रह्माजीकी कही हुई यह बात सुनकर इन्द्रविजयी महाबली मेघनादने वहाँ खड़े हुए अविनाशी ब्रह्माजीसे कहा— ॥ १०½ ॥

श्रूयतां या भवेत् सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षणे ॥ ११ ॥
ममेष्टं नित्यशो हव्यैर्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम्।
संग्राममवतर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ १२ ॥
अश्वयुक्तो रथो मह्यमुत्तिष्ठेत् तु विभावसोः।
तत्स्थस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो वरः ॥ १३ ॥

'भगवन्! (यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है) तब इन्द्रको छोड़नेके सम्बन्धमें जो मेरी दूसरी शर्त है—जो दूसरी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे सुनिये। मेरे विषयमें यह सदाके लिये नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पानेकी इच्छासे संग्राममें उतरना चाहूँ और मन्त्रयुक्त हव्यकी आहुतिसे अग्निदेवकी पूजा करूँ, उस समय अग्निसे मेरे लिये एक ऐसा रथ प्रकट हो जाया करे, जो घोड़ोंसे जुता-जुताया तैयार हो और उसपर जबतक मैं बैठा रहूँ, तबतक मुझे कोई भी मार न सके, यही मेरा निश्चित वर है ॥ ११—१३ ॥

तस्मिन् यज्ञसमाप्ते च जप्यहोमे विभावसौ।
युध्येयं देव संग्रामे तदा मे स्याद् विनाशनम् ॥ १४ ॥

'यदि युद्धके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं समराङ्गणमें युद्ध करने लगूँ, तभी मेरा विनाश हो ॥ १४ ॥

सर्वो हि तपसा देव वृणोत्यमरतां पुमान्।
विक्रमेण मया त्वेतदमरत्वं प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥

'देव! सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं; परंतु मैंने पराक्रमद्वारा इस अमरत्वका वरण किया है' ॥ १५ ॥

एवमस्त्विति तं चाह वाक्यं देवः पितामहः।
मुक्तश्चेन्द्रजिता शक्रो गताश्च त्रिदिवं सुराः ॥ १६ ॥

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने कहा—'एवमस्तु (ऐसा ही हो)'। इसके बाद इन्द्रजित्‌ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और सब देवता उन्हें साथ लेकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राम दीनो भ्रष्टामरद्युतिः।
इन्द्रश्चिन्तापरीतात्मा ध्याननत्परतां गतः ॥ १७ ॥

श्रीराम! उस समय इन्द्रका देवोचित तेज नष्ट हो गया था। वे दुःखी हो चिन्तामें डूबकर अपनी पराजयका कारण सोचने लगे ॥ १७ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथा भूतं प्राह देवः पितामहः।
शतक्रतो किमु पुरा करोति स्म सुदुष्कृतम् ॥ १८ ॥

भगवान् ब्रह्माजीने उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया और कहा—'शतक्रतो! यदि आज तुम्हें इस अपमानसे शोक और दुःख हो रहा है तो बताओ पूर्वकालमें तुमने बड़ा भारी दुष्कर्म क्यों किया था? ॥ १८ ॥

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो।
एकवर्णाः समाभाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

'प्रभो! देवराज! पहले मैंने अपनी बुद्धिसे जिन प्रजाओंको उत्पन्न किया था, उन सबकी अङ्गकान्ति, भाषा, रूप और अवस्था सभी बातें एक-जैसी थीं ॥ १९ ॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा।
ततोऽहमेकाग्रमनास्ताः प्रजाः समचिन्तयम् ॥ २० ॥

'उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी। तब मैं एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विशेषता लानेके लिये कुछ विचार करने लगा ॥ २० ॥

सोऽहं तासां विशेषार्थं स्त्रियमेकां विनिर्ममे।
यद् यत् प्रजानां प्रत्यङ्गं विशिष्टं तत् तदुद्धृतम् ॥ २१ ॥

'विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रजाको प्रस्तुत करनेके लिये मैंने एक नारीकी सृष्टि की। प्रजाओंके प्रत्येक अङ्गमें जो-जो अद्भुत विशिष्टता—सारभूत सौन्दर्य था, उसे मैंने उसके अङ्गोंमें प्रकट किया ॥ २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहल्या स्त्री विनिर्मिता।
हलं नामेह वैरूप्यं हल्यं तत्प्रभवं भवेत् ॥ २२ ॥
यस्या न विद्यते हल्यं तेनाहल्येति विश्रुता।
अहल्येत्येव च मया तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

'उन अद्भुत रूप-गुणोंसे उपलक्षित जिस नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहल्या। इस जगत्में हल कहते हैं कुरूपताको, उससे जो निन्दनीयता प्रकट होती है उसका नाम हल्य है। जिस नारीमें हल्य (निन्दनीय रूप) न हो, वह अहल्या कहलाती है; इसीलिये वह नवनिर्मित नारी अहल्या नामसे विख्यात हुई। मैंने ही उसका नाम अहल्या रख दिया था ॥ २२-२३ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्यां सुरर्षभ।
भविष्यतीति कस्यैषा मम चिन्ता ततोऽभवत् ॥ २४ ॥

'देवेन्द्र! सुरश्रेष्ठ! जब उस नारीका निर्माण हो गया, तब मेरे मनमें यह चिन्ता हुई कि यह किसकी पत्नी होगी? ॥ २४ ॥

त्वं तु शक्र तदा नारीं जानीषे मनसा प्रभो।
स्थानाधिकतया पत्नी ममैषेति पुरंदर ॥ २५ ॥

'प्रभो! पुरंदर! देवेन्द्र! उन दिनों तुम अपने स्थान और पदकी श्रेष्ठताके कारण मेरे अनुमतिके बिना ही मन-ही-मन यह समझने लगे थे कि यह मेरी ही पत्नी होगी ॥ २५ ॥

सा मया न्यासभूता तु गौतमस्य महात्मनः।
न्यस्ता बहूनि वर्षाणि तेन निर्यातिता च ह ॥ २६ ॥

'मैंने धरोहरके रूपमें महर्षि गौतमके हाथमें उस कन्याको सौंप दिया। वह बहुत वर्षोंतक उनके यहाँ रही। फिर गौतमने उसे मुझे लौटा दिया ॥ २६ ॥

ततस्तस्य परिज्ञाय महास्थैर्यं महामुनेः।
ज्ञात्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्पर्शिता तदा ॥ २७ ॥

'महामुनि गौतमके उस महान् स्थैर्य (इन्द्रिय-संयम) तथा तपस्याविषयक सिद्धिको जानकर मैंने वह कन्या पुनः उन्हींको पत्नीरूपमें दे दी ॥ २७ ॥

स तया सह धर्मात्मा रमते स्म महामुनिः।
आसन्निराशा देवास्तु गौतमे दत्तया तया ॥ २८ ॥

'धर्मात्मा महामुनि गौतम उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। जब अहल्या गौतमको दे दी गयी, तब देवता निराश हो गये ॥ २८ ॥

त्वं क्रुद्धस्त्विह कामात्मा गत्वा तस्याश्रमं मुनेः।
दृष्टवांश्च तदा तां स्त्रीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥ २९ ॥

'तुम्हारे तो क्रोधकी सीमा न रही। तुम्हारा मन कामके अधीन हो चुका था; इसलिये तुमने मुनिके आश्रमपर जाकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित होनेवाली उस दिव्य सुन्दरीको देखा ॥ २९ ॥

सा त्वया धर्षिता शक्र कामार्तेन समन्युना।
दृष्टस्त्वं स तदा तेन आश्रमे परमर्षिणा ॥ ३० ॥

'इन्द्र! तुमने कुपित और कामसे पीड़ित होकर उसके साथ बलात्कार किया। उस समय उन महर्षिने अपने आश्रममें तुम्हें देख लिया ॥ ३० ॥

ततः क्रुद्धेन तेनासि शप्तः परमतेजसा।
गतोऽसि येन देवेन्द्र दशाभागविपर्ययम् ॥ ३१ ॥

'देवेन्द्र! इससे उन परम तेजस्वी महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया। उसी शापके कारण तुमको इस विपरीत दशामें आना पड़ा है—शत्रुका बंदी बनना पड़ा है ॥ ३१ ॥

यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात्।
तस्मात् त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि ॥ ३२ ॥

'उन्होंने शाप देते हुए कहा—'वासव! शक्र! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ बलात्कार किया है; इसलिये तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे ॥ ३२ ॥

अयं तु भावो दुर्बुद्धे यस्त्वयेह प्रवर्तितः।
मानुषेष्वपि लोकेषु भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

'दुर्बुद्धे! तुम-जैसे राजाके दोषसे मनुष्यलोकमें भी यह जारभाव प्रचलित हो जायगा, जिसका तुमने स्वयं यहाँ सूत्रपात किया है; इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

तत्रार्धं तस्य यः कर्ता त्वय्यर्धं निपतिष्यति।
न च ते स्थावरं स्थानं भविष्यति न संशयः ॥ ३४ ॥

'जो जारभावसे पापाचार करेगा, उस पुरुषपर उस पापका आधा भाग पड़ेगा और आधा तुमपर पड़ेगा; क्योंकि इसके प्रवर्तक तुम्हीं हो। निःसंदेह तुम्हारा यह स्थान स्थिर नहीं होगा ॥ ३४ ॥

यश्च यश्च सुरेन्द्रः स्याद् ध्रुवः स न भविष्यति।
एष शापो मया मुक्त इत्यसौ त्वां तदाब्रवीत् ॥ ३५ ॥

'जो कोई भी देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होगा, वह वहाँ स्थिर नहीं रहेगा। यह शाप मैंने इन्द्रमात्रके लिये दे दिया है।' यह बात मुनिने तुमसे कही थी ॥ ३५ ॥

तां तु भार्यां सुनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत् सुमहातपाः।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः ॥ ३६ ॥
रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात् त्वमनवस्थिता।
तस्माद् रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३७ ॥

'फिर उन महातपस्वी मुनिने अपनी उस पत्नीको भी भलीभाँति डाँट-फटकारकर कहा—'दुष्टे! तू मेरे आश्रमके पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूप-सौन्दर्यसे भ्रष्ट हो जा। रूप और यौवनसे सम्पन्न होकर मर्यादामें स्थित नहीं

रह सकी है, इसलिये अब लोकमें तू अकेली ही रूपवती नहीं रहेगी (बहुत-सी रूपवती स्त्रियाँ उत्पन्न हो जायँगी) ॥ ३६-३७ ॥

रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः ।
यत् तदेकं समाश्रित्य विभ्रमोऽयमुपस्थितः ॥ ३८ ॥

'जिस एक रूप-सौन्दर्यको लेकर इन्द्रके मनमें यह काम-विकार उत्पन्न हुआ था, तेरे उस रूप-सौन्दर्यको समस्त प्रजाएँ प्राप्त कर लेंगी; इसमें संशय नहीं है' ॥ ३८ ॥

तदाप्रभृति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विता ।
सा तं प्रसादयामास महर्षिं गौतमं तदा ॥ ३९ ॥
अज्ञानाद् धर्षिता विप्र त्वद्रूपेण दिवौकसा ।
न कामकाराद् विप्रर्षे प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥

'तभीसे अधिकांश प्रजा रूपवती होने लगी। अहल्याने उस समय विनीत-वचनोंद्वारा महर्षि गौतमको प्रसन्न किया और कहा—'विप्रवर! ब्रह्मर्षे! देवराजने आपका ही रूप धारण करके मुझे कलङ्कित किया है। मैं उसे पहचान न सकी थी। अतः अनजानमें मुझसे यह अपराध हुआ है, स्वेच्छाचारवश नहीं। इसलिये आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये' ॥ ३९-४० ॥

अहल्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युवाच स गौतमः ।
उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४१ ॥
रामो नाम श्रुतो लोके वनं चाप्युपयास्यति ।
ब्राह्मणार्थे महाबाहुर्विष्णुर्मानुषविग्रहः ॥ ४२ ॥
तं द्रक्ष्यसि तदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि ।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ४३ ॥

'अहल्याके ऐसा कहनेपर गौतमने उत्तर दिया—'भद्रे! इक्ष्वाकुवंशमें एक महातेजस्वी महारथी वीरका अवतार होगा, जो संसारमें श्रीरामके नामसे विख्यात होंगे। महाबाहु श्रीरामके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही मनुष्य-शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे ब्राह्मण (विश्वामित्र आदि) के कार्यसे तपोवनमें पधारेंगे। जब तुम उनका दर्शन करोगी, तब पवित्र हो जाओगी। तुमने जो पाप किया है, उससे तुम्हें वे ही पवित्र कर सकते हैं ॥ ४१—४३ ॥

तस्यातिथ्यं च कृत्वा वै मत्समीपं गमिष्यसि ।
वत्स्यसि त्वं मया सार्धं ततो हि वरवर्णिनि ॥ ४४ ॥

'वरवर्णिनि! उनका आतिथ्य-सत्कार करके तुम मेरे पास आ जाओगी और फिर मेरे ही साथ रहने लगोगी' ॥ ४४ ॥

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिराजगाम स्वमाश्रमम् ।
तपश्चचार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिनः ॥ ४५ ॥

'ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आश्रमके भीतर आ गये और उन ब्रह्मवादी मुनिकी पत्नी वह अहल्या बड़ी भारी तपस्या करने लगी ॥ ४५ ॥

शापोत्सर्गाद्धि तस्येदं मुनेः सर्वमुपस्थितम् ।
तत् स्मर त्वं महाबाहो दुष्कृतं यत् त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥

'महाबाहो! उन ब्रह्मर्षि गौतमके शाप देनेसे ही तुमपर यह सारा संकट उपस्थित हुआ है। अतः तुमने जो पाप किया था, उसको याद करो ॥ ४६ ॥

तेन त्वं ग्रहणं शत्रोर्यातो नान्येन वासव ।
शीघ्रं वै यज यज्ञं त्वं वैष्णवं सुसमाहितः ॥ ४७ ॥

'वासव! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं। अतः अब एकाग्रचित्त हो शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ४७ ॥

पावितस्तेन यज्ञेन वास्यसे त्रिदिवं ततः ।
पुत्रश्च तव देवेन्द्र न विनष्टो महारणे ॥ ४८ ॥
नीतः संनिहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ।

'देवेन्द्र! उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे। तुम्हारा पुत्र जयन्त उस महासमरमें मारा नहीं गया है। उसका नाना पुलोमा उसे महासागरमें ले गया है। इस समय वह उसीके पास है' ॥ ४८½ ॥

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥
पुनस्त्रिदिवमाक्रामदनुशासच्च देवराट् ।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान किया। वह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें गये और वहाँ देवराज्यका शासन करने लगे ॥ ४९½ ॥

एतदिन्द्रजितो नाम बलं यत् कीर्तितं मया ॥ ५० ॥
निर्जितस्तेन देवेन्द्रः प्राणिनोऽन्ये तु किं पुनः ।

रघुनन्दन! यह है इन्द्रविजयी मेघनादका बल, जिसका मैंने आपसे वर्णन किया है। उसने देवराज इन्द्रको भी जीत लिया था; फिर दूसरे प्राणियोंकी तो बिसात ही क्या थी ॥ ५०½ ॥

आश्चर्यमिति रामश्च लक्ष्मणश्चाब्रवीत् तदा ॥ ५१ ॥
अगस्त्यवचनं श्रुत्वा वानरा राक्षसास्तदा ।

अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण तत्काल बोल उठे—'आश्चर्य है।' साथ ही वानरों और राक्षसोंको भी इस बातसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५१½ ॥

विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यद्य यत् तद् दृष्टं पुरातनम् ।

उस समय श्रीरामके बगलमें बैठे हुए विभीषणने

कहा—'मैंने पूर्वकालमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं, उनका आज महर्षिने स्मरण दिला दिया है' ॥५२½॥

अगस्त्यं त्वब्रवीद् रामः सत्यमेतच्छ्रुतं च मे ॥ ५३ ॥
एवं राम समुद्भूतो रावणो लोककण्टकः ।
सपुत्रो येन संग्रामे जितः शक्रः सुरेश्वरः ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यजीसे कहा—'आपकी बात सत्य है। मैंने भी विभीषणके मुखसे यह बात सुनी थी।' फिर अगस्त्यजी बोले—'श्रीराम! इस प्रकार पुत्रसहित रावण सम्पूर्ण जगत्के लिये कण्टकरूप था, जिसने देवराज इन्द्रको भी संग्राममें जीत लिया था' ॥ ५३-५४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

—★—

एकत्रिंशः सर्गः

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका विन्ध्यगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना

ततो रामो महातेजा विस्मयात् पुनरेव हि ।
उवाच प्रणतो वाक्यमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ १ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करके पुनः विस्मयपूर्वक पूछा— ॥ १ ॥

भगवन् राक्षसः क्रूरो यदाप्रभृति मेदिनीम् ।
पर्यटत् किं तदा लोकाः शून्या आसन् द्विजोत्तम ॥ २ ॥

'भगवन्! द्विजश्रेष्ठ! जब क्रूर निशाचर रावण पृथ्वीपर विजय करता घूम रहा था, उस समय क्या वहाँके सभी लोग शौर्यसम्बन्धी गुणोंसे शून्य ही थे? ॥ २ ॥

राजा वा राजमात्रो वा किं तदा नात्र कश्चन ।
धर्षणं यत्र न प्राप्तो रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

'क्या उन दिनों यहाँ कोई भी क्षत्रिय-नरेश अथवा क्षत्रियेतर राजा अधिक बलवान् नहीं था, जिससे इस भूतलपर पहुँचकर राक्षसराज रावणको पराजित या अपमानित होना नहीं पड़ा ॥ ३ ॥

उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीक्षितः ।
बहिष्कृता वरास्त्रैश्च बहवो निर्जिता नृपाः ॥ ४ ॥

'अथवा उस समयके सभी राजा पराक्रमशून्य तथा शस्त्रज्ञानसे हीन थे, जिसके कारण उन बहुसंख्यक श्रेष्ठ नरपालोंको रावणसे परास्त होना पड़ा' ॥ ४ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ।
उवाच रामं प्रहसन् पितामह इवेश्वरम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी यह बात सुनकर भगवान् अगस्त्यमुनि ठठाकर हँस पड़े और जैसे ब्रह्माजी महादेवजीसे कोई बात कहते हों, इसी तरह वे श्रीरामचन्द्रजीसे बोले— ॥ ५ ॥

इत्येवं बाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवर्षभ ।
चचार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

'पृथ्वीनाथ! भूपालशिरोमणे! श्रीराम! इसी प्रकार सब राजाओंको सताता और पराजित करता हुआ रावण इस पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ ६ ॥

ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम् ।
सम्प्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद् वसुरेतसः ॥ ७ ॥

'घूमते-घूमते वह स्वर्गपुरी अमरावतीके समान सुशोभित होनेवाली माहिष्मती नामक नगरीमें जा पहुँचा, जहाँ अग्निदेव सदा विद्यमान रहते थे ॥ ७ ॥

तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद् वसुरेतसः ।
अर्जुनो नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा ॥ ८ ॥

'उन अग्निदेवके प्रभावसे वहाँ अग्निके ही समान तेजस्वी अर्जुन नामक राजा राज्य करता था, जिसके राज्यकालमें कुशास्तरणसे युक्त अग्निकुण्डमें सदा अग्निदेवता निवास करते थे ॥ ८ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ हैहयाधिपतिर्बली ।
अर्जुनो नर्मदां रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहेश्वरः ॥ ९ ॥

'जिस दिन रावण वहाँ पहुँचा, उसी दिन बलवान् हैहयराज राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदा-नदीमें जल-क्रीड़ा करनेके लिये चला गया था ॥ ९ ॥

तमेव दिवसं सोऽथ रावणस्तत्र आगतः ।
रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥

'उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया। वहाँ आकर राक्षसराज रावणने राजाके मन्त्रियोंसे पूछा— ॥ १० ॥

क्वार्जुनो नृपतिः शीघ्रं सम्यगाख्यातुमर्हथ ।
रावणोऽहमनुप्राप्तो युद्धेप्सुर्नृवरेण ह ॥ ११ ॥

'मन्त्रियो ! जल्दी और ठीक-ठीक बताओ, राजा अर्जुन कहाँ हैं ? मैं रावण हूँ और तुम्हारे महाराजसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ ॥ ११ ॥

ममागमनमप्यग्रे युष्माभिः संनिवेद्यताम् ।
इत्येवं रावणेनोक्तास्तेऽमात्याः सुविपश्चितः ॥ १२ ॥
अब्रुवन् राक्षसपतिमसांनिध्यं महीपतेः ।

'तुमलोग पहले ही जाकर उन्हें मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' रावणके ऐसा कहनेपर राजाके विद्वान् मन्त्रियोंने राक्षसराजको बताया कि हमारे महाराज इस समय राजधानीमें नहीं हैं ॥ १२ ½ ॥

श्रुत्वा विश्रवसः पुत्रः पौराणामर्जुनं गतम् ॥ १३ ॥
अपसृत्यागतो विन्ध्यं हिमवत्संनिभं गिरिम् ।

'पुरवासियोंके मुखसे राजा अर्जुनके बाहर जानेकी बात सुनकर विश्रवाका पुत्र रावण वहाँसे हटकर हिमालयके समान विशाल विन्ध्यगिरिपर आया ॥ १३ ½ ॥

स तमभ्रमिवाविष्टमुद्भ्रान्तमिव मेदिनीम् ॥ १४ ॥
अपश्यद् रावणो विन्ध्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ।
सहस्रशिखरोपेतं सिंहाध्युषितकन्दरम् ॥ १५ ॥

'वह इतना ऊँचा था कि उसका शिखर बादलोंमें समाया हुआ-सा जान पड़ता था तथा वह पर्वत पृथ्वी फोड़कर ऊपरको उठा हुआ-सा प्रतीत होता था। विन्ध्यके गगनचुम्बी शिखर आकाशमें रेखा खींचते-से जान पड़ते थे। रावणने उस महान् शैलको देखा। वह अपने सहस्रों शृङ्गोंसे सुशोभित हो रहा था और उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते थे ॥ १४-१५ ॥

प्रपातपतितैः शीतैः साट्टहासमिवाम्बुभिः ।
देवदानवगन्धर्वैः साप्सरोभिः सकिंनरैः ॥ १६ ॥
स्वस्त्रीभिः क्रीडमानैश्च स्वर्गभूतं महोच्छ्रयम् ।

'उसके सर्वोच्च शिखरके तटसे जो शीतल जलकी धाराएँ गिर रही थीं, उनके द्वारा वह पर्वत अट्टहास करता-सा प्रतीत होता था। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर अपनी-अपनी स्त्रियों और अप्सराओंके साथ वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे। वह अत्यन्त ऊँचा पर्वत अपनी सुरम्य सुषमासे स्वर्गके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १६ ½ ॥

नदीभिः स्यन्दमानाभिः स्फटिकप्रतिमं जलम् ॥ १७ ॥
फणाभिश्चलजिह्वाभिरनन्तमिव विष्ठितम् ।
उत्क्रामन्तं दरीवन्तं हितवत्संनिभं गिरिम् ॥ १८ ॥

'स्फटिकके समान निर्मल जलका स्रोत बहानेवाली नदियोंके कारण वह विन्ध्यगिरि चञ्चल जिह्वावाले फनोंसे उपलक्षित शेषनागके समान स्थित था। अधिक ऊँचाईके कारण वह ऊर्ध्वलोकको जाता-सा जान पड़ता था। हिमालयके समान विशाल एवं विस्तृत विन्ध्यगिरि बहुत-सी गुफाओंसे युक्त दिखायी देता था ॥ १७-१८ ॥

पश्यमानस्ततो विन्ध्यं रावणो नर्मदां ययौ ।
चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम् ॥ १९ ॥
महिषैः सृमरैः सिंहैः शार्दूलर्क्षगजोत्तमैः ।
उष्णाभितप्तैस्तृषितैः संक्षोभितजलाशयाम् ॥ २० ॥

'विन्ध्याचलकी शोभाको देखता हुआ रावण पुण्यसलिला नर्मदा नदीके तटपर गया, जिसमें शिलाखण्डोंसे युक्त चञ्चल जल प्रवाहित हो रहा था। वह नदी पश्चिम समुद्रकी ओर चली जा रही थी। धूपसे तपे हुए प्यासे भैंसे, हिरन, सिंह, व्याघ्र, रीछ और गजराज उसके जलाशयको विक्षुब्ध कर रहे थे ॥ १९-२० ॥

चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः ।
सारसैश्च सदा मत्तैः कूजद्भिः सुसमावृताम् ॥ २१ ॥

'सदा मतवाले होकर कलरव करनेवाले चक्रवाक, कारण्डव, हंस, जलकुक्कुट और सारस आदि जलपक्षी नर्मदाके जल राशिपर छा रहे थे ॥ २१ ॥

फुल्लद्रुमकृतोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम् ।
विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलिसुमेखलाम् ॥ २२ ॥
पुष्परेण्वनुलिप्ताङ्गीं जलफेनामलांशुकाम् ।
जलावगाहसुस्पर्शां फुल्लोत्पलसुवेक्षणाम् ॥ २३ ॥
पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम् ।
इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशाननः ॥ २४ ॥
स तस्याः पुलिने रम्ये नानामुनिनिषेविते ।
उपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ २५ ॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा परम सुन्दरी प्रियतमा नारीके समान प्रतीत होती थी। खिले हुए तटवर्ती वृक्ष मानो उसके आभूषण थे। चक्रवाकके जोड़े उसके दोनों स्तनोंका स्थान ले रहे थे। ऊँचे और विस्तृत पुलिन नितम्बके समान जान पड़ते थे। हंसोंकी पङ्क्ति मोतियोंकी बनी हुई मेखला (करधनी) के समान शोभा दे रही थी। पुष्पोंके पराग ही अङ्गराग बनकर उसके अङ्ग-अङ्गमें अनुलिप्त हो रहे थे। जलका उज्ज्वल फेन ही उसकी स्वच्छ, श्वेत साड़ीका काम दे रहा था। जलमें गोता लगाना ही उसका सुखद संस्पर्श था और खिले हुए कमल ही उसके सुन्दर नेत्र जान पड़ते थे। राक्षसशिरोमणि दशमुख रावणने शीघ्र ही पुष्पकविमानसे उतरकर नर्मदाके जलमें डुबकी लगायी और बाहर निकलकर वह नाना मुनियोंसे सेवित उसके रमणीय तटपर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठा ॥ २२—२५ ॥

प्रख्याय नर्मदां सोऽथ गङ्गेयमिति रावणः ।
नर्मदादर्शने हर्षमाप्तवान् स दशाननः ॥ २६ ॥

'ये साक्षात् गङ्गा हैं' ऐसा कहकर दशानन रावणने नर्मदाकी प्रशंसा की और उसके दर्शनसे हर्षका अनुभव किया ॥ २६ ॥

उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ ।
एष रश्मिसहस्रेण जगत् कृत्स्नेव काञ्चनम् ॥ २७ ॥
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।

'फिर वहाँ उसने शुक, सारण तथा अन्य मन्त्रियोंसे लीलापूर्वक कहा—'ये सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को मानो काञ्चनमय बनाकर प्रचण्ड ताप देते हुए इस समय आकाशके मध्यभागमें विराज रहे हैं ॥२७½॥

मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २८ ॥
नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥ २९ ॥

'किंतु मुझे यहाँ बैठा जानकर ही चन्द्रमाके समान शीतल हो गये हैं। मेरे ही भयसे वायु भी नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानीके साथ मन्दगतिसे बह रही है ॥ २८-२९ ॥

इयं वापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्मवर्धिनी ।
नक्रमीनविहंगोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ ३० ॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ यह नर्मदा भी क्रीड़ारस एवं प्रीतिको बढ़ा रही है। इसकी लहरोंमें मगर, मत्स्य और जलपक्षी खेल रहे हैं और यह भयभीत नारीके समान स्थित है ॥ ३० ॥

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३१ ॥

'तुमलोग युद्धस्थलमें इन्द्रतुल्य पराक्रमी नरेशोंद्वारा अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कर दिये गये हो और रक्तसे इस प्रकार नहा उठे हो कि तुम्हारे अङ्गोंमें लालचन्दन रसका लेप-सा लगा हुआ जान पड़ता है ॥ ३१ ॥

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।
सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥ ३२ ॥

'अतः तुम सब-के-सब सुख देनेवाली इस मङ्गलकारिणी नर्मदा नदीमें स्नान करो। ठीक उसी तरह, जैसे सार्वभौम आदि महान् दिग्गज मतवाले होकर गङ्गामें अवगाहन करते हैं ॥ ३२ ॥

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मनो विप्रमोक्ष्यथ ।
अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ॥ ३३ ॥
पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ।

'इस महानदीमें स्नान करके तुम पाप तापसे मुक्त हो जाओगे। मैं भी आज शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल नर्मदा-तटपर धीरे-धीरे जटाजूटधारी महादेवजीको फूलोंका उपहार समर्पित करूँगा' ॥३३½॥

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥ ३५ ॥
वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।

'राक्षसराजकी सेनाके हाथियोंने नर्मदा-नदीमें उतरकर उसके जलको मथ डाला, मानो वामन, अञ्जन, पद्म आदि बड़े-बड़े दिग्गजोंने गङ्गाजीके जलको विक्षुब्ध कर डाला हो ॥३५½॥

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः ॥ ३६ ॥
उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ।

'तदनन्तर वे महाबली राक्षस गङ्गामें स्नान करके बाहर आये और रावणके शिवपूजनके लिये फूल जुटाने लगे ॥३६½॥

नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥ ३७ ॥
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ।

'श्वेत बादलोंके समान शुभ्र एवं मनोरम नर्मदा-पुलिनपर उन राक्षसोंने दो ही घड़ीमें फूलोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया ॥३७½॥

पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ।

'इस प्रकार पुष्पोंका संचय हो जानेपर राक्षसराज रावण स्वयं स्नान करनेके लिये नर्मदा-नदीमें उतरा, मानो कोई महान् गजराज गङ्गामें अवगाहन करनेके लिये घुसा हो ॥३८½॥

तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
नर्मदासलिलात् तस्मादुत्ततार स रावणः ।

'वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके रावणने परम उत्तम जपनीय मन्त्रका जप किया। इसके बाद वह नर्मदाके जलसे बाहर निकला ॥३९½॥

ततः क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ॥ ४० ॥
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ।
तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ ४१ ॥

'फिर भीगे कपड़ेको उतारकर उसने श्वेत वस्त्र धारण किया। इसके बाद वह हाथ जोड़े महादेवजीकी पूजाके लिये चला। उस समय और सब राक्षस भी उसके पीछे हो लिये, मानो मूर्तिमान् पर्वत उसकी गतिके अधीन हो खिंचे चले जा रहे हों ॥ ४०-४१ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥

'राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग अपने साथ लिये जाता था ॥ ४२ ॥

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥ ४३ ॥

'रावणने बालूकी वेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृतके समान सुगन्धवाले पुष्पोंसे उसका पूजन किया ॥ ४३ ॥

उवाच सचिवांस्तत्र सलीलं शुकसारणौ ।
एष रश्मिसहस्रेण जगत् कृत्स्नेव काञ्चनम् ॥ २७ ॥
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्थितः ।

'फिर वहाँ उसने शुक, सारण तथा अन्य मन्त्रियोंसे लीलापूर्वक कहा—'ये सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को मानो काञ्चनमय बनाकर प्रचण्ड ताप देते हुए इस समय आकाशके मध्यभागमें विराज रहे हैं ॥२७½॥

मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकरः ॥ २८ ॥
नर्मदाजलशीतश्च सुगन्धिः श्रमनाशनः ।
मद्भयादनिलो ह्येष वात्यसौ सुसमाहितः ॥ २९ ॥

'किंतु मुझे यहाँ बैठा जानकर ही चन्द्रमाके समान शीतल हो गये हैं। मेरे ही भयसे वायु भी नर्मदाके जलसे शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानीके साथ मन्दगतिसे बह रही है ॥ २८-२९ ॥

इयं वापि सरिच्छ्रेष्ठा नर्मदा नर्मवर्धिनी ।
नक्रमीनविहंगोर्मिः सभयेवाङ्गना स्थिता ॥ ३० ॥

'सरिताओंमें श्रेष्ठ यह नर्मदा भी क्रीड़ारस एवं प्रीतिको बढ़ा रही है। इसकी लहरोंमें मगर, मत्स्य और जलपक्षी खेल रहे हैं और यह भयभीत नारीके समान स्थित है ॥ ३० ॥

तद्भवन्तः क्षताः शस्त्रैर्नृपैरिन्द्रसमैर्युधि ।
चन्दनस्य रसेनेव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ३१ ॥

'तुमलोग युद्धस्थलमें इन्द्रतुल्य पराक्रमी नरेशोंद्वारा अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कर दिये गये हो और रक्तसे इस प्रकार नहा उठे हो कि तुम्हारे अङ्गोंमें लालचन्दन रसका लेप-सा लगा हुआ जान पड़ता है ॥ ३१ ॥

ते यूयमवगाहध्वं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।
सार्वभौममुखा मत्ता गङ्गामिव महागजाः ॥ ३२ ॥

'अतः तुम सब-के-सब सुख देनेवाली इस मङ्गलकारिणी नर्मदा नदीमें स्नान करो। ठीक उसी तरह, जैसे सार्वभौम आदि महान् दिग्गज मतवाले होकर गङ्गामें अवगाहन करते हैं ॥ ३२ ॥

अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मनो विप्रमोक्ष्यथ ।
अहमप्यद्य पुलिने शरदिन्दुसमप्रभे ॥ ३३ ॥
पुष्पोपहारं शनकैः करिष्यामि कपर्दिनः ।

'इस महानदीमें स्नान करके तुम पाप तापसे मुक्त हो जाओगे। मैं भी आज शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल नर्मदा-तटपर धीरे-धीरे जटाजूटधारी महादेवजीको फूलोंका उपहार समर्पित करूँगा' ॥३३½॥

राक्षसेन्द्रगजैस्तैस्तु क्षोभिता नर्मदा नदी ॥ ३५ ॥
वामनाञ्जनपद्माद्यैर्गङ्गा इव महागजैः ।

'राक्षसराजकी सेनाके हाथियोंने नर्मदा-नदीमें उतरकर उसके जलको मथ डाला, मानो वामन, अञ्जन, पद्म आदि बड़े-बड़े दिग्गजोंने गङ्गाजीके जलको विक्षुब्ध कर डाला हो ॥३५½॥

ततस्ते राक्षसाः स्नात्वा नर्मदायां महाबलाः ॥ ३६ ॥
उत्तीर्य पुष्पाण्याजह्रुर्बल्यर्थं रावणस्य तु ।

'तदनन्तर वे महाबली राक्षस गङ्गामें स्नान करके बाहर आये और रावणके शिवपूजनके लिये फूल जुटाने लगे ॥३६½॥

नर्मदापुलिने हृद्ये शुभ्राभ्रसदृशप्रभे ॥ ३७ ॥
राक्षसैस्तु मुहूर्तेन कृतः पुष्पमयो गिरिः ।

'श्वेत बादलोंके समान शुभ्र एवं मनोरम नर्मदा-पुलिनपर उन राक्षसोंने दो ही घड़ीमें फूलोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया ॥३७½॥

पुष्पेषूपहृतेष्वेवं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥
अवतीर्णो नदीं स्नातुं गङ्गामिव महागजः ।

'इस प्रकार पुष्पोंका संचय हो जानेपर राक्षसराज रावण स्वयं स्नान करनेके लिये नर्मदा-नदीमें उतरा, मानो कोई महान् गजराज गङ्गामें अवगाहन करनेके लिये घुसा हो ॥३८½॥

तत्र स्नात्वा च विधिवज्जप्त्वा जप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
नर्मदासलिलात् तस्मादुत्ततार स रावणः ।

'वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके रावणने परम उत्तम जपनीय मन्त्रका जप किया। इसके बाद वह नर्मदाके जलसे बाहर निकला ॥३९½॥

ततः क्लिन्नाम्बरं त्यक्त्वा शुक्लवस्त्रसमावृतः ॥ ४० ॥
रावणं प्राञ्जलिं यान्तमन्वयुः सर्वराक्षसाः ।
तद्गतीवशमापन्ना मूर्तिमन्त इवाचलाः ॥ ४१ ॥

'फिर भीगे कपड़ेको उतारकर उसने श्वेत वस्त्र धारण किया। इसके बाद वह हाथ जोड़े महादेवजीकी पूजाके लिये चला। उस समय और सब राक्षस भी उसके पीछे हो लिये, मानो मूर्तिमान् पर्वत उसकी गतिके अधीन हो खिंचे चले जा रहे हों ॥ ४०-४१ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥

'राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग अपने साथ लिये जाता था ॥ ४२ ॥

वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ॥ ४३ ॥

'रावणने बालूकी वेदीपर उस शिवलिङ्गको स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृतके समान सुगन्धवाले पुष्पोंसे उसका पूजन किया ॥ ४३ ॥

ततः सतामार्तिहरं परं वरं
वरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम् ।
समर्चयित्वा स निशाचरो जगौ
प्रसार्य हस्तान् प्रणनर्त चाग्रतः ॥ ४४ ॥

'जो अपने ललाटमें चन्द्रकिरणोंको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, सत्पुरुषोंकी पीड़ा हर लेते हैं तथा भक्तोंको मनोवाञ्छित वर प्रदान करते हैं, उन श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट देवता भगवान् शङ्करका भलीभाँति पूजन करके वह निशाचर उनके सामने गाने और हाथ फैलाकर नाचने लगा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

—★—

द्वात्रिंशः सर्गः

अर्जुनकी भुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरुद्ध होना, रावणके पुष्पोपहारका बह जाना, फिर रावण आदि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें ले जाना

नर्मदापुलिने यत्र राक्षसेन्द्रः स दारुणः ।
पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद् देशाददूरतः ॥ १ ॥
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो माहिष्मत्याः पतिः प्रभुः ।
क्रीडते सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥

'नर्मदाजीके तटपर जहाँ क्रूर राक्षसराज रावण महादेवजीको फूलोंका उपहार अर्पित कर रहा था, उस स्थानसे थोड़ी दूरपर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ माहिष्मतीपुरीका शक्तिशाली राजा अर्जुन अपनी स्त्रियोंके साथ नर्मदाके जलमें उतरकर क्रीड़ा कर रहा था ॥ १-२ ॥

तासां मध्यगतो राजा रराज च तदार्जुनः ।
करेणूनां सहस्रस्य मध्यस्थ इव कुञ्जरः ॥ ३ ॥

'उन सुन्दरियोंके बीचमें विराजमान राजा अर्जुन सहस्रों हथिनियोंके मध्यभागमें स्थित हुए गजराजके समान शोभा पाता था ॥ ३ ॥

जिज्ञासुः स तु बाहूनां सहस्रस्योत्तमं बलम् ।
रुरोध नर्मदावेगं बाहुभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ४ ॥

'अर्जुनके हजार भुजाएँ थीं। उनके उत्तम बलको जाँचनेके लिये उसने उन बहुसंख्यक भुजाओंद्वारा नर्मदाके वेगको रोक दिया ॥ ४ ॥

कार्तवीर्यभुजासक्तं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ।
कूलोपहारं कुर्वाणं प्रतिस्रोतः प्रधावति ॥ ५ ॥

'कृतवीर्य-पुत्र अर्जुनकी भुजाओंद्वारा रोका हुआ नर्मदाका वह निर्मल जल तटपर पूजा करते हुए रावणके पासतक पहुँच गया और उसी ओर उलटी गतिसे बहने लगा ॥ ५ ॥

समीननक्रमकरः सपुष्पकुशसंस्तरः ।
स नर्मदाम्भसो वेगः प्रावृट्काल इवाबभौ ॥ ६ ॥

'नर्मदाके जलका वह वेग मत्स्य, नक्र, मगर, फूल और कुशास्तरणके साथ बढ़ने लगा। उसमें वर्षाकालके समान बाढ़ आ गयी ॥ ६ ॥

स वेगः कार्तवीर्येण सम्प्रेषित इवाभ्यसः ।
पुष्पोपहारं सकलं रावणस्य जहार ह ॥ ७ ॥

'जलका वह वेग, जिसे मानो कार्तवीर्य अर्जुनने ही भेजा हो, रावणके समस्त पुष्पोपहारको बहा ले गया ॥ ७ ॥

रावणोऽर्धसमाप्ते तमुत्सृज्य नियमं तदा ।
नर्मदां पश्यते कान्तां प्रतिकूलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥

'रावणका वह पूजन-सम्बन्धी नियम अभी आधा ही समाप्त हुआ था, उसी दशामें उसे छोड़कर वह प्रतिकूल हुई कमनीय कान्तिवाली प्रेयसीकी भाँति नर्मदाकी ओर देखने लगा ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु तं दृष्ट्वा सागरोद्गारसंनिभम् ।
वर्धन्तमम्भसो वेगं पूर्वामाशां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

'पश्चिमसे आते और पूर्व दिशामें प्रवेश करके बढ़ते हुए जलके उस वेगको उसने देखा। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो समुद्रमें ज्वार आ गया हो ॥ ९ ॥

ततोऽनुद्भ्रान्तशकुनां स्वभावे परमे स्थिताम् ।
निर्विकाराङ्गनाभासामपश्यद् रावणो नदीम् ॥ १० ॥

'उसके तटवर्ती वृक्षोंपर रहनेवाले पक्षियोंमें कोई घबराहट नहीं थी। वह नदी अपनी परम उत्तम स्वाभाविक स्थितिमें स्थित थी—उसका जल पहले ही-जैसा स्वच्छ एवं निर्मल दिखायी देता था। उसमें वर्षाकालिक बाढ़के समय जो मलिनता आदि विकार होते थे, उनका उस समय सर्वथा अभाव था। रावणने उस नदीको विकारशून्य हृदयवाली नारीके समान देखा ॥ १० ॥

सव्यतेरकराङ्गुल्या ह्यशब्दास्यो दशाननः ।
वेगप्रभवमन्वेष्टुं सोऽदिशच्छुकसारणौ ॥ ११ ॥

'उसके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकला। उसने मौनव्रतकी रक्षाके लिये बिना बोले ही दाहिने हाथकी अङ्गुलीसे संकेतमात्र करके बाढ़के कारणका पता लगानेके निमित्त शुक और सारणको आदेश दिया॥ ११॥

तौ तु रावणसंदिष्टौ भ्रातरौ शुकसारणौ।
व्योमान्तरगतौ वीरौ प्रस्थितौ पश्चिमामुखौ॥ १२॥

'रावणका आदेश पाकर दोनों वीर भ्राता शुक और सारण आकाशमार्गसे पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए॥ १२॥

अर्धयोजनमात्रं तु गत्वा तौ रजनीचरौ।
पश्येतां पुरुषं तोये क्रीडन्तं सहयोषितम्॥ १३॥

'केवल आधा योजन जानेपर ही उन दोनों निशाचरोंने एक पुरुषको स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीडा करते देखा॥ १३॥

बृहत्सालप्रतीकाशं तोयव्याकुलमूर्धजम्।
मदरक्तान्तनयनं मदव्याकुलचेतसम्॥ १४॥

'उसका शरीर विशाल सालवृक्षके समान ऊँचा था। उसके केश जलसे ओतप्रोत हो रहे थे। नेत्रप्रान्तमें मदकी लाली दिखायी दे रही थी और चित्त भी मदसे व्याकुल जान पड़ता था॥ १४॥

नदीं बाहुसहस्रेण रुन्धन्तमरिमर्दनम्।
गिरिं पादसहस्रेण रुन्धन्तमिव मेदिनीम्॥ १५॥

'वह शत्रुमर्दन वीर अपनी सहस्र भुजाओंसे नदीके वेगको रोककर सहस्रों चरणोंसे पृथ्वीको थामे रखनेवाले पर्वतके समान शोभा पाता था॥ १५॥

बालानां वरनारीणां सहस्रेण समावृतम्।
समदानां करेणूनां सहस्रेणेव कुञ्जरम्॥ १६॥

'नयी अवस्थाकी सहस्रों सुन्दरियाँ उसे घेरे हुए ऐसी जान पड़ती थीं, मानो सहस्रों मदमत्त हथिनियोंने किसी गजराजको घेर रखा हो॥ १६॥

तमद्भुततरं दृष्ट्वा राक्षसौ शुकसारणौ।
संनिवृत्तावुपागम्य रावणं तमथोचतुः॥ १७॥

'उस परम अद्भुत दृश्यको देखकर राक्षस शुक और सारण लौट आये और रावणके पास जाकर बोले—॥ १७॥

बृहत्सालप्रतीकाशः कोऽप्यसौ राक्षसेश्वर।
नर्मदां रोधवद् रुद्ध्वा क्रीडापयति योषितः॥ १८॥

'राक्षसराज! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर कोई सालवृक्षके समान विशालकाय पुरुष है, जो बाँधकी तरह नर्मदाके जलको रोककर स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहा है॥ १८॥

तेन बाहुसहस्रेण संनिरुद्धजला नदी।
सागरोद्वारसंकाशानुद्वारान् सृजते मुहुः॥ १९॥

'उसकी सहस्र भुजाओंसे नदीका जल रुक गया है। इसीलिये यह बारम्बार समुद्रके ज्वारकी भाँति जलके उद्गारकी सृष्टि कर रही है'॥ १९॥

इत्येवं भाषमाणौ तौ निशम्य शुकसारणौ।
रावणोऽर्जुन इत्युक्त्वा स ययौ युद्धलालसः॥ २०॥

'इस प्रकार कहते हुए शुक और सारणकी बातें सुनकर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है' ऐसा कहकर वह युद्धकी लालसासे उसी ओर चल दिया॥ २०॥

अर्जुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाधिपे।
चण्डः प्रवाति पवनः सनादः सरजस्तथा॥ २१॥

'राक्षसराज रावण जब अर्जुनकी ओर चला, तब धूल और भारी कोलाहलके साथ वायु प्रचण्ड वेगसे चलने लगी॥ २१॥

सकृदेव कृतो रावः सरक्तपृषतो घनैः।
महोदरमहापार्श्वधूम्राक्षशुकसारणैः॥ २२॥
संवृतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागाद् यत्र चार्जुनः।

'बादलोंने रक्तबिन्दुओंकी वर्षा करके एक बार ही बड़े जोरसे गर्जना की। इधर राक्षसराज रावण महोदर, महापार्श्व, धूम्राक्ष, शुक और सारणको साथ ले उस स्थानकी ओर चला, जहाँ अर्जुन क्रीडा कर रहा था॥ २२½॥

अदीर्घेणैव कालेन स तदा राक्षसो बली॥ २३॥
तं नर्मदाह्रदं भीममाजगामाञ्जनप्रभः।

'काजल या कोयलेके समान काला वह बलवान् राक्षस थोड़ी ही देरमें नर्मदाके उस भयंकर जलाशयके पास जा पहुँचा॥ २३½॥

स तत्र स्त्रीपरिवृतं वासिताभिरिव द्विपम्॥ २४॥
नरेन्द्रं पश्यते राजा राक्षसानां तदार्जुनम्।

'वहाँ पहुँचकर राक्षसोंके राजा रावणने मैथुनकी इच्छावाली हथिनियोंसे घिरे हुए गजराजके समान सुन्दरी स्त्रियोंसे परिवेष्टित महाराज अर्जुनको देखा॥ २४½॥

स रोषाद् रक्तनयनो राक्षसेन्द्रो बलोद्धतः॥ २५॥
इत्येवमर्जुनामात्यानाह गम्भीरया गिरा।

'उसे देखते ही रावणके नेत्र रोषसे लाल हो गये। अपने बलके घमंडसे उद्दण्ड हुए राक्षसराजने अर्जुनके मन्त्रियोंसे गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा—॥ २५½॥

अमात्याः क्षिप्रमाख्यात हैहयस्य नृपस्य वै॥ २६॥
युद्धार्थं समनुप्राप्तो रावणो नाम नामतः।

'मन्त्रियो! तुम हैहयराजसे जल्दी जाकर कहो कि रावण तुमसे युद्ध करनेके लिये आया है'॥ २६½॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽथार्जुनस्य ते॥ २७॥
उत्तस्थुः सायुधास्तं च रावणं वाक्यमब्रुवन्।

'रावणकी बात सुनकर अर्जुनके वे मन्त्री हथियार लेकर खड़े हो गये और रावणसे इस प्रकार बोले—॥ २७½॥

युद्धस्य कालो विज्ञातः साधु भो साधु रावण॥ २८॥
यः क्षीबं स्त्रीगतं चैव योद्धुमुत्सहसे नृपम्।

'वाह रे रावण ! वाह ! तुम्हें युद्धके अवसरका अच्छा ज्ञान है। हमारे महाराज जब मदमत्त होकर स्त्रियोंके बीचमें क्रीडा कर रहे हैं, ऐसे समयमें तुम उनके साथ युद्ध करनेके लिये उत्साहित हो रहे हो ॥ २८½ ॥

स्त्रीसमक्षगतं यत् त्वं योद्धुमुत्सहसे नृप ॥ २९ ॥
वासितामध्यगं मत्तं शार्दूल इव कुञ्जरम्।

'जैसे कोई व्याघ्र कामवासनासे वासित हथिनियोंके बीचमें खड़े हुए गजराजसे जूझना चाहता हो, उसी प्रकार तुम स्त्रियोंके समक्ष क्रीडा-विलासमें तत्पर हुए राजा अर्जुनके साथ युद्ध करनेका हौसला दिखा रहे हो ॥ २९½ ॥

क्षमस्वाद्य दशग्रीव उष्यतां रजनी त्वया।
युद्धे श्रद्धा तु यद्यस्ति श्वस्तात समरेऽर्जुनम् ॥ ३० ॥

'तात ! दशग्रीव ! यदि तुम्हारे हृदयमें युद्धके लिये उत्साह है, तो रातभर क्षमा करो और आजकी रातमें यहीं ठहरो। फिर कल सबेरे तुम राजा अर्जुनको समराङ्गणमें उपस्थित देखोगे ॥ ३० ॥

यदि वापि त्वरा तुभ्यं युद्धतृष्णासमावृत।
निपात्यास्मान् रणे युद्धमर्जुनेनोपयास्यसि ॥ ३१ ॥

'युद्धकी तृष्णासे घिरे हुए राक्षसराज ! यदि तुम्हें जूझनेके लिये बड़ी जल्दी लगी हो तो पहले रणभूमिमें हम सबको मार गिराओ। उसके बाद महाराज अर्जुनके साथ युद्ध करने जाओगे' ॥ ३१ ॥

ततस्तै रावणामात्यैरमात्यास्ते नृपस्य तु।
सूदिताश्चापि ते युद्धे भक्षिताश्च बुभुक्षितैः ॥ ३२ ॥

'यह सुनकर रावणके भूखे मन्त्री युद्धस्थलमें अर्जुनके अमात्योंको मार-मारकर खाने लगे ॥ ३२ ॥

ततो हलहलाशब्दो नर्मदातीरगो बभौ।
अर्जुनस्यानुयात्राणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥

'इससे अर्जुनके अनुयायियों तथा रावणके मन्त्रियोंका नर्मदाके तटपर बड़ा कोलाहल होने लगा ॥ ३३ ॥

इषुभिस्तोमरैः प्रासैस्त्रिशूलैर्वज्रकर्पणैः।
सरावणानर्दयन्तः समन्तात् समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥

'अर्जुनके योद्धा बाणों, तोमरों, भालों, त्रिशूलों और वज्रकर्पण नामक शस्त्रोंद्वारा चारों ओरसे धावा करके रावणसहित समस्त राक्षसोंको घायल करने लगे ॥ ३४ ॥

हैहयाधिपयोधानां वेग आसीत् सुदारुणः।
सनक्रमीनमकरसमुद्रस्येव निःस्वनः ॥ ३५ ॥

'हैहयराजके योद्धाओंका वेग नाकों, मत्स्यों और मगरोंसहित समुद्रकी भीषण गर्जनाके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था ॥ ३५ ॥

रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तशुकसारणाः।
कार्तवीर्यबलं क्रुद्धा निघ्नन्ति स्म स्वतेजसा ॥ ३६ ॥

'रावणके वे मन्त्री प्रहस्त, शुक और सारण आदि कुपित हो अपने बल-पराक्रमसे कार्तवीर्य अर्जुनकी सेनाका संहार करने लगे ॥ ३६ ॥

अर्जुनाय तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः।
क्रीडमानाय कथितं पुरुषैर्भयविह्वलैः ॥ ३७ ॥

'तब अर्जुनके सेवकोंने भयसे विह्वल होकर क्रीडामें लगे हुए अर्जुनसे मन्त्रीसहित रावणके उस क्रूर कर्मका समाचार सुनाया ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा न भेतव्यमिति स्त्रीजनं स तदार्जुनः।
उत्ततार जलात् तस्माद् गङ्गातोयादिवाञ्जनः ॥ ३८ ॥

'सुनकर अर्जुनने अपनी स्त्रियोंसे कहा—'तुम सब लोग डरना मत।' फिर उन सबके साथ वह नर्मदाके जलसे उसी तरह बाहर निकला, जैसे कोई दिग्गज (हथिनियोंके साथ) गङ्गाजीके जलसे बाहर निकला हो ॥ ३८ ॥

क्रोधदूषितनेत्रस्तु स तदार्जुनपावकः।
प्रजज्वाल महाघोरो युगान्त इव पावकः ॥ ३९ ॥

'उसके नेत्र रोषसे रक्तवर्णके हो गये। वह अर्जुनरूपी अनल प्रलयकालके महाभयंकर पावककी भाँति प्रज्वलित हो उठा ॥ ३९ ॥

स तूर्णतरमादाय वरहेमाङ्गदो गदाम्।
अभिदुद्राव रक्षांसि तमांसीव दिवाकरः ॥ ४० ॥

'सुन्दर सोनेका बाजूबंद धारण करनेवाले वीर अर्जुनने तुरंत ही गदा उठा ली और उन राक्षसोंपर आक्रमण किया, मानो सूर्यदेव अन्धकार-समूहपर टूट पड़े हों ॥ ४० ॥

बाहुविक्षेपकरणां समुद्यम्य महागदाम्।
गारुडं वेगमास्थाय आपपातैव सोऽर्जुनः ॥ ४१ ॥

'जो भुजाओंद्वारा घुमायी जाती थी उस विशाल गदाको ऊपर उठाकर गरुड़के समान तीव्र वेगका आश्रय ले राजा अर्जुन तत्काल ही उन निशाचरोंपर टूट पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्य मार्गं समारुद्ध्य विन्ध्योऽर्कस्येव पर्वतः।
स्थितो विन्ध्य इवाकम्प्यः प्रहस्तो मुसलायुधः ॥ ४२ ॥

'उस समय मुसलधारी प्रहस्त, जो विन्ध्यगिरिके समान अविचल था, उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें विन्ध्याचलने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया था ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुसलं घोरं लोहबद्धं मदोद्धतः।
प्रहस्तः प्रेषयन् क्रुद्धो ररास च यथान्तकः ॥ ४३ ॥

'मदसे उद्दण्ड हुए प्रहस्तने कुपित हो अर्जुनपर लोहेसे मढ़ा हुआ एक भयंकर मूसल चलाया और कालके समान भीषण गर्जना की ॥ ४३ ॥

तस्याग्रे मुसलस्याग्निरशोकापीडसंनिभः।
प्रहस्तकरमुक्तस्य बभूव प्रदहन्निव ॥ ४४ ॥

'प्रहस्तके हाथसे छूटे हुए उस मूसलके अग्रभागमें अशोक-पुष्पके समान लाल रंगकी आग प्रकट हो गयी,

जलाती हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४४ ॥

आधावमानं मुसलं कार्तवीर्यस्तदार्जुनः ।
निपुणं वञ्चयामास गदया गतविक्लवः ॥ ४५ ॥

'किंतु कार्तवीर्य अर्जुनको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने अपनी ओर वेगपूर्वक आते हुए उस मूसलको गदा मारकर पूर्णतः विफल कर दिया ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिदुद्राव सगदो हैहयाधिपः ।
भ्रामयाणो गदां गुर्वीं पञ्चबाहुशतोच्छ्रयाम् ॥ ४६ ॥

'तत्पश्चात् गदाधारी हैहयराज, जिसे पाँच सौ भुजाओंसे उठाकर चलाया जाता था, उस भारी गदाको घुमाता हुआ प्रहस्तकी ओर दौड़ा ॥ ४६ ॥

ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गदया तदा ।
निपपात स्थितः शैलो वज्रिवज्रहतो यथा ॥ ४७ ॥

'उस गदासे अत्यन्त वेगपूर्वक आहत होकर प्रहस्त तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो कोई पर्वत वज्रधारी इन्द्रके वज्रका आघात पाकर ढह गया हो ॥ ४७ ॥

प्रहस्तं पतितं दृष्ट्वा मारीचशुकसारणाः ।
समहोदरधूम्राक्षा अपसृष्टा रणाजिरात् ॥ ४८ ॥

'प्रहस्तको धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष समराङ्गणसे भाग खड़े हुए ॥ ४८ ॥

अपक्रान्तेष्वमात्येषु प्रहस्ते च निपातिते ।
रावणोऽभ्यद्रवत् तूर्णमर्जुनं नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥

'प्रहस्तके गिरने और अमात्योंके भाग जानेपर रावणने नृपश्रेष्ठ अर्जुनपर तत्काल धावा किया ॥ ४९ ॥

सहस्रबाहोस्तद् युद्धं विंशद्बाहोश्च दारुणम् ।
नृपराक्षसयोस्तत्र आरब्धं रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

'फिर तो हजार भुजाओंवाले नरनाथ और बीस भुजाओंवाले निशाचरनाथमें वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ५० ॥

सागराविव संक्षुब्धौ चलमूलाविवाचलौ ।
तेजोयुक्ताविवादित्यौ प्रदहन्ताविवानलौ ॥ ५१ ॥
बलोद्धतौ यथा नागौ वासितार्थे यथा वृषौ ।
मेघाविव विनर्दन्तौ सिंहाविव बलोत्कटौ ॥ ५२ ॥
रुद्रकालाविव क्रुद्धौ तौ तदा राक्षसार्जुनौ ।
परस्परं गदां गृह्य ताडयामासतुर्भृशम् ॥ ५३ ॥

'विक्षुब्ध हुए दो समुद्रों, जिनकी जड़ हिल रही हों ऐसे दो पर्वतों, दो तेजस्वी आदित्यों, दो दाहक अग्नियों, बलसे उन्मत्त हुए दो गजराजों, काम वासनावाली गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ों, जोर-जोरसे गर्जनेवाले दो मेघों, उत्कट बलशाली दो सिंहों तथा क्रोधसे भरे हुए रुद्र और कालदेवके समान वे रावण और अर्जुन गदा लेकर एक-दूसरेपर गहरी चोटें करने लगे ॥ ५१—५३ ॥

वज्रप्रहारानचला यथा घोरान् विषेहिरे ।
गदाप्रहारांस्तौ तत्र सेहाते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥

'जैसे पूर्वकालमें पर्वतोंने वज्रके भयंकर आघात सहे थे, उसी प्रकार वे अर्जुन और रावण वहाँ गदाओंके प्रहार सहन करते थे ॥ ५४ ॥

यथाशनिरवेभ्यस्तु जायतेऽथ प्रतिश्रुतिः ।
तथा तयोर्गदापोथैर्दिशः सर्वाः प्रतिश्रुताः ॥ ५५ ॥

'जैसे बिजलीकी कड़कसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठती हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी गदाओंके आघातोंसे सभी दिशाएँ गूँजने लगीं ॥ ५५ ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पात्यमानाहितोरसि ।
काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ५६ ॥

'जैसे बिजली चमककर आकाशको सुनहरे रंगसे युक्त कर देती है, उसी प्रकार रावणकी छातीपर गिरायी जाती हुई अर्जुनकी गदा उसके वक्षःस्थलको सुवर्णकी-सी प्रभासे पूर्ण कर देती थी ॥ ५६ ॥

तथैव रावणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भाति गदोल्केव महागिरौ ॥ ५७ ॥

'उसी प्रकार रावणके द्वारा भी अर्जुनकी छातीपर बारम्बार गिरायी जाती हुई गदा किसी महान् पर्वतपर गिरनेवाली उल्काके समान प्रकाशित हो उठती थी ॥ ५७ ॥

नार्जुनः खेदमायाति न राक्षसगणेश्वरः ।
सममासीत् तयोर्युद्धं यथा पूर्वं बलीन्द्रयोः ॥ ५८ ॥

'उस समय न तो अर्जुन थकता था और न राक्षसगणोंका राजा रावण ही। पूर्वकालमें परस्पर जूझनेवाले इन्द्र और बलिकी भाँति उन दोनोंका युद्ध एक समान जान पड़ता था ॥ ५८ ॥

शृङ्गैरिव वृषायुध्यन् दन्ताग्रैरिव कुञ्जरौ ।
परस्परं विनिघ्नन्तौ नरराक्षससत्तमौ ॥ ५९ ॥

'जैसे साँड़ अपने सींगोंसे और हाथी अपने दाँतोंके अग्रभागसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे नरेश और निशाचरराज एक-दूसरेपर गदाओंसे चोट करते थे ॥ ५९ ॥

ततोऽर्जुनेन क्रुद्धेन सर्वप्राणेन सा गदा ।
स्तनयोरन्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥

'इसी बीचमें अर्जुनने कुपित होकर रावणके विशाल वक्षःस्थलपर दोनों स्तनोंके बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदाका प्रहार किया ॥ ६० ॥

वरदानकृतत्राणे सा गदा रावणोरसि ।
दुर्बलेव यथावेगं द्विधाभूतापतत् क्षितौ ॥ ६१ ॥

'परंतु रावण तो वरके प्रभावसे सुरक्षित था, अतः रावणकी छातीपर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी दुर्बल गदाकी भाँति उसके वक्षकी टक्करसे दो टूक होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥

स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदाघातेन रावणः ।
अपासर्पद् धनुर्मात्रं निषसाद च निष्टनन् ॥ ६२ ॥

'तथापि अर्जुनकी चलायी हुई गदाके आघातसे पीड़ित हो रावण एक धनुष पीछे हट गया और आर्तनाद करता हुआ बैठ गया ॥ ६२ ॥

स विह्वलं तदालक्ष्य दशग्रीवं ततोऽर्जुनः ।
सहसोत्पत्य जग्राह गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ ६३ ॥

'दशग्रीवको व्याकुल देख अर्जुनने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया, मानो गरुड़ने झपट्टा मारकर किसी सर्पको धर दबाया हो ॥ ६३ ॥

स तु बाहुसहस्रेण बलाद् गृह्य दशाननम् ।
बबन्ध बलवान् राजा बलिं नारायणो यथा ॥ ६४ ॥

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् नारायणने बलिको बाँधा था, उसी तरह बलवान् राजा अर्जुनने दशाननको बलपूर्वक पकड़कर अपने हजार हाथोंके द्वारा उसे मजबूत रस्सोंसे बाँध दिया ॥ ६४ ॥

बध्यमाने दशग्रीवे सिद्धचारणदेवताः ।
साध्वीति वादिनः पुष्पैः किरन्त्यर्जुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥

'दशग्रीवके बाँधे जानेपर सिद्ध, चारण और देवता 'शाबाश ! शाबाश !' कहते हुए अर्जुनके सिरपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६५ ॥

व्याघ्रो मृगमिवादाय मृगराडिव कुञ्जरम् ।
ररास हैहयो राजा हर्षादम्बुदवन्मुहुः ॥ ६६ ॥

'जैसे व्याघ्र किसी हिरणको दबोच लेता है अथवा सिंह हाथीको धर दबाता है, उसी प्रकार रावणको अपने वशमें करके हैहयराज अर्जुन हर्षातिरेकसे मेघके समान बारम्बार गर्जना करने लगा ॥ ६६ ॥

प्रहस्तस्तु समाश्वस्तो दृष्ट्वा बद्धं दशाननम् ।
सहसा राक्षसः क्रुद्धो ह्यभिदुद्राव हैहयम् ॥ ६७ ॥

'इसके बाद प्रहस्तने होश सँभाला। दशमुख रावणको बँधा हुआ देख वह राक्षस सहसा कुपित हो हैहयराजकी ओर दौड़ा ॥ ६७ ॥

नक्तंचराणां वेगस्तु तेषामापततां बभौ ।
उद्धूत आतपापाये पयोदानामिवाम्बुधौ ॥ ६८ ॥

'जैसे वर्षाकाल आनेपर समुद्रमें बादलोंका वेग बढ़ जाता है, उसी प्रकार वहाँ आक्रमण करते हुए उन निशाचरोंका वेग बढ़ा हुआ प्रतीत होता था ॥ ६८ ॥

मुञ्चमुञ्चेति भाषन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासकृत् ।
मुसलानि च शूलानि सोत्ससर्ज तदा रणे ॥ ६९ ॥

'छोड़ो, छोड़ो, ठहरो, ठहरो' ऐसा बारम्बार कहते हुए राक्षस अर्जुनकी ओर दौड़े। उस समय प्रहस्तने रणभूमिमें अर्जुनपर मूसल और शूलके प्रहार किये ॥ ६९ ॥

अप्राप्तान्येव तान्याशु असम्भ्रान्तस्तदार्जुनः ।
आयुधान्यमरारीणां जग्राहारिनिषूदनः ॥ ७० ॥

'परंतु अर्जुनको उस समय घबराहट नहीं हुई। उस शत्रुसूदन वीरने प्रहस्त आदि देवद्रोही निशाचरोंके छोड़े हुए उन अस्त्रोंको अपने शरीरतक आनेसे पहले ही पकड़ लिया ॥ ७० ॥

ततस्तैरेव रक्षांसि दुर्धरैः प्रवरायुधैः ।
भित्त्वा विद्रावयामास वायुरम्बुधरानिव ॥ ७१ ॥

'फिर उन्हीं दुर्धर एवं श्रेष्ठ आयुधोंसे उन सब राक्षसोंको घायल करके उसी तरह भगा दिया, जैसे हवा बादलोंको छिन्न-भिन्न करके उड़ा ले जाती है ॥ ७१ ॥

राक्षसांस्त्रासयामास कार्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
रावणं गृह्य नगरं प्रविवेश सुहृद्वृतः ॥ ७२ ॥

'उस समय कार्तवीर्य अर्जुनने समस्त राक्षसोंको भयभीत कर दिया और रावणको लेकर वह अपने सुहृदोंके साथ नगरमें आया ॥ ७२ ॥

स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्करै-
र्द्विजैः सपौरैः पुरुहूतसंनिभः ।
ततोऽर्जुनः स्वां प्रविवेश तां पुरीं
बलिं निगृह्येव सहस्रलोचनः ॥ ७३ ॥

'नगरके निकट आनेपर ब्राह्मणों और पुरवासियोंने अपने इन्द्रतुल्य तेजस्वी नरेशपर फूलों और अक्षतोंकी वर्षा की और सहस्र नेत्रधारी इन्द्र जैसे बलिको बंदी बनाकर ले गये थे, उसी प्रकार उस राजा अर्जुनने बँधे हुए रावणको साथ लेकर अपनी पुरीमें प्रवेश किया' ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे द्वात्रिंश सर्गः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

—★—

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

पुलस्त्यजीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना

रावणग्रहणं तत् तु वायुग्रहणसंनिभम् ।
ततः पुलस्त्यः शुश्राव कथितं दिवि दैवतैः ॥ १ ॥

रावणको पकड़ लेना वायुको पकड़नेके समान था। धीर-धीर यह बात स्वर्गमें देवताओंके मुखसे पुलस्त्यजीने सुनी ॥ १ ॥

ततः पुत्रकृतस्नेहात् कम्यमानो महाधृतिः ।
माहिष्मतीपतिं द्रष्टुमाजगाम महानृषिः ॥ २ ॥

यद्यपि वे महर्षि महान् धैर्यशाली थे तो भी संतानके प्रति होनेवाले स्नेहके कारण कृपापरवश हो गये और माहिष्मती नरेशसे मिलनेके लिये भूतलपर चले आये ॥ २ ॥

स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।
पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तो मनःसम्पातविक्रमः ॥ ३ ॥

उनका वेग वायुके समान था और गति मनके समान, वे ब्रह्मर्षि वायुपथका आश्रय ले माहिष्मतीपुरीमें आ पहुँचे ॥ ३ ॥

सोऽमरावतिसंकाशां हृष्टपुष्टजनावृताम् ।
प्रविवेश पुरीं ब्रह्मा इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥

जैसे ब्रह्माजी इन्द्रकी अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पुलस्त्यजीने हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई और अमरावतीके समान शोभासे सम्पन्न माहिष्मती नगरीमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥

पादचारमिवादित्यं निष्पतन्तं सुदुर्दृशम् ।
ततस्ते प्रत्यभिज्ञाय अर्जुनाय न्यवेदयन् ॥ ५ ॥

आकाशसे उतरते समय वे पैरोंसे चलकर आते हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे। अत्यन्त तेजके कारण उनकी ओर देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था। अर्जुनके सेवकोंने उन्हें पहचानकर राजा अर्जुनको उनके शुभागमनकी सूचना दी ॥ ५ ॥

पुलस्त्य इति विज्ञाय वचनाद्धैहयाधिपः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रत्युद्गच्छत् तपस्विनम् ॥ ६ ॥

सेवकोंके कहनेसे जब हैहयराजको यह पता चला कि पुलस्त्यजी पधारे हैं, तब वे सिरपर अञ्जलि बाँधे उन तपस्वी मुनिकी अगवानीके लिये आगे बढ़ आये ॥ ६ ॥

पुरोहितोऽस्य गृह्यार्घ्यं मधुपर्कं तथैव च ।
पुरस्तात् प्रययौ राज्ञः शक्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ७ ॥

राजा अर्जुनके पुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क आदि लेकर उनके आगे-आगे चले, मानो इन्द्रके आगे बृहस्पति चल रहे हों ॥ ७ ॥

ततस्तमृषिमायान्तमुद्यन्तमिव भास्करम् ।
अर्जुनो दृश्य सम्भ्रान्तो ववन्देन्द्र इवेश्वरम् ॥ ८ ॥

वहाँ आते हुए वे महर्षि उदित होते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। उन्हें देखकर राजा अर्जुन चकित रह गया। उसने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंमें उसी तरह आदरपूर्वक प्रणाम किया, जैसे इन्द्र ब्रह्माजीके आगे मस्तक झुकाते हैं ॥ ८ ॥

स तस्य पधुपर्कं गां पाद्यमर्घ्यं निवेद्य च ।
पुलस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ९ ॥

ब्रह्मर्षिको पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ समर्पित करके राजाधिराज अर्जुनने हर्षगद्गद वाणीमें पुलस्त्यजीसे कहा— ॥ ९ ॥

अद्यैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृता ।
अद्याहं तु द्विजेन्द्र त्वां यस्मात् पश्यामि दुर्दृशम् ॥ १० ॥

'द्विजेन्द्र ! आपका दर्शन परम दुर्लभ है, तथापि आज मैं आपके दर्शनका सुख उठा रहा हूँ। इस प्रकार यहाँ पधारकर आपने इस माहिष्मतीपुरीको अमरावतीपुरीके समान गौरवशालिनी बना दिया ॥ १० ॥

अद्य मे कुशलं देव अद्य मे कुशलं व्रतम् ।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ ११ ॥
यत् ते देवगणैर्वन्द्यौ वन्देऽहं चरणौ तव ।
इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे दारा इमे वयम् ।
ब्रह्मन् किं कुर्मः किं कार्यमाज्ञापयतु नो भवान् ॥ १२ ॥

'देव ! आज मैं आपके देववन्द्य चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ; अतः आज ही मैं वास्तवमें सकुशल हूँ। आज मेरा व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो गया। आज ही मेरा जन्म सफल हुआ और तपस्या भी सार्थक हो गयी। ब्रह्मन् ! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आप आज्ञा दीजिये। हम आपकी क्या सेवा करें ?' ॥ ११-१२ ॥

तं धर्मेऽग्निषु पुत्रेषु शिव पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
पुलस्त्योवाच राजानं हैहयानां तथार्जुनम् ॥ १३ ॥

तब पुलस्त्यजी हैहयराज अर्जुनके धर्म, अग्नि और पुत्रोंका कुशल-समाचार पूछकर उससे इस प्रकार बोले— ॥ १३ ॥

नरेन्द्राम्बुजपत्राक्ष पूर्णचन्द्रनिभानन ।
अतुलं ते बलं येन दशग्रीवस्त्वया जितः ॥ १४ ॥

'पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले कमलनयन नरेश ! तुम्हारे बलकी कहीं तुलना नहीं है; क्योंकि तुमने दशग्रीवको जीत लिया ॥ १४ ॥

भयाद् यस्योपतिष्ठेतां निष्पन्दौ सागरानिलौ ।
सोऽयं मृधे त्वया बद्धः पौत्रो मे रणदुर्जयः ॥ १५ ॥

'जिसके भयसे समुद्र और वायु भी चञ्चलता छोड़कर सेवामें उपस्थित होते हैं, उस मेरे रणदुर्जय पौत्रको तुमने संग्राममें बाँध लिया ॥ १५ ॥

पुत्रकस्य यशः पीतं नाम विश्रावितं त्वया ।
मद्वाक्याद् वाच्यमानोऽद्य मुञ्च वत्स दशाननम् ॥ १६ ॥

'ऐसा करके तुम मेरे इस बच्चेका यश पी गये और सर्वत्र अपने नामका ढिंढोरा पीट दिया। वत्स ! अब मेरे कहनेसे तुम दशाननको छोड़ दो। यह तुमसे मेरी याचना है' ॥ १६ ॥

पुलस्त्याज्ञां प्रगृह्योचे न किंचन वचोऽर्जुनः ।
मुमोच वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्रं प्रहृष्टवत् ॥ १७ ॥

पुलस्त्यजीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके अर्जुनने इसके विपरीत कोई बात नहीं कही। उस राजाधिराजने बड़ी प्रसन्नताके साथ राक्षसराज रावणको बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥ १७ ॥

स तं प्रमुच्य त्रिदशारिमर्जुनः
प्रपूज्य दिव्याभरणस्रगम्बरैः ।
अहिंसकं सख्यमुपेत्य साग्निकं
प्रणम्य तं ब्रह्मसुतं गृहं ययौ ॥ १८ ॥

उस देवद्रोही राक्षसको बन्धनमुक्त करके अर्जुनने दिव्य आभूषण, माला और वस्त्रोंसे उसका पूजन किया और अग्निको साक्षी बनाकर उसके साथ ऐसी मित्रताका सम्बन्ध स्थापित किया, जिसके द्वारा किसीको हिंसा न हो (अर्थात् उन दोनोंने यह प्रतिज्ञा की कि हमलोग अपनी मैत्रीका उपयोग दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें नहीं करेंगे)। इसके बाद ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजीको प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने घरको लौट गया ॥ १८ ॥

पुलस्त्येनापि संत्यक्तो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
परिष्वक्तः कृतातिथ्यो लज्जमानो विनिर्जितः ॥ १९ ॥

इस प्रकार अर्जुनद्वारा आतिथ्य-सत्कार करके छोड़े गये प्रतापी राक्षसराज रावणको पुलस्त्यजीने हृदयसे लगा लिया, परंतु वह पराजयके कारण लज्जित ही रहा ॥ १९ ॥

पितामहसुतश्चापि पुलस्त्यो मुनिपुङ्गवः ।
मोचयित्वा दशग्रीवं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ २० ॥

दशग्रीवको छुड़ाकर ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर पुलस्त्यजी पुनः ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २० ॥

एवं स रावणः प्राप्तः कीर्तवीर्यात् प्रधर्षणम् ।
पुलस्त्यवचनाद्यापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥ २१ ॥

इस प्रकार रावणको कार्तवीर्य अर्जुनके हाथसे पराजित होना पड़ा था और फिर पुलस्त्यजीके कहनेसे उस महाबली राक्षसको छुटकारा मिला था ॥ २१ ॥

एवं बलिभ्यो बलिनः सन्ति राघवनन्दन ।
नावज्ञा हि परे कार्या य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २२ ॥

रघुकुलनन्दन ! इस प्रकार संसारमें बलवान्-से-बलवान् वीर पड़े हुए हैं; अतः जो अपना कल्याण चाहे उसे दूसरेकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये ॥ २२ ॥

ततः स राजा पिशिताशनानां
सहस्रबाहोरुपलभ्य मैत्रीम् ।
पुनर्नृपाणां कदनं चकार
चकार सर्वां पृथिवीं च दर्पात् ॥ २३ ॥

सहस्रबाहुकी मैत्री पाकर राक्षसोंका राजा रावण पुनः घमंडसे भरकर सारी पृथ्वीपर विचरने और नरेशोंका संहार करने लगा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

—★—

चतुस्त्रिंशः सर्गः

वालीके द्वारा रावणका पराभव तथा रावणका उन्हें अपना मित्र बनाना

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।
चचार पृथिवीं सर्वामनिर्विण्णस्तथा कृतः ॥ १ ॥

अर्जुनसे छुटकारा पाकर राक्षसराज रावण निर्वेदरहित हो पुनः सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगा ॥ १ ॥

राक्षसं वा मनुष्यं वा शृणुते यं बलाधिकम् ।
रावणस्तं समासाद्य युद्धे ह्वयति दर्पितः ॥ २ ॥

राक्षस हो या मनुष्य, जिसको भी वह बलमें बढ़ा-चढ़ा सुनता था, उसीके पास पहुँचकर अभिमानी रावण उसे युद्धके लिये ललकारता था ॥ २ ॥

ततः कदाचित् किष्किन्धां नगरीं वालिपालिताम् ।
गत्वाऽऽह्वयति युद्धाय वालिनं हेममालिनम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर एक दिन वह वालीद्वारा पालित किष्किन्धापुरीमें जाकर सुवर्णमालाधारी वालीको युद्धके लिये ललकारने लगा ॥ ३ ॥

ततस्तु वानरामात्यास्तारस्तारापिता प्रभुः ।
उवाच वानरो वाक्यं युद्धप्रेप्सुमुपागतम् ॥ ४ ॥

उस समय युद्धकी इच्छासे आये हुए रावणसे वालीके मन्त्री तार, तारके पिता सुषेण तथा युवराज अङ्गद एवं सुग्रीवने कहा— ॥ ४ ॥

राक्षसेन्द्र गतो वाली यस्ते प्रतिबलो भवेत् ।
कोऽन्यः प्रमुखतः स्थातुं तव शक्तः प्लवङ्गमः ॥ ५ ॥

'राक्षसराज ! इस समय वाली तो बाहर गये हुए हैं। वे ही आपको जोड़के हो सकते हैं। दूसरा कौन वानर आपके सामने ठहर सकता है ॥ ५ ॥

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः संध्यामन्वास्य रावण ।
इदं मुहूर्तमायाति वाली तिष्ठ मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

'रावण ! चारों समुद्रोंसे सन्ध्योपासन करके वाली अब आते ही होंगे। आप दो घड़ी ठहर जाइये ॥ ६ ॥

एतानस्थिचयान् पश्य य एते शङ्खपाण्डुराः ।
युद्धार्थिनामिमे राजन् वानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥

'राजन् ! देखिये, ये जो शङ्खके समान उज्ज्वल हड्डियोंके ढेर लग रहे हैं, ये वालीके साथ युद्धकी इच्छासे आये हुए

आप-जैसे वीरोंके ही हैं। वानरराज वालीके तेजसे ही इन सबका अन्त हुआ है॥ ७॥

यद्वामृतरसः पीतस्त्वया रावण राक्षस।
तदा वालिनमासाद्य तदन्तं तव जीवितम्॥ ८॥

'राक्षस रावण! यदि आपने अमृतका रस पी लिया हो तो भी जब आप वालीसे टक्कर लेंगे, तब वही आपके जीवनका अन्तिम क्षण होगा॥ ८॥

पश्येदानीं जगच्चित्रमिमं विश्रवसः सुत।
इदं मुहूर्तं तिष्ठस्व दुर्लभं ते भविष्यति॥ ९॥

'विश्रवाकुमार! वाली सम्पूर्ण आश्चर्योंके भण्डार हैं। आप इस समय इनका दर्शन करेंगे। केवल इसी मुहूर्ततक उनकी प्रतीक्षाके लिये ठहरिये; फिर तो आपके लिये जीवन दुर्लभ हो जायगा॥ ९॥

अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम्।
वालिनं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम्॥ १०॥

'अथवा यदि आपको मरनेके लिये बहुत जल्दी लगी हो तो दक्षिण समुद्रके तटपर चले जाइये। वहाँ आपको पृथ्वीपर स्थित हुए अग्निदेवके समान वालीका दर्शन होगा'॥ १०॥

स तु तारं विनिर्भर्त्स्य रावणो लोकरावणः।
पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिणार्णवम्॥ ११॥

तब लोकोंको रुलानेवाले रावणने तारको भला-बुरा कहकर पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान किया॥ ११॥

तत्र हेमगिरिप्रख्यं तरुणार्कनिभाननम्।
रावणो वालिनं दृष्ट्वा संध्योपासनतत्परम्॥ १२॥

वहाँ रावणने सुवर्णगिरिके समान ऊँचे वालीको संध्योपासन करते हुए देखा। उनका मुख प्रभातकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा था॥ १२॥

पुष्पकादवरुह्याथ रावणोऽञ्जनसंनिभः।
ग्रहीतुं वालिनं तूर्णं निःशब्दपदमव्रजत्॥ १३॥

उन्हें देखकर काजलके समान काला रावण पुष्पकसे उतर पड़ा और वालीको पकड़नेके लिये जल्दी-जल्दी उनकी ओर बढ़ने लगा। उस समय वह अपने पैरोंकी आहट नहीं होने देता था॥ १३॥

यदृच्छया तदा दृष्टो वालिनापि स रावणः।
पापाभिप्रायकं दृष्ट्वा चकार न तु सम्भ्रमम्॥ १४॥

दैवयोगसे वालीने भी रावणको देख लिया; किंतु वे उसके पापपूर्ण अभिप्रायको जानकर भी घबराये नहीं॥ १४॥

शशमालक्ष्य सिंहो वा पन्नगं गरुडो यथा।
न चिन्तयति तं वाली रावणं पापनिश्चयम्॥ १५॥

जैसे सिंह खरगोशको और गरुड़ सर्पको देखकर भी उसकी परवा नहीं करता, उसी प्रकार वालीने पापपूर्ण विचार रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की॥ १५॥

जिघृक्षमाणमायान्तं रावणं पापचेतसम्।
कक्षावलम्बिनं कृत्वा गमिष्ये त्रीन् महार्णवान्॥ १६॥

उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब पापात्मा रावण मुझे पकड़नेकी इच्छासे निकट आयेगा, तब मैं इसे काँखमें दबाकर लटका लूँगा और इसे लिये-दिये शेष तीन महासागरोंपर भी हो आऊँगा॥ १६॥

द्रक्ष्यन्त्यरि मयाङ्कस्थं त्वंसदूरुकराम्बरम्।
लम्बमानं दशग्रीवं गरुडस्येव पन्नगम्॥ १७॥

इसको जाँघ, हाथ-पैर और वस्त्र खिसकते होंगे। यह मेरी काँखमें दबा होगा और उस दशामें लोग मेरे शत्रुको गरुड़के पंजेमें दबे हुए सर्पके समान लटकते देखेंगे॥ १७॥

इत्येवं मतिमास्थाय वाली मौनमुपास्थितः।
जपन् वै नैगमान् मन्त्रांस्तस्थौ पर्वतराडिव॥ १८॥

ऐसा निश्चय करके वाली मौन हो रहे और वैदिक मन्त्रोंका जप करते हुए गिरिराज सुमेरुकी भाँति खड़े रहे॥ १८॥

तावन्योन्यं जिघृक्षन्तौ हरिराक्षसपार्थिवौ।
प्रयत्नवन्तौ तत् कर्म ईहतुर्बलदर्पितौ॥ १९॥

इस प्रकार बलके अभिमानसे भरे हुए वे वानरराज और राक्षसराज दोनों एक-दूसरेको पकड़ना चाहते थे। दोनों ही इसके लिये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बनानेकी घातमें लगे थे॥ १९॥

हस्तग्राहं तु तं मत्वा पादशब्देन रावणम्।
पराङ्मुखोऽपि जग्राह वाली सर्पमिवाण्डजः॥ २०॥

रावणके पैरोंकी हलकी-सी आहटसे वाली यह समझ गये कि अब रावण हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ना चाहता है। फिर तो दूसरी ओर मुँह किये होनेपर भी वालीने उसे उसी तरह सहसा पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेता है॥ २०॥

ग्रहीतुकामं तं गृह्य रक्षसामीश्वरं हरिः।
स्वमुत्पपात वेगेन कृत्वा कक्षावलम्बिनम्॥ २१॥

पकड़नेकी इच्छावाले उस राक्षसराजको वालीने स्वयं ही पकड़कर अपनी काँखमें लटका लिया और बड़े वेगसे वे आकाशमें उछले॥ २१॥

तं च पीडयमानं तु वितुदन्तं नखैर्मुहुः।
जहार रावणं वाली पवनस्तोयदं यथा॥ २२॥

रावण अपने नखोंसे बारम्बार वालीको बकोटता और पीड़ा देता रहा, तो भी जैसे वायु बादलोंको उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार वाली रावणको बगलमें दबाये लिये फिरते थे॥ २२॥

अथ ते राक्षसामात्या ह्रियमाणे दशानने।
मुमोक्षयिषवो वालिं रक्षमाणा अभिद्रुताः॥ २३॥

इस प्रकार रावणके हर लिये जानेपर उसके मन्त्री इस बातोंसे छुड़ानेके लिये कोलाहल करते हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ते रहे ॥ २३ ॥

अन्वीयमानस्तैर्वाली भ्राजतेऽम्बरमध्यगः ।
अन्वीयमानो मेघौघैरम्बरस्थ इवांशुमान् ॥ २४ ॥

पीछे-पीछे राक्षस चलते थे और आगे-आगे वाली । इस अवस्थामें वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघसमूहोंसे अनुगत हुए आकाशवर्ती अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पाते थे ॥ २४ ॥

तेऽशक्नुवन्तः सम्प्राप्तुं वालिनं राक्षसोत्तमाः ।
तस्य बाहूरुवेगेन परिश्रान्ता व्यवस्थिताः ॥ २५ ॥

वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी वालीके पासतक न पहुँच सके । उनकी भुजाओं और जाँघोंके वेगसे उत्पन्न हुई वायुके थपेड़ोंसे थककर वे खड़े हो गये ॥ २५ ॥

वालिमार्गादपाक्रामन् पर्वतेन्द्रापि गच्छतः ।
किं पुनर्जीवनप्रेप्सुर्बिभ्रद् वै मांसशोणितम् ॥ २६ ॥

वालीके मार्गसे उड़ते हुए बड़े-बड़े पर्वत भी हट जाते थे; फिर रक्त-मांसमय शरीर धारण करनेवाला और जीवनकी रक्षा चाहनेवाला प्राणी उनके मार्गसे हट जाय, इसके लिये तो कहना ही क्या है ॥ २६ ॥

अपक्षिगणसम्पातान् वानरेन्द्रो महाजवः ।
क्रमशः सागरान् सर्वान् संध्याकालमवन्दत ॥ २७ ॥

जितनी देरमें वाली समुद्रोंतक पहुँचते थे, उतनी देरमें तीव्रगामी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे । उन महावेगशाली वानरराजने क्रमशः सभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर संध्या-वन्दन किया ॥ २७ ॥

सम्पूज्यमानो यातस्तु खचरैः खचरोत्तमः ।
पश्चिमं सागरं वाली आजगाम सरावणः ॥ २८ ॥

समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ वालीकी सभी खेचर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे । वे रावणको बगलमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥

तस्मिन् संध्यामुपासित्वा स्नात्वा जप्त्वा च वानरः ।
उत्तरं सागरं प्रायाद् वहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥

वहाँ स्नान, संध्योपासन और जप करके वे वानरवीर दशाननको लिये-दिये उत्तर समुद्रके तटपर जा पहुँचे ॥ २९ ॥

बहुयोजनसाहस्रं वहमानो महाहरिः ।
वायुवच्च मनोवच्च जगाम सह शत्रुणा ॥ ३० ॥

वायु और मनके समान वेगवाले वे महावानर वाली कई सहस्र योजनतक रावणको ढोते रहे । फिर अपने उस शत्रुके साथ ही वे उत्तर समुद्रके किनारे गये ॥ ३० ॥

उत्तरे सागरे संध्यामुपासित्वा दशाननम् ।
वहमानोऽगमद् वाली पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरके तटपर संध्योपासना करके दशाननका भार वहन करते हुए वाली पूर्व दिशावर्ती महासागरके किनारे गये ॥ ३१ ॥

तत्रापि संध्यामन्वास्य वासविः स हरीश्वरः ।
किष्किन्धामभितो गृह्य रावणं पुनरागमत् ॥ ३२ ॥

वहाँ भी संध्योपासना सम्पन्न करके वे इन्द्रपुत्र वानरराज वाली दशमुख रावणको बगलमें दबाये फिर किष्किन्धापुरीके निकट आये ॥ ३२ ॥

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य वानरः ।
रावणोद्वहनश्रान्तः किष्किन्धोपवनेऽपतत् ॥ ३३ ॥

इस तरह चारों समुद्रोंमें संध्योपासनाका कार्य पूरा करके रावणको ढोनेके कारण थके हुए वानरराज वाली किष्किन्धाके उपवनमें आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

रावणं तु मुमोचाथ स्वकक्षात् कपिसत्तमः ।
कुतस्त्वमिति चोवाच प्रहसन् रावणं मुहुः ॥ ३४ ॥

वहाँ आकर उन कपिश्रेष्ठने रावणको अपनी काँखसे छोड़ दिया और बारम्बार हँसते हुए पूछा—'कहो जी, तुम कहाँसे आये हो' ॥ ३४ ॥

विस्मयं तु महद् गत्वा श्रमलोलनिरीक्षणः ।
राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

रावणकी आँखें श्रमके कारण चञ्चल हो रही थीं । वालीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ और उस राक्षसराजने उन वानरराजसे इस प्रकार कहा— ॥ ३५ ॥

वानरेन्द्र महेन्द्राभ राक्षसेन्द्रोऽस्मि रावणः ।
युद्धेप्सुरिह सम्प्राप्तः स चाद्यासादितस्त्वया ॥ ३६ ॥

'महेन्द्रके समान पराक्रमी वानरेन्द्र ! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आया था, सो वह युद्ध तो आपसे मिल ही गया ॥ ३६ ॥

अहो बलमहो वीर्यमहो गाम्भीर्यमेव च ।
येनाहं पशुवद् गृह्य भ्रामितश्चतुरोऽर्णवान् ॥ ३७ ॥

'अहो ! आपमें अद्भुत बल है, अद्भुत पराक्रम है और आश्चर्यजनक गम्भीरता है । आपने मुझे पशुकी तरह पकड़कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है ॥ ३७ ॥

एवमश्रान्तवद् वीर शीघ्रमेव च वानर ।
मां चैवोद्वहमानस्तु कोऽन्यो वीरो भविष्यति ॥ ३८ ॥

'वानरवीर ! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन ऐसा शूरवीर होगा, जो मुझे इस प्रकार बिना थके-माँदे शीघ्रतापूर्वक ढो सके ॥ ३८ ॥

त्रयाणामेव भूतानां गतिरेषा प्लवङ्गम ।
मनोऽनिलसुपर्णानां तव चात्र न संशयः ॥ ३९ ॥

'वानरराज ! ऐसी गति तो मन, वायु और गरुड़—इन तीन भूतोंकी ही सुनी गयी है । निःसंदेह इस जगत्में चौथे

आप भी ऐसे तीव्र वेगवाले हैं ॥ ३९ ॥

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥ ४० ॥

'कपिश्रेष्ठ ! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्निको साक्षी बनाकर आपके साथ सदाके लिये स्नेहपूर्ण मित्रता कर लेना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥

'वानरराज ! स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—इन सभी वस्तुओंपर हम दोनोंका साझेका अधिकार होगा' ॥ ४१ ॥

ततः प्रज्वालयित्वाग्निं तावुभौ हरिराक्षसौ ।
भ्रातृत्वमुपसम्पन्नौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥

तब वानरराज और राक्षसराज दोनोंने अग्नि प्रज्वलित करके एक-दूसरेको हृदयसे लगाकर आपसमें भाईचारेका सम्बन्ध जोड़ा ॥ ४२ ॥

अन्योन्यं लम्बितकरौ ततस्तौ हरिराक्षसौ ।
किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव ॥ ४३ ॥

फिर वे दोनों वानर और राक्षस एक-दूसरेका हाथ पकड़े बड़ी प्रसन्नताके साथ किष्किन्धापुरीके भीतर गये, मानो दो सिंह किसी गुफामें प्रवेश कर रहे हों ॥ ४३ ॥

स तत्र मासमुषितः सुग्रीव इव रावणः ।
अमात्यैरागतैर्नीतस्त्रैलोक्योत्सादनार्थिभिः ॥ ४४ ॥

रावण वहाँ सुग्रीवकी तरह सम्मानित हो महीनेभर रहा। फिर तीनों लोकोंको उखाड़ फेंकनेकी इच्छा रखनेवाले उसके मन्त्री आकर उसे लिवा ले गये ॥ ४४ ॥

एवमेतत् पुरा वृत्तं वालिना रावणः प्रभो ।
धर्षितश्च वृतश्चापि भ्राता पावकसंनिधौ ॥ ४५ ॥

प्रभो ! इस प्रकार यह घटना पहले घटित हो चुकी है। वालीने रावणको हराया और फिर अग्निके समीप उसे अपना भाई बना लिया ॥ ४५ ॥

बलमप्रतिमं राम वालिनोऽभवदुत्तमम् ।
सोऽपि त्वया विनिर्दग्धः शलभो वह्निना यथा ॥ ४६ ॥

श्रीराम ! वालीमें बहुत अधिक और अनुपम बल था, परंतु आपने उसको भी अपनी बाणाग्निसे उसी तरह दग्ध कर डाला, जैसे आग पतिंगेको जला देती है ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

—★—

पञ्चत्रिंशः सर्गः

हनुमान्‌जीकी उत्पत्ति, शैशवावस्थामें इनका सूर्य, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे इनकी मूर्छा, वायुके कोपसे संसारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये देवताओंसहित ब्रह्माजीका उनके पास जाना

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयं मुनिम् ।
प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥ १ ॥

तब भगवान् श्रीरामने हाथ जोड़कर दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले अगस्त्य मुनिसे विनयपूर्वक यह अर्थयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च ।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम ॥ २ ॥

'महर्षे ! इसमें संदेह नहीं कि वाली और रावणके इस बलकी कहीं तुलना नहीं थी; परंतु मेरा ऐसा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमान्‌जीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता था ॥ २ ॥

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः ॥ ३ ॥

'शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्गुणोंने हनुमान्‌जीके भीतर घर कर रखा है ॥ ३ ॥

दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥ ४ ॥

'समुद्रको देखते ही वानर-सेना घबरा उठी है—यह देख ये महाबाहु वीर उसे धैर्य बँधाकर एक ही छलाँगमें सौ योजन समुद्रको लाँघ गये ॥ ४ ॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा ।
दृष्टा सम्भाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥ ५ ॥

'फिर लङ्कापुरीके आधिदैविक रूपको परास्त कर रावणके अन्तःपुरमें गये, सीताजीसे मिले, उनसे बातचीत की और उन्हें धैर्य बँधाया ॥ ५ ॥

सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥ ६ ॥

'वहाँ अशोकवनमें इन्होंने अकेले ही रावणके सेनापतियों, मन्त्रिकुमारों, किंकरों तथा रावणपुत्र अक्षको मार गिराया ॥ ६ ॥

भूयो बन्धाद् विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनेव मेदिनी ॥ ७ ॥

'फिर ये मेघनादके नागपाशसे बँधे और स्वयं ही मुक्त हो गये। तत्पश्चात् इन्होंने रावणसे वार्तालाप किया। जैसे प्रलय-कालकी आगने यह सारी पृथ्वी जलायी थी, उसी प्रकार लङ्कापुरीको जलाकर भस्म कर दिया ॥ ७ ॥

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥ ८ ॥

'युद्धमें हनुमान्‌जीके जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके और न वरुणके ही सुने जाते हैं ॥ ८ ॥

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥ ९ ॥

'मुनीश्वर ! मैंने तो इन्हींके बाहु-बलसे विभीषणके लिये लङ्का, शत्रुओंपर विजय, अयोध्याका राज्य तथा सीता, लक्ष्मण, मित्र और बन्धुजनोंको प्राप्त किया है ॥ ९ ॥

हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥

'यदि मुझे वानरराज सुग्रीवके सखा हनुमान् न मिलते तो जानकीका पता लगानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था ? ॥ १० ॥

किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया ।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा ॥ ११ ॥

'जिस समय वाली और सुग्रीवमें विरोध हुआ, उस समय सुग्रीवका प्रिय करनेके लिये इन्होंने जैसे दावानल वृक्षको जला देता है, उसी प्रकार वालीको क्यों नहीं भस्म कर डाला ? यह समझमें नहीं आता ॥ ११ ॥

नहि वेदितवान् मन्ये हनूमानात्मनो बलम् ।
यद् दृष्टवाञ्जीवितेष्टं क्लिश्यन्तं वानराधिपम् ॥ १२ ॥

'मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उस समय हनुमान्‌जीको अपने बलका पता ही नहीं था। इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी प्रिय वानरराज सुग्रीवको कष्ट उठाते देखते रहे ॥ १२ ॥

एतन्मे भगवन् सर्वं हनूमति महामुने ।
विस्तरेण यथातत्त्वं कथयामरपूजित ॥ १३ ॥

'देववन्द्य महामुने ! भगवन् ! आप हनुमान्‌जीके विषयमें ये सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बताइये' ॥ १३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा हेतुयुक्तमृषिस्ततः ।
हनूमतः समक्षं तमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ये युक्तियुक्त वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यजी हनुमान्‌जीके सामने ही उनसे इस प्रकार बोले— ॥ १४ ॥

सत्यमेतद् रघुश्रेष्ठ यद् ब्रवीषि हनूमति ।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः ॥ १५ ॥

'रघुकुलतिलक श्रीराम ! हनुमान्‌जीके विषयमें आप जो कुछ कहते हैं, यह सब सत्य ही है। बल, बुद्धि और गतिमें इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १५ ॥

अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा ।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन ॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन रघुनन्दन ! जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता, ऐसे मुनियोंने पूर्वकालमें इन्हें यह शाप दे दिया था कि बल रहनेपर भी इनको अपने पूरे बलका पता नहीं रहेगा ॥ १६ ॥

बाल्येऽप्येतेन यत् कर्म कृतं राम महाबल ।
तत्र वर्णयितुं शक्यमिति बाल्यतयास्यते ॥ १७ ॥

'महाबली श्रीराम ! इन्होंने बचपनमें भी जो महान् कर्म किया था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन दिनों वे बालभावसे—अनजानकी तरह रहते थे ॥ १७ ॥

यदि वास्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव ।
समाधाय मतिं राम निशामय वदाम्यहम् ॥ १८ ॥

'रघुनन्दन ! यदि हनुमान्‌जीका चरित्र सुननेके लिये आपको हार्दिक इच्छा हो तो चित्तको एकाग्र करके सुनिये। मैं सारी बातें बता रहा हूँ ॥ १८ ॥

सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः ।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥

'भगवान् सूर्यके वरदानसे जिसका स्वरूप सुवर्णमय हो गया है, ऐसा एक सुमेरु नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जहाँ हनुमान्‌जीके पिता केसरी राज्य करते हैं ॥ १९ ॥

तस्य भार्या बभूवेष्टा अञ्जनेति परिश्रुता ।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥

'उनकी अञ्जना नामसे विख्यात प्रियतमा पत्नी थीं। उनके गर्भसे वायुदेवने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥ २० ॥

शालिशूकनिभाभासं प्रासूतेमं तदाञ्जना ।
फलान्याहर्तुकामा वै निष्क्रान्ता गहने वरा ॥ २१ ॥

'अञ्जनाने जब इनको जन्म दिया, उस समय इनकी अङ्गकान्ति जाड़ेमें पैदा होनेवाले धानके अग्रभागकी भाँति पिंगल वर्णकी थी। एक दिन माता अञ्जना फल लानेके लिये आश्रमसे निकलीं और गहन वनमें चली गयीं ॥ २१ ॥

एष मातुर्वियोगाच्च क्षुधया च भृशार्दितः ।
रुरोद शिशुरत्यर्थं शिशुः शरवणे यथा ॥ २२ ॥

'उस समय मातासे बिछुड़ जाने और भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण शिशु हनुमान् उसी तरह जोर-जोरसे रोने लगे, जैसे पूर्वकालमें सरकंडोंके वनके भीतर कुमार कार्तिकेय रोये थे ॥ २२ ॥

तदोद्यन्तं विवस्वन्तं जपापुष्पोत्करोपमम् ।
ददर्श फललोभाच्च ह्युत्पपात रविं प्रति ॥ २३ ॥

'इतनेहीमें इन्हें जपाकुसुमके समान लाल रंगवाले सूर्यदेव उदित होते दिखायी दिये। हनुमान्‌जीने उन्हें कोई फल समझा और ये उस फलके लोभसे सूर्यकी ओर उछले॥ २३॥

बालार्काभिमुखो बालो बलार्क इव मूर्तिमान्।
ग्रहीतुकामो बालार्कं प्लवतेऽम्बरमध्यगः॥ २४॥

'बालसूर्यकी ओर मुँह किये मूर्तिमान् बालसूर्यके समान बालक हनुमान् बालसूर्यको पकड़नेकी इच्छासे आकाशमें उड़ते चले जा रहे थे॥ २४॥

एतस्मिन् प्लवमाने तु शिशुभावे हनूमति।
देवदानवयक्षाणां विस्मयः सुमहानभूत्॥ २५॥

'शैशवावस्थामें हनुमान्‌जी जब इस तरह उड़ रहे थे, उस समय उन्हें देखकर देवताओं, दानवों तथा यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ॥ २५॥

नाप्येवं वेगवान् वायुर्गरुडो न मनस्तथा।
यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम्॥ २६॥

'वे सोचने लगे—'यह वायुका पुत्र जिस प्रकार ऊँचे आकाशमें वेगपूर्वक उड़ रहा है, ऐसा वेग न तो वायुमें है, न गरुड़में है और न मनमें ही है॥ २६॥

यदि तावच्छिशोरस्य ईदृशो गतिविक्रमः।
यौवनं बलमासाद्य कथं वेगो भविष्यति॥ २७॥

'यदि बाल्यावस्थामें ही इस शिशुका ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवनका बल पाकर इसका वेग कैसा होगा'॥ २७॥

तमनुप्लवते वायुः प्लवन्तं पुत्रमात्मनः।
सूर्यदाहभयाद् रक्षंस्तुषारचयशीतलः॥ २८॥

'अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे दाहके भयसे बचानेके लिये उस समय वायुदेव भी बर्फके ढेरकी भाँति शीतल होकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे॥ २८॥

बहुयोजनसाहस्रं क्रामन्नेव गतोऽम्बरम्।
पितुर्बलाच्च बाल्याच्च भास्कराभ्याशमागतः॥ २९॥

'इस प्रकार बालक हनुमान् अपने और पिताके बलसे कई सहस्र योजन आकाशको लाँघते चले गये और सूर्यदेवके समीप पहुँच गये॥ २९॥

शिशुरेष त्वदोषज्ञ इति मत्वा दिवाकरः।
कार्यं चास्मिन् समायत्तमित्येवं न ददाह सः॥ ३०॥

'सूर्यदेवने यह सोचकर कि अभी यह बालक है, इसे गुण-दोषका ज्ञान नहीं है और इसके अधीन देवताओंका भी बहुत-सा भावी कार्य है—इन्हें जलाया नहीं॥ ३०॥

यमेव दिवसं ह्येष ग्रहीतुं भास्करं प्लुतः।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम्॥ ३१॥

'जिस दिन हनुमान्‌जी सूर्यदेवको पकड़नेके लिये उछले थे, उसी दिन राहु सूर्यदेवपर ग्रहण लगाना चाहता था॥ ३१॥

अनेन च परामृष्टो राहुः सूर्यरथोपरि।
अपक्रान्तस्ततस्त्रस्तो राहुश्चन्द्रार्कमर्दनः॥ ३२॥

'हनुमान्‌जीने सूर्यके रथके ऊपरी भागमें जब राहुका स्पर्श किया, तब चन्द्रमा और सूर्यका मर्दन करनेवाला राहु भयभीत हो वहाँसे भाग खड़ा हुआ॥ ३२॥

इन्द्रस्य भवनं गत्वा सरोषः सिंहिकासुतः।
अब्रवीद् भ्रुकुटिं कृत्वा देवं देवगणैर्वृतम्॥ ३३॥

'सिंहिकाका वह पुत्र रोषसे भरकर इन्द्रके भवनमें गया और देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके सामने भौंहें टेढ़ी करके बोला—॥ ३३॥

बुभुक्षापनयं दत्त्वा चन्द्रार्कौ मम वासव।
किमिदं तत् त्वया दत्तमन्यस्य बलवृत्रहन्॥ ३४॥

'बल और वृत्रासुरका वध करनेवाले वासव! आपने चन्द्रमा और सूर्यको मुझे अपनी भूख दूर करनेके साधनके रूपमें दिया था; किंतु अब आपने उन्हें दूसरेके हवाले कर दिया है। ऐसा क्यों हुआ?॥ ३४॥

अद्याहं पर्वकाले तु जिघृक्षुः सूर्यमागतः।
अथान्यो राहुरासाद्य जग्राह सहसा रविम्॥ ३५॥

'आज पर्व (अमावास्या) के समय मैं सूर्यदेवको ग्रस्त करनेकी इच्छासे गया था। इतनेहीमें दूसरे राहुने आकर सहसा सूर्यको पकड़ लिया'॥ ३५॥

स राहोर्वचनं श्रुत्वा वासवः सम्भ्रमान्वितः।
उत्पपातासनं हित्वा उद्वहन् काञ्चनीं स्रजम्॥ ३६॥

'राहुकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और सोनेकी माला पहने अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए॥ ३६॥

ततः कैलासकूटाभं चतुर्दन्तं मदस्रवम्।
शृङ्गारधारिणं प्रांशुं स्वर्णघण्टाट्टहासिनम्॥ ३७॥
इन्द्रः करीन्द्रमारुह्य राहुं कृत्वा पुरःसरम्।
प्रायाद् यत्राभवत् सूर्यः सहानेन हनूमता॥ ३८॥

'फिर कैलास-शिखरके समान उज्ज्वल, चार दाँतोंसे विभूषित, मदकी धारा बहानेवाले, भाँति-भाँतिके शृङ्गारसे युक्त, बहुत ही ऊँचे और सुवर्णमयी घण्टाके नादरूप अट्टहास करनेवाले गजराज ऐरावतपर आरूढ़ हो देवराज इन्द्र राहुको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ हनुमान्‌जीके साथ सूर्यदेव विराजमान थे॥ ३७-३८॥

अथातिरभसेनागाद् राहुरुत्सृज्य वासवम्।
अनेन च स वै दृष्टः प्रधावञ्शैलकूटवत्॥ ३९॥

'इधर राहु इन्द्रको छोड़कर बड़े वेगसे आगे बढ़ गया। इसी समय पर्वत-शिखरके समान आकारवाले दौड़ते हुए राहुको हनुमान्‌जीने देखा॥ ३९॥

ततः सूर्यं समुत्सृज्य राहुं फलमवेक्ष्य च।
उत्पपात पुनर्व्योम ग्रहीतुं सिंहिकासुतम्॥ ४०॥

'तब राहुको ही फलके रूपमें देखकर बालक हनुमान् सूर्यदेवको छोड़ उस सिंहिकापुत्रको ही पकड़नेके लिये पुनः आकाशमें उछले ॥ ४० ॥

उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं प्लवङ्गमम् ।
अवेक्ष्यैवं परावृत्तो मुखशेषः पराङ्मुखः ॥ ४१ ॥

'श्रीराम ! सूर्यको छोड़कर अपनी ओर धावा करनेवाले इन वानर हनुमान्‌को देखते ही राहु जिसका मुखमात्र ही शेष था, पीछेकी ओर मुड़कर भागा ॥ ४१ ॥

इन्द्रमाशंसमानस्तु त्रातारं सिंहिकासुतः ।
इन्द्र इन्द्रेति संत्रासान्मुहुर्मुहुरभाषत ॥ ४२ ॥

'उस समय सिंहिकापुत्र राहु अपने रक्षक इन्द्रसे ही अपनी रक्षाके लिये कहता हुआ भयके मारे बारम्बार 'इन्द्र ! इन्द्र !' की पुकार मचाने लगा ॥ ४२ ॥

राहोर्विक्रोशमानस्य प्रागेवालक्षितं स्वरम् ।
श्रुत्वेन्द्रोवाच मा धैर्षीरहमेनं निषूदये ॥ ४३ ॥

'चीखते हुए राहुके स्वरको जो पहलेका पहचाना हुआ था, सुनकर इन्द्र बोले—'डरो मत । मैं इस आक्रमणकारीको मार डालूँगा' ॥ ४३ ॥

ऐरावतं ततो दृष्ट्वा महन्तदिटमित्यपि ।
फलं तं हस्तिराजानमभिदुद्राव मारुतिः ॥ ४४ ॥

'तत्पश्चात् ऐरावतको देखकर इन्होंने उसे भी एक विशाल फल समझा और उस गजराजको पकड़नेके लिये ये उसकी ओर दौड़े ॥ ४४ ॥

तथास्य धावतो रूपमैरावतजिघृक्षया ।
मुहूर्तमभवद् घोरमिन्द्राग्न्योरिव भास्वरम् ॥ ४५ ॥

'ऐरावतको पकड़नेकी इच्छासे दौड़ते हुए हनुमान्‌जीका रूप दो घड़ीके लिये इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशमान एवं भयंकर हो गया ॥ ४५ ॥

एवमाधावमानं तु नातिक्रुद्धः शचीपतिः ।
हस्तान्तादतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्यताडयत् ॥ ४६ ॥

'बालक हनुमान्‌को देखकर शचीपति इन्द्रको अधिक क्रोध नहीं हुआ । फिर भी इस प्रकार धावा करते हुए इन्द्र बालक वानर-पर उन्होंने अपने हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा प्रहार किया ॥ ४६ ॥

ततो गिरौ पपातैष इन्द्रवज्राभिताडितः ।
पतमानस्य चैतस्य वामा हनुरभज्यत ॥ ४७ ॥

'इन्द्रके वज्रकी चोट खाकर ये एक पहाड़पर गिरे । वहाँ गिरते समय इनकी बायीं ठुड्डी टूट गयी ॥ ४७ ॥

तस्मिंस्तु पतिते चापि वज्रताडनविह्वले ।
चुक्रोधेन्द्राय पवनः प्रजानामहिताय सः ॥ ४८ ॥

'वज्रके आघातसे व्याकुल होकर इनके गिरते ही वायुदेव इन्द्रपर कुपित हो उठे । उनका यह क्रोध प्रजाजनोंके लिये अहितकारक हुआ ॥ ४८ ॥

प्रचारं स तु संगृह्य प्रजास्वन्तर्गतः प्रभुः ।
गुहां प्रविष्टः स्वसुतं शिशुमादाय मारुतः ॥ ४९ ॥

'सामर्थ्यशाली मारुतने समस्त प्रजाके भीतर रहकर भी वहाँ अपनी गति समेट ली—श्वास आदिके रूपमें संचार रोक दिया और अपने शिशुपुत्र हनुमान्‌को लेकर वे पर्वतकी गुफामें घुस गये ॥ ४९ ॥

विण्मूत्राशयमावृत्य प्रजानां परमार्तिकृत् ।
रुरोध सर्वभूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥

'जैसे इन्द्र वर्षा रोक देते हैं, उसी प्रकार वे वायुदेव प्रजाजनोंके मलाशय और मूत्राशयको रोककर उन्हें बड़ी पीड़ा देने लगे । उन्होंने सम्पूर्ण भूतोंके प्राण-संचारका अवरोध कर दिया ॥ ५० ॥

वायुप्रकोपाद् भूतानि निरुच्छ्वासानि सर्वतः ।
संधिभिर्भिद्यमानैश्च काष्ठभूतानि जज्ञिरे ॥ ५१ ॥

'वायुके प्रकोपसे समस्त प्राणियोंकी साँस बंद होने लगी । उनके सभी अङ्गोंके जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब काठके समान चेष्टाशून्य हो गये ॥ ५१ ॥

निःस्वाध्यायवषट्कारं निष्क्रियं धर्मवर्जितम् ।
वायुप्रकोपात् त्रैलोक्यं निरयस्थमिवाभवत् ॥ ५२ ॥

'तीनों लोकोंमें न कहीं वेदोंका स्वाध्याय होता था और न यज्ञ । सारे धर्म-कर्म बन्द हो गये । त्रिभुवनके प्राणी ऐसे कष्ट पाने लगे, मानो नरकमें गिर गये हों ॥ ५२ ॥

ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सदेवासुरमानुषाः ।
प्रजापतिं समाधावन् दुःखिताश्च सुखेच्छया ॥ ५३ ॥

'तब गन्धर्व, देवता, असुर और मनुष्य आदि सभी प्रजा व्यथित हो सुख पानेकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्माजीके पास दौड़ी गयी ॥ ५३ ॥

ऊचुः प्राञ्जलयो देवा महोदरनिभोदराः ।
त्वया तु भगवन् सृष्टाः प्रजा नाथ चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥
त्वया दत्तोऽयमस्माकमायुषः पवनः पतिः ।
सोऽस्मान् प्राणेश्वरो भूत्वा कस्मादेषोऽद्य सत्तम ॥ ५५ ॥
रुरोध दुःखं जनयन्नन्तःपुर इव स्त्रियः ।

'उस समय देवताओंके पेट इस तरह फूल गये थे, मानो उन्हें महोदरका रोग हो गया हो । उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन् ! स्वामिन् ! आपने चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि की है । आपने हम सबको हमारी आयुके अधिपतिके रूपमें वायुदेवको अर्पित किया है । साधुशिरोमणे ! ये पवनदेव हमारे प्राणोंके ईश्वर हैं तो भी क्या कारण है कि आज इन्होंने अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी भाँति हमारे शरीरके भीतर अपने संचारको रोक दिया है और इस प्रकार ये हमारे लिये दुःखजनक हो गये हैं ॥ ५४-५५½ ॥

तस्मात् त्वां शरणं प्राप्ता वायुनोपहता वयम् ॥ ५६ ॥
वायुसंरोधजं दुःखमिदं नो नुद दुःखहन् ।

'वायुसे पीड़ित होकर आज हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दुःखहारी प्रजापते ! आप हमारे इस वायुरोधजनित दुःखको दूर कीजिये' ॥५६½॥

एतत् प्रजानां श्रुत्वा तु प्रजानाथः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥
कारणादिति चोक्त्वासौ प्रजाः पुनरभाषत ।

'प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर उनके पालक और रक्षक ब्रह्माजीने कहा—'इसमें कुछ कारण है' ऐसा कहकर वे प्रजाजनोंसे फिर बोले— ॥५७½॥

यस्मिंश्च कारणे वायुश्चुक्रोध च रुरोध च ॥ ५८ ॥
प्रजाः शृणुध्वं तत् सर्वं श्रोतव्यं चात्मनः क्षमम् ।

'प्रजाओ ! जिस कारणको लेकर वायुदेवताने क्रोध और अपनी गतिका अवरोध किया है, उसे बताता हूँ, सुनो। वह कारण तुम्हारे सुनने योग्य और उचित है ॥५८½॥

पुत्रस्तस्यामरेशेन इन्द्रेणाद्य निपातितः ॥ ५९ ॥
राहोर्वचनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलः ।

'आज देवराज इन्द्रने राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको मार गिराया है, इसीलिये वे कुपित हो उठे हैं ॥५९½॥

अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ ६० ॥
शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभिः ।

'वायुदेव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरोंमें उनकी रक्षा करते हुए विचरते हैं। वायुके बिना यह शरीर सूखे काठके समान हो जाता है ॥६०½॥

वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ ६१ ॥
वायुना सम्परित्यक्तं न सुखं विन्दते जगत् ।

'वायु ही सबका प्राण है। वायु ही सुख है और वायु ही यह सम्पूर्ण जगत् है। वायुसे परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख नहीं पा सकता ॥६१½॥

अद्यैव च परित्यक्तं वायुना जगदायुषा ॥ ६२ ॥
अद्यैव ते निरुच्छ्वासाः काष्ठकुड्योपमाः स्थिताः ।

'वायु ही जगत्की आयु है। इस समय वायुने संसारके प्राणियोंको त्याग दिया है, इसलिये वे सब-के-सब निष्प्राण होकर काठ और दीवारके समान हो गये हैं ॥६२½॥

तद् यामस्तत्र यत्रास्ते मारुतो रुक्षदो हि नः ।
मा विनाशं गमिष्याम अप्रसाद्यादितेः सुताः ॥ ६३ ॥

'अदिति-पुत्रो ! अतः अब हमें उस स्थानपर चलना चाहिये, जहाँ हम सबको पीड़ा देनेवाले वायुदेव छिपे बैठे हैं। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रसन्न किये बिना हम सबका विनाश हो जाय' ॥ ६३ ॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः
सदेवगन्धर्वभुजङ्गगुह्यकैः ।
जगाम तत्रास्यति यत्र मारुतः
सुतं सुरेन्द्राभिहतं प्रगृह्य सः ॥ ६४ ॥

'तदनन्तर देवता, गन्धर्व, नाग और गुह्यक आदि प्रजाओंको साथ ले प्रजापति ब्रह्माजी उस स्थानपर गये, जहाँ वायुदेव इन्द्रद्वारा मारे गये अपने पुत्रको लेकर बैठे हुए थे ॥ ६४ ॥

ततोऽर्कवैश्वानरकाञ्चनप्रभं
सुतं तदोत्सङ्गगतं सदागतेः ।
चतुर्मुखो वीक्ष्य कृपामथाकरोत्
सदेवगन्धर्वऋषियक्षराक्षसैः ॥ ६५ ॥

'तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माजीने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों, यक्षों तथा राक्षसोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी गोदमें सोये हुए उनके पुत्रको देखा, जिसकी अङ्गकान्ति सूर्य, अग्नि और सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी। उसकी वैसी दशा देखकर ब्रह्माजीको उसपर बड़ी दया आयी' ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

—★—

षट्त्रिंशः सर्गः

ब्रह्मा आदि देवताओंका हनुमान्‌जीको जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें लेकर अञ्जनाके घर जाना, ऋषियोंके शापसे हनुमान्‌जीको अपने बलकी विस्मृति, श्रीरामका अगस्त्य आदि ऋषियोंसे अपने यज्ञमें पधारनेके लिये प्रस्ताव करके उन्हें विदा देना

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधार्दितः ।
शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः ॥ १ ॥

'पुत्रके मारे जानेसे वायुदेवता बहुत दुःखी थे। ब्रह्माजीको देखकर वे उस शिशुको लिये हुए ही उनके आगे खड़े हो गये ॥ १ ॥

चलकुण्डलमौलिस्रक् तपनीयविभूषणः ।
पादयोर्न्यपतद् वायुस्त्रिरुपस्थाय वेधसे ॥ २ ॥

'उनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे थे, माथेपर मुकुट और कण्ठमें हार शोभा दे रहे थे और वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे। वायुदेवता तीन बार उपस्थान करके ब्रह्माजीके

चरणोंमें गिर पड़े ॥ २ ॥

तं तु वेदविदातेन लम्बाभरणशोभिना ।
वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान् ॥ ३ ॥

'वेदवेत्ता ब्रह्माजीने अपने लम्बे, फैले हुए और आभरणभूषित हाथसे वायुदेवताको उठाकर खड़ा किया तथा उनके उस शिशुपर भी हाथ फेरा ॥ ३ ॥

स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मजन्मना ।
जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान् ॥ ४ ॥

'जैसे पानीसे सींच देनेपर सूखती हुई खेती हरी हो जाती है, उसी प्रकार कमलयोनि ब्रह्माजीके हाथका लीलापूर्वक स्पर्श पाते ही शिशु हनुमान् पुनः जीवित हो गये ॥ ४ ॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा ।
चचार सर्वभूतेषु संनिरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥

'हनुमान्‌को जीवित हुआ देख जगत्‌के प्राणस्वरूप गन्ध-वाहन वायुदेव समस्त प्राणियोंके भीतर अवरुद्ध हुए प्राण आदिका पूर्ववत् प्रसन्नतापूर्वक संचार करने लगे ॥ ५ ॥

मरुद्रोधाद् विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिताऽभवन् ।
शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः ॥ ६ ॥

वायुके अवरोधसे छूटकर सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। ठीक उसी तरह, जैसे हिमयुक्त वायुके आघातसे मुक्त होकर खिले हुए कमलोंसे युक्त पुष्करिणियाँ सुशोभित होने लगती हैं ॥ ६ ॥

ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत् त्रिधामा त्रिदशार्चितः ।
उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

तदनन्तर तीन युग्मोंसे[1] सम्पन्न, प्रधानतः तीन मूर्ति[2] धारण करनेवाले, त्रिलोकरूपी गृहमें रहनेवाले तथा तीन दशाओंसे[3] युक्त देवताओंद्वारा पूजित ब्रह्माजी वायुदेवताका प्रिय करनेकी इच्छासे देवगणोंसे बोले— ॥ ७ ॥

भो महेन्द्राग्निवरुणा महेश्वरधनेश्वराः ।
जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम् ॥ ८ ॥

'इन्द्र, अग्नि, वरुण, महादेव और कुबेर आदि देवताओ ! यद्यपि आप सब लोग जानते हैं तथापि मैं आप-लोगोंके हितकी सारी बातें बताऊँगा, सुनिये ॥ ८ ॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ।
तद् ददध्वं वरान् सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये ॥ ९ ॥

'इस बालकके द्वारा भविष्यमें आपलोगोंके बहुत-से कार्य सिद्ध होंगे, अतः वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये आप सब लोग इसे वर दें' ॥ ९ ॥

ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः ।
कुशेशयमयीं मालामुत्क्षेप्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तब सुन्दर मुखवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्रने शिशु हनुमान्‌के गलेमें बड़ी प्रसन्नताके साथ कमलोंकी माला पहना दी और यह बात कही— ॥ १० ॥

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः ।
नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ॥ ११ ॥

'मेरे हाथसे छूटे हुए वज्रके द्वारा इस बालककी हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी; इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम 'हनुमान्' होगा ॥ ११ ॥

अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम् ।
इतः प्रभृति वज्रस्य ममावध्यो भविष्यति ॥ १२ ॥

इसके सिवा मैं इसे दूसरा अद्भुत वर यह देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रके द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा' ॥ १२ ॥

मार्तण्डस्त्वब्रवीत् तत्र भगवांस्तिमिरापहः ।
तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम् ॥ १३ ॥

इसके बाद वहाँ अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यने कहा—'मैं इसे अपने तेजका सौवाँ भाग देता हूँ ॥ १३ ॥

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति ।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ।
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने ॥ १४ ॥

'इसके सिवा जब इसमें शास्त्राध्ययन करनेकी शक्ति आ जायगी, तब मैं ही इसे शास्त्रोंका ज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह अच्छा वक्ता होगा। शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी समानता करनेवाला न होगा' ॥ १४ ॥

वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति ।
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् वरुणने वर देते हुए कहा—'दस लाख वर्षोंकी आयु हो जानेपर भी मेरे पाश और जलसे इस बालककी मृत्यु नहीं होगी' ॥ १५ ॥

यमो दण्डादवध्यत्वमरोगत्वं च दत्तवान् ।
वरं ददामि संतुष्ट अविषादं च संयुगे ॥ १६ ॥
गदेयं मामिका नैनं संयुगेषु वधिष्यति ।
इत्येवं धनदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः ॥ १७ ॥

फिर यमने वर दिया—'यह मेरे दण्डसे अवध्य और नीरोग होगा।' तदनन्तर पिंगलवर्णकी एक आँखवाले कुबेरने कहा—'मैं संतुष्ट होकर यह वर देता हूँ कि युद्धमें कभी इसे विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राममें इसका वध न कर सकेगी' ॥ १६-१७ ॥

मत्तो मदायुधानां च अवध्योऽयं भविष्यति ।
इत्येवं शङ्करेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः ॥ १८ ॥

---

१. तीन युग्मोंका तात्पर्य यहाँ छः प्रकारके ऐश्वर्यसे है। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये ही छः प्रकारके ऐश्वर्य हैं।
२. ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये ही तीन मूर्तियाँ हैं।
३. बाल्य, पौगण्ड तथा कैशोर—ये ही देवताओंकी तीन अवस्थाएँ हैं।

इसके बाद भगवान् शङ्करने यह उत्तम वर दिया कि 'यह मेरे और मेरे आयुधोंके द्वारा भी अवध्य होगा' ॥ १८ ॥

विश्वकर्मा च दृष्ट्वेमं बालसूर्योपमं शिशुम्।
शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद् वरमस्य महामतिः ॥ १९ ॥

शिल्पियोंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले उस शिशुको देखकर उसे इस प्रकार वर दिया— ॥ १९ ॥

मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि तानि च।
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरजीवी भविष्यति ॥ २० ॥

'मेरे बनाये हुए जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे अवध्य होकर यह बालक चिरञ्जीवी होगा' ॥ २० ॥

दीर्घायुश्च महात्मा च ब्रह्मा तं प्राब्रवीद् वचः।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति ॥ २१ ॥

अन्तमें ब्रह्माजीने उस बालकको लक्ष्य करके कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा' ॥ २१ ॥

ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलङ्कृतम्।
चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जीको इस प्रकार देवताओंके वरोंसे अलङ्कृत देख चार मुखोंवाले जगद्गुरु ब्रह्माजीका मन प्रसन्न हो गया और वे वायुदेवसे बोले— ॥ २२ ॥

अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥ २३ ॥

'मारुत! तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओंके लिये भयंकर और मित्रोंके लिये अभयदाता होगा। युद्धमें कोई भी इसे जीत न सकेगा ॥ २३ ॥

कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः।
भवत्यव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति ॥ २४ ॥

'यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा, जहाँ चाहेगा जा सकेगा। इसकी गति इसकी इच्छाके अनुसार तीव्र या मन्द होगी तथा वह कहीं भी रुक नहीं सकेगी। यह कपिश्रेष्ठ बड़ा यशस्वी होगा ॥ २४ ॥

रावणोत्सादनार्थानि रामप्रीतिकराणि च।
रोमहर्षकराण्येव कर्ता कर्माणि संयुगे ॥ २५ ॥

'यह युद्धस्थलमें रावणका संहार और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका सम्पादन करनेवाले अनेक अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कर्म करेगा' ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरैः सह।
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २६ ॥

इस प्रकार हनुमान्‌जीको वर देकर वायुदेवताको अनुमति ले ब्रह्मा आदि सब देवता जैसे आये थे, उसी तरह अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥

सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत्।
अञ्जनायास्तमाख्याय वरदत्तं विनिर्गतः ॥ २७ ॥

गन्धवाहन वायु भी पुत्रको लेकर अञ्जनाके घर आये और उसे देवताओंके दिये हुए वरदानकी बात बताकर चले गये ॥ २७ ॥

प्राप्य राम वरानेष वरदानबलान्वितः।
जवेनात्मनि संस्थेन सोऽसौ पूर्ण इवार्णवः ॥ २८ ॥

श्रीराम! इस प्रकार ये हनुमान्‌जी बहुत-से वर पाकर वरदानजनित शक्तिसे सम्पन्न हो गये और अपने भीतर विद्यमान अनुपम वेगसे पूर्ण हो भरे हुए महासागरके समान शोभा पाने लगे ॥ २८ ॥

तरसा पूर्यमाणोऽपि तदा वानरपुङ्गवः।
आश्रमेषु महर्षीणामपराध्यति निर्भयः ॥ २९ ॥

उन दिनों वेगसे भरे हुए ये वानरशिरोमणि हनुमान् निर्भय हो महर्षियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उपद्रव किया करते थे ॥ २९ ॥

स्रुग्भाण्डान्यग्निहोत्राणि वल्कलानां च संचयान्।
भग्नविच्छिन्नविध्वस्तान् संशान्तानां करोत्ययम् ॥ ३० ॥

ये शान्तचित्त महात्माओंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते, अग्निहोत्रके साधनभूत स्रुक्, स्रुवा आदिको तोड़ डालते और ढेर-के-ढेर रखे गये वल्कलोंको चीर-फाड़ देते थे ॥ ३० ॥

एवंविधानि कर्माणि प्रावर्तत महाबलः।
सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्यः शम्भुना कृतः ॥ ३१ ॥
जानन्त ऋषयः सर्वे सहन्ते तस्य शक्तितः।

'महाबली पवनकुमार इस तरहके उपद्रवपूर्ण कार्य करने लगे। कल्याणकारी भगवान् ब्रह्माने इन्हें सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य कर दिया है—यह बात सभी ऋषि जानते थे; अतः इनकी शक्तिसे विवश हो वे इनके सारे अपराध चुपचाप सह लेते थे ॥ ३१½ ॥

तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनीसुतः ॥ ३२ ॥
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येव वानरः।

यद्यपि केसरी तथा वायुदेवताने भी इन अञ्जनीकुमारको बारम्बार मना किया तो भी ये वानरवीर मर्यादाका उल्लङ्घन कर ही देते थे ॥ ३२½ ॥

ततो महर्षयः क्रुद्धा भृग्वङ्गिरसवंशजाः ॥ ३३ ॥
शेपुरेनं रघुश्रेष्ठ नातिक्रुद्धातिमन्यवः।

इससे भृगु और अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न हुए महर्षि कुपित हो उठे। रघुश्रेष्ठ! उन्होंने अपने हृदयमें अधिक खेद या दुःखको स्थान न देकर इन्हें शाप देते हुए कहा— ॥ ३३½ ॥

बाधसे यत् समाश्रित्य बलमस्मान् प्लवङ्गम ॥ ३४ ॥

तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्माकं शापमोहितः ।
यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम् ॥ ३५ ॥

'वानरवीर ! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, वह हमारे शापसे मोहित होकर तुम दीर्घकालतक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही नहीं चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा ॥ ३४-३५ ॥

ततस्तु हततेजौजा महर्षिवचनौजसा ।
एषोऽश्रमाणि तान्येव मृदुभावं गतोऽचरत् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार महर्षियोंके इस वचनके प्रभावसे इनका तेज और ओज घट गया। फिर ये इन्हीं आश्रमोंमें मृदुल प्रकृतिके होकर विचरने लगे ॥ ३६ ॥

अथर्क्षरजसो नाम वालिसुग्रीवयोः पिता ।
सर्ववानरराजासीत् तेजसा इव भास्करः ॥ ३७ ॥

वाली और सुग्रीवके पिताका नाम ऋक्षरजा था। वे सूर्यके समान तेजस्वी तथा समस्त वानरोंके राजा थे ॥ ३७ ॥

स तु राज्यं चिरं कृत्वा वानराणां महेश्वरः ।
ततस्त्वर्क्षरजा नाम कालधर्मेण योजितः ॥ ३८ ॥

वे वानरराज ऋक्षरजा चिरकालतक वानरोंके राज्यका शासन करके अन्तमें कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥

तस्मिन्नस्तमिते चाथ वन्तिभिर्मन्त्रकोविदैः ।
पित्र्ये पदे कृतो वाली सुग्रीवो वालिनः पदे ॥ ३९ ॥

इनका देहावसान हो जानेपर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंने पिताके स्थानपर वालीको राजा और वालीके स्थानपर सुग्रीवको युवराज बनाया ॥ ३९ ॥

सुग्रीवेण समं त्वस्य अर्द्धं छिद्रवर्जितम् ।
आबाल्यं सख्यमभवदनिलस्याग्निना यथा ॥ ४० ॥

जैसे अग्निके साथ वायुकी स्वाभाविक मित्रता है, उसी प्रकार सुग्रीवके साथ वालीका बचपनसे ही सख्यभाव था। उन दोनोंमें परस्पर किसी प्रकारका भेदभाव नहीं था। उनमें अटूट प्रेम था ॥ ४० ॥

एष शापवशादेव न वेद बलमात्मनः ।
वालिसुग्रीवयोर्वैरं यदा राम समुत्थितम् ॥ ४१ ॥
न ह्येष राम सुग्रीवो भ्राम्यमाणोऽपि वालिना ।
वेत्ति जानाति न ह्येष बलमात्मनि मारुतिः ॥ ४२ ॥

श्रीराम ! फिर जब वाली और सुग्रीवमें वैर उठ खड़ा हुआ, उस समय ये हनुमान्‌जी शापवश ही अपने बलको न जान सके। देव ! वालीके भयसे भटकते रहनेपर भी न तो इन सुग्रीवको इनके बलका स्मरण हुआ और न स्वयं ये पवनकुमार ही अपने बलका पता पा सके ॥ ४१-४२ ॥

ऋषिशापाहृतबलस्तदैव कपिसत्तमः ।
सिंहः कुञ्जररुद्धो वा आस्थितः सहितो रणे ॥ ४३ ॥

सुग्रीवके ऊपर जब वह विपत्ति आयी थी, उस दिनों ऋषियोंके शापके कारण इनको अपने बलका ज्ञान भूल गया था, इसीलिये जैसे कोई सिंह हाथीके द्वारा अवरुद्ध होकर चुपचाप खड़ा रहे, उसी प्रकार ये वाली और सुग्रीवके युद्धमें चुपचाप खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे, कुछ कर न सके ॥ ४३ ॥

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥ ४४ ॥

संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो ॥ ४४ ॥

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥ ४५ ॥

ये असीम शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरणका अध्ययन करनेके लिये शङ्काएँ पूछनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुँह करके महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचलतक जाते थे ॥ ४५ ॥

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥ ४६ ॥

इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह—इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दःशास्त्रके अध्ययनमें भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है ॥ ४६ ॥

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता
ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। नव व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमान्‌जी आपकी कृपासे साक्षात् ब्रह्माके समान आदरणीय होंगे ॥ ४७ ॥

प्रवीविविक्षोरिव सागरस्य
लोकान् दिधक्षोरिव पावकस्य ।
लोकक्षयेष्वेव यथान्तकस्य
हनूमतः स्थास्यति कः पुरस्तात् ॥ ४८ ॥

प्रलयकालमें भूतलको आप्लावित करनेके लिये भूमिके भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागर, सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर डालनेके लिये उद्यत हुए संवर्तक अग्नि तथा

लोकसंहारके लिये उठे हुए कालके समान प्रभावशाली इन हनुमान्‌जीके सामने कौन ठहर सकेगा ॥ ४८ ॥

एषेव चान्ये च महाकपीन्द्राः
सुग्रीवमैन्दद्विविदाः सनीलाः ।
सतारतारेयनलाः सरम्भा-
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ४९ ॥

श्रीराम ! वास्तवमें ये तथा इन्हींके समान दूसरे-दूसरे जो सुग्रीव, मैन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय (अङ्गद), नल तथा रम्भ आदि महाकपीश्वर हैं; इन सबकी सृष्टि देवताओंने आपकी सहायताके लिये ही की है ॥ ४९ ॥

गजो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्रो
मैन्दः प्रभो ज्योतिमुखो नलश्च ।
एते च ऋक्षाः सह वानरेन्द्रै-
स्त्वत्कारणाद् राम सुरैर्हि सृष्टाः ॥ ५० ॥

श्रीराम ! गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, मैन्द, प्रभ, ज्योतिमुख और नल—इन सब वानरेश्वरों तथा रीछोंकी सृष्टि देवताओंने आपके सहयोगके लिये ही की है ॥ ५० ॥

तदेतत् कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
हनूमतो बालभावे कर्मैतत् कथितं मया ॥ ५१ ॥

रघुनन्दन ! आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह सुनाया । हनुमान्‌जीकी बाल्यावस्थाके इस चरित्रका भी वर्णन कर दिया ॥ ५१ ॥

श्रुत्वागस्त्यस्य कथितं रामः सौमित्रिरेव च ।
विस्मयं परमं जग्मुर्वानरा राक्षसैः सह ॥ ५२ ॥

अगस्त्यजीका यह कथन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण बड़े विस्मित हुए । वानरों और राक्षसोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५२ ॥

अगस्त्यस्त्वब्रवीद् रामं सर्वमेतच्छ्रुतं त्वया ।
दृष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५३ ॥

तत्पश्चात् अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा— 'योगियोंके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीराम ! आप यह सारा प्रसङ्ग सुन चुके । हमलोगोंने आपका दर्शन और आपके साथ वार्तालाप कर लिया । इसलिये अब हम जा रहे हैं' ॥ ५३ ॥

श्रुत्वैतद् राघवो वाक्यमगस्त्यस्योग्रतेजसः ।
प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिमिदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

उग्र तेजस्वी अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उन महर्षिसे इस प्रकार कहा— ॥ ५४ ॥

अद्य मे देवतास्तुष्टाः पितरः प्रपितामहाः ।
युष्माकं दर्शनादेव नित्यं तुष्टाः सबान्धवाः ॥ ५५ ॥

'मुनीश्वर ! आज मुझपर देवता, पितर और पितामह आदि विशेषरूपसे संतुष्ट हैं । बन्धु-बान्धवोंसहित हमलोगोंको तो आप-जैसे महात्माओंके दर्शनसे ही सदा संतोष है ॥ ५५ ॥

विज्ञाप्यं तु ममैतद्धि यद् वदाम्यागतस्पृहः ।
तद् भवद्भिर्मम कृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५६ ॥

'मेरे मनमें एक इच्छाका उदय हुआ है, अतः मैं यह सूचित करनेयोग्य बात आपकी सेवामें निवेदन कर रहा हूँ । मुझपर अनुग्रह करके आपलोगोंको मेरे उस अभीष्ट कार्यको पूरा करना होगा ॥ ५६ ॥

पौरजानपदान् स्थाप्य स्वकार्येष्वहमागतः ।
क्रतूनहं करिष्यामि प्रभावाद् भवतां सताम् ॥ ५७ ॥

'मेरी इच्छा है कि पुरवासी और देशवासियोंको अपने-अपने कार्योंमें लगाकर मैं आप सत्पुरुषोंके प्रभावसे यज्ञोंका अनुष्ठान करूँ ॥ ५७ ॥

सदस्या मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तु ।
भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ५८ ॥

'मेरे उन यज्ञोंमें आप महान् शक्तिशाली महात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये नित्य सदस्य बने रहें ॥ ५८ ॥

अहं युष्मान् समाश्रित्य तपोनिर्धूतकल्मषान् ।
अनुगृहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्वृतः ॥ ५९ ॥

'आप तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं । मैं आपलोगोंका आश्रय लेकर सदा संतुष्ट एवं पितरोंसे अनुगृहीत होऊँगा ॥ ५९ ॥

तदागन्तव्यमनिशं भवद्भिरिह संगतैः ।
अगस्त्याद्यास्तु तच्छ्रुत्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥ ६० ॥
एवमस्त्विति तं प्रोच्य प्रयातुमुपचक्रमुः ।

'यज्ञ-आरम्भके समय सब लोग एकत्र होकर निरन्तर यहाँ आते रहें ।' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले अगस्त्य आदि महर्षि उनसे 'एवमस्तु (ऐसा ही होगा)' कहकर वहाँसे जानेको उद्यत हुए ॥ ६० ½ ॥

एवमुक्त्वा गताः सर्वे ऋषयस्ते यथागतम् ॥ ६१ ॥
राघवश्च तमेवार्थं चिन्तयामास विस्मितः ।

इस प्रकार बातचीत करके सब ऋषि जैसे आये थे, वैसे चले गये । इधर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं बातोंपर विचार करते रहे ॥ ६१ ½ ॥

ततोऽस्तं भास्करे याते विसृज्य नृपवानरान् ॥ ६२ ॥
संध्यामुपास्य विधिवत् तदा नरवरोत्तमः ।
प्रवृत्तायां रजन्यां तु सोऽन्तःपुरचरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर सूर्यास्त होनेपर राजाओं और वानरोंको विदा करके नरेशोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक संध्योपासना की और रात होनेपर वे अन्तःपुरमें पधारे ॥ ६२-६३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः

श्रीरामका सभासदोंके साथ राजसभामें बैठना

अभिषिक्ते तु काकुत्स्थे धर्मेण विदितात्मनि।
व्यतीता या निशा पूर्वा पौराणां हर्षवर्धिनी॥ १॥

ककुत्स्थकुलभूषण आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीका धर्मपूर्वक राज्याभिषेक हो जानेपर पुरवासियोंका हर्ष बढ़ानेवाली उनकी पहली रात्रि व्यतीत हुई॥ १॥

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां प्रातर्नृपतिबोधकाः।
वन्दिनः समुपातिष्ठन् सौम्या नृपतिवेश्मनि॥ २॥

वह रात बीतनेपर जब सबेरा हुआ, तब प्रातःकाल महाराज श्रीरामको जगानेवाले सौम्य वन्दीजन राजमहलमें उपस्थित हुए॥ २॥

ते रक्तकण्ठिनः सर्वे किन्नरा इव शिक्षिताः।
तुष्टुवुर्नृपतिं वीरं यथावत् सम्प्रहर्षिणः॥ ३॥

उनके कण्ठ बड़े मधुर थे। वे संगीतकी कलामें किन्नरोंके समान सुशिक्षित थे। उन्होंने बड़े हर्षमें भरकर यथावत्-रूपमें वीर नरेश श्रीरघुनाथजीका स्तवन आरम्भ किया॥ ३॥

वीर सौम्य प्रबुध्यस्व कौसल्याप्रीतिवर्धन।
जगद्विं सर्वं स्वपिति त्वयि सुप्ते नराधिप॥ ४॥

'श्रीकौसल्याजीका आनन्द बढ़ानेवाले सौम्य-स्वरूप वीर श्रीरघुवीर! आप जागिये। महाराज! आपके सोये रहनेपर तो सारा जगत् ही सोया रहेगा (ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्मानुष्ठानमें नहीं लग सकेगा)॥ ४॥

विक्रमस्ते यथा विष्णो रूपं चैवाश्विनोरिव।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यः प्रजापतिसमो ह्यसि॥ ५॥

'आपका पराक्रम भगवान् विष्णुके समान तथा रूप अश्विनीकुमारोंके समान है। बुद्धिमें आप बृहस्पतिके तुल्य हैं और प्रजा-पालनमें साक्षात् प्रजापतिके सदृश हैं॥ ५॥

क्षमा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः।
वेगस्ते वायुना तुल्यो गाम्भीर्यमुदधेरिव॥ ६॥

'आपकी क्षमा पृथ्वीके समान और तेज भगवान् भास्करके समान है। वेग वायुके तुल्य और गम्भीरता समुद्रके सदृश है॥ ६॥

अप्रकम्प्यो यथा स्थाणुश्चन्द्रे सौम्यत्वमीदृशम्।
नेदृशाः पार्थिवाः पूर्वं भवितारो नराधिप॥ ७॥

'नरेश्वर! आप भगवान् शङ्करके समान युद्धमें अविचल हैं। आपकी-सी सौम्यता चन्द्रमामें ही पायी जाती है। आपके समान राजा न पहले थे और न भविष्यमें होंगे॥ ७॥

यथा त्वमसि दुर्धर्षो धर्मनित्यः प्रजाहितः।
न त्वां जहाति कीर्तिश्च लक्ष्मीश्च पुरुषर्षभ॥ ८॥

'पुरुषोत्तम! आपको परास्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है। आप सदा धर्ममें संलग्न रहते हुए प्रजाके हित-साधनमें तत्पर रहते हैं, अतः कीर्ति और लक्ष्मी आपको कभी नहीं छोड़ती हैं॥ ८॥

श्रीश्च धर्मश्च काकुत्स्थ त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितौ।
एताश्चान्याश्च मधुरा वन्दिभिः परिकीर्तिताः॥ ९॥

'ककुत्स्थकुलनन्दन! ऐश्वर्य और धर्म आपमें नित्य प्रतिष्ठित हैं।' वन्दीजनोंने ये तथा और भी बहुत-सी सुमधुर स्तुतियाँ सुनायीं॥ ९॥

सूताश्च संस्तवैर्दिव्यैर्बोधयन्ति स्म राघवम्।
स्तुतिभिः स्तूयमानाभिः प्रत्यबुध्यत राघवः॥ १०॥

सूत भी दिव्य स्तुतियोंद्वारा श्रीरघुनाथजीको जगाते रहे। इस प्रकार सुनायी जाती हुई स्तुतियोंके द्वारा भगवान् श्रीराम जागे॥ १०॥

स तद्विहाय शयनं पाण्डुराच्छादनास्तृतम्।
उत्तस्थौ नागशयनाद्धरिर्नारायणो यथा॥ ११॥

जैसे पापहारी भगवान् नारायण शेषशय्यासे उठते हैं, उसी प्रकार वे भी श्वेत बिछौनोंसे ढकी हुई शय्याको छोड़कर उठ बैठे॥ ११॥

तमुत्थितं महात्मानं प्रह्वाः प्राञ्जलयो नराः।
सलिलं भाजनैः शुभ्रैरुपतस्थुः सहस्रशः॥ १२॥

महाराजके शय्यासे उठते ही सहस्रों सेवक विनयपूर्वक हाथ जोड़ उज्ज्वल पात्रोंमें जल लिये उनकी सेवामें उपस्थित हुए॥ १२॥

कृतोदकः शुचिर्भूत्वा काले हुतहुताशनः।
देवागारं जगामाशु पुण्यमिक्ष्वाकुसेवितम्॥ १३॥

स्नान आदि करके शुद्ध हो उन्होंने समयपर अग्निमें आहुति दी और शीघ्र ही इक्ष्वाकुवंशियोंद्वारा सेवित पवित्र देवमन्दिरमें वे पधारे॥ १३॥

तत्र देवान् पितॄन् विप्रानर्चयित्वा यथाविधि।
बाह्यकक्षान्तरं रामो निर्जगाम जनैर्वृतः॥ १४॥

वहाँ देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंका विधिवत् पूजन करके वे अनेक कर्मचारियोंके साथ बाहरकी ड्योढ़ीमें आये॥ १४॥

उपतस्थुर्महात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिताः।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे दीप्यमाना इवाग्नयः॥ १५॥

इसी समय प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वसिष्ठ आदि सभी महात्मा मन्त्री और पुरोहित वहाँ उपस्थित हुए॥ १५॥

क्षत्रियाश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः।
रामस्योपाविशन् पार्श्वे शक्रस्येव यथामराः॥ १६॥

तत्पश्चात् अनेकानेक जनपदोंके स्वामी महामनस्वी क्षत्रिय श्रीरामचन्द्रजीके पास उसी तरह आकर बैठे, जैसे इन्द्रके समीप देवतालोग आकर बैठा करते हैं॥ १६॥

भरतो लक्ष्मणश्चात्र शत्रुघ्नश्च महायशाः।
उपासांचक्रिरे हृष्टा वेदास्त्रय इवाध्वरम्॥ १७॥

महायशस्वी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—ये तीनों भाई बड़े हर्षके साथ उसी तरह भगवान् श्रीरामकी सेवामें उपस्थित रहते थे, जैसे तीनों वेद यज्ञकी ॥ १७ ॥

याताः प्राञ्जलयो भूत्वा किंकरा मुदिताननाः ।
मुदिता नाम पार्श्वस्था बहवः समुपाविशन् ॥ १८ ॥

इसी समय मुदित नामसे प्रसिद्ध बहुत-से सेवक भी, जिनके मुखपर प्रसन्नता खेलती रहती थी, हाथ जोड़े सभाभवनमें आये और श्रीरघुनाथजीके पास बैठ गये ॥ १८ ॥

वानराश्च महावीर्या विंशतिः कामरूपिणः ।
सुग्रीवप्रमुखा राममुपासन्ते महौजसः ॥ १९ ॥

फिर महापराक्रमी महातेजस्वी तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुग्रीव आदि बीस[1] वानर भगवान् श्रीरामके समीप आकर बैठे ॥ १९ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिश्चतुर्भिः परिवारितः ।
उपासते महात्मानं धनेशमिव गुह्यकः ॥ २० ॥

अपने चार राक्षस मन्त्रियोंसे घिरे हुए विभीषण भी उसी प्रकार महात्मा श्रीरामकी सेवामें उपस्थित हुए, जैसे गुह्यकगण धनपति कुबेरकी सेवामें उपस्थित होते हैं ॥ २० ॥

तथा निगमवृद्धाश्च कुलीना ये च मानवाः ।
शिरसा वन्द्य राजानमुपासन्ते विचक्षणाः ॥ २१ ॥

जो लोग शास्त्रज्ञानमें बढ़े-चढ़े और कुलीन थे, वे चतुर मनुष्य भी महाराजको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके वहाँ बैठ गये ॥ २१ ॥

तथा परिवृतो राजा श्रीमद्भिर्ऋषिभिर्वरैः ।
राजभिश्च महावीर्यैर्वानरैश्च सराक्षसैः ॥ २२ ॥

इस प्रकार बहुत-से श्रेष्ठ एवं तेजस्वी महर्षि, महापराक्रमी राजा, वानर और राक्षसोंसे घिरे राजसभामें बैठे हुए श्रीरघुनाथजी बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ २२ ॥

यथा देवेश्वरो नित्यमृषिभिः समुपास्यते ।
अधिकस्तेन रूपेण सहस्राक्षाद् विरोचते ॥ २३ ॥

जैसे देवराज इन्द्र सदा ऋषियोंसे सेवित होते हैं, उसी तरह महर्षि-मण्डलीसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी उस समय सहस्रलोचन इन्द्रसे भी अधिक शोभा पा रहे थे ॥ २३ ॥

तेषां समुपविष्टानां तास्ताः सुमधुराः कथाः ।
कथ्यन्ते धर्मसंयुक्ताः पुराणज्ञैर्महात्मभिः ॥ २४ ॥

जब सब लोग यथास्थान बैठ गये, तब पुराणवेत्ता महात्मा लोग भिन्न-भिन्न धर्म-कथाएँ कहने लगे[2] ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण आदिकाव्यके उत्तरकाण्डमें सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

—★—

अष्टात्रिंशः सर्गः

श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित्, प्रतर्दन तथा अन्य नरेशोंकी विदाई

एवमास्ते महाबाहुरहन्यहनि राघवः ।
प्रशासत् सर्वकार्याणि पौरजानपदेषु च ॥ १ ॥

महाबाहु श्रीरघुनाथजी इसी प्रकार प्रतिदिन राजसभामें बैठकर पुरवासियों और जनपदवासियोंके सारे कार्योंकी देखभाल करते हुए शासनका कार्य चलाते थे ॥ १ ॥

ततः कतिपयाहःसु वैदेहं मिथिलाधिपम् ।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ दिन बीतनेपर श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलानरेश विदेहराज जनकजीसे हाथ जोड़कर यह बात कही— ॥ २ ॥

भवान् हि गतिरव्यग्रा भवता पालिता वयम् ।
भवतस्तेजसोग्रेण रावणो निहतो मया ॥ ३ ॥

'महाराज ! आप ही हमारे सुस्थिर आश्रय हैं। आपने सदा हमलोगोंका लालन-पालन किया है। आपके ही बढ़े हुए तेजसे मैंने रावणका वध किया है ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां मैथिलानां च सर्वशः ।
अतुलाः प्रीतयो राजन् सम्बन्धकपुरोगमाः ॥ ४ ॥

'राजन् ! समस्त इक्ष्वाकुवंशी और मैथिल नरेशोंमें आपसके सम्बन्धके कारण सब प्रकारसे जो प्रेम बढ़ा है, उसकी कहीं तुलना नहीं है ॥ ४ ॥

तद् भवान् स्वपुरं यातु रत्नान्यादाय पार्थिव ।
भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतश्चानुयास्यति ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! अब आप हमारे द्वारा भेंट किये गये ये रत्न

---

१. सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, सुषेण, तार, नील, नल, मैन्द, द्विविद, कुमुद, शरभ, शतबलि, गन्धमादन, गज, गवाक्ष, गवय, धूम्र, रम्भ तथा ज्योतिर्मुख—ये प्रधान-प्रधान वानर-वीर बीसकी संख्यामें उपस्थित थे।

२. इस सर्गके बाद कुछ प्रतियोंमें प्रक्षिप्तरूपसे पाँच सर्ग और उपलब्ध होते हैं, जिनमें वाली और सुग्रीवकी उत्पत्तिका तथा रावणके श्वेतद्वीपमें गमनका इतिहास वर्णित है। इस इतिहासके वक्ता भी अगस्त्यजी ही हैं। परंतु इसके पहले सर्गमें ही अगस्त्यजीके विदा होनेका वर्णन आ गया है; अतः यहाँ इन सर्गोंका उल्लेख असङ्गत प्रतीत होता है। इसीलिये ये सर्ग यहाँ नहीं लिये गये हैं।

लेकर अपनी राजधानीको पधारें। भरत (तथा उनके साथ-साथ शत्रुघ्न भी) आपकी सहायताके लिये आपके पीछे-पीछे जायँगे' ॥ ५ ॥

स तथेति ततः कृत्वा राघवं वाक्यमब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि भवता राजन् दर्शनेन नयेन च ॥ ६ ॥

तब जनकजी 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'राजन्! मैं आपके दर्शन तथा न्यायानुसार व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥

यान्येतानि तु रत्नानि मदर्थं संचितानि वै।
दुहित्रे तान्यहं राजन् सर्वाण्येव ददामि वै ॥ ७ ॥

'आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्र किये हैं, वह सब मैं अपनी सीता आदि पुत्रियोंको देता हूँ ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं जनको हृष्टमानसः।
प्रययौ मिथिलां श्रीमांस्तमनुज्ञाय राघवम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसा कहकर श्रीमान् राजा जनक प्रसन्न चित्त हो श्रीरामकी अनुमति ले मिथिलापुरीको चल दिये ॥ ८ ॥

ततः प्रयाते जनके केकयं मातुलं प्रभुम्।
राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

जनकजीके चले जानेके पश्चात् श्रीरघुनाथजीने हाथ जोड़कर अपने मामा केकय-नरेश युधाजित्‌से, जो बड़े सामर्थ्यशाली थे, विनयपूर्वक कहा— ॥ ९ ॥

इदं राज्यमहं चैव भरतश्च सलक्ष्मणः।
आयत्तस्त्वं हि नो राजन् गतिश्च पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

'राजन्! पुरुषप्रवर! यह राज्य, मैं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—सब आपके अधीन हैं। आप ही हमारे आश्रय हैं ॥ १० ॥

राजा हि वृद्धः संतापं त्वदर्थमुपयास्यति।
तस्माद् गमनमद्यैव रोचते तव पार्थिव ॥ ११ ॥

'महाराज केकयराज वृद्ध हैं। वे आपके लिये बहुत चिन्तित होंगे। इसलिये पृथ्वीनाथ! आपका आज ही जाना मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ ११ ॥

लक्ष्मणेनानुयात्रेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते।
धनमादाय बहुलं रत्नानि विविधानि च ॥ १२ ॥

'आप बहुत-सा धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर पधारें। मार्गमें सहायताके लिये लक्ष्मण आपके साथ जायँगे' ॥ १२ ॥

युधाजित् तु तथेत्याह गमनं प्रति राघव।
रत्नानि च धनं चैव स्वयंवाक्षय्यमस्विति ॥ १३ ॥

तब युधाजित्‌ने 'तथास्तु' कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी बात मान ली और कहा—'रघुनन्दन! ये रत्न और धन सब तुम्हारे ही पास अक्षयरूपसे रहें ॥ १३ ॥

प्रदक्षिणं च राजानं कृत्वा केकयवर्धनः।
रामेण च कृतः पूर्वमभिवाद्य प्रदक्षिणम् ॥ १४ ॥

फिर पहले श्रीरघुनाथजीने प्रणामपूर्वक अपने मामाकी परिक्रमा की, इसके बाद केकयकुलकी वृद्धि करनेवाले राजकुमार युधाजित्‌ने भी राजा श्रीरामकी प्रदक्षिणा की ॥ १४ ॥

लक्ष्मणेन सहायेन प्रयातः केकयेश्वरः।
हतेऽसुरे यथा वृत्रे विष्णुना सह वासवः ॥ १५ ॥

इसके बाद केकयराजने लक्ष्मणजीके साथ उसी तरह अपने देशको प्रस्थान किया, जैसे वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रने भगवान् विष्णुके साथ अमरावतीकी यात्रा की थी ॥ १५ ॥

तं विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

मामाको विदा करके रघुनाथजीने किसीसे भी भय न माननेवाले अपने मित्र काशिराज प्रतर्दनको हृदयसे लगाकर कहा— ॥ १६ ॥

दर्शिता भवता प्रीतिर्दर्शितं सौहृदं परम्।
उद्योगश्च त्वया राजन् भरतेन कृतः सह ॥ १७ ॥

'राजन्! आपने राज्याभिषेकके कार्यमें भरतके साथ पूरा उद्योग किया है और ऐसा करके अपने महान् प्रेम तथा परम सौहार्दका परिचय दिया है ॥ १७ ॥

तद् भवानद्य काशेय पुरीं वाराणसीं व्रज।
रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम् ॥ १८ ॥

'काशिराज! अब आप सुन्दर परकोटों तथा मनोहर फाटकोंसे सुशोभित और अपने ही द्वारा सुरक्षित रमणीय पुरी वाराणसीको पधारिये' ॥ १८ ॥

एतावदुक्त्वा चोत्थाय काकुत्स्थः परमासनात्।
पर्यष्वजत धर्मात्मा निरन्तरमुरोगतम् ॥ १९ ॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामने पुनः अपने उत्तम आसनसे उठकर प्रतर्दनको छातीसे लगा उनका गाढ़ आलिङ्गन किया ॥ १९ ॥

विसर्जयामास तदा कौसल्याप्रीतिवर्धनः।
राघवेण कृतानुज्ञः काशेयो ह्यकुतोभयः ॥ २० ॥
वाराणसीं ययौ तूर्णं राघवेण विसर्जितः।

इस प्रकार कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामने उस समय काशिराजको विदा किया। श्रीरघुनाथजीकी अनुमति पाकर उनसे विदा ले निर्भय काशिराज तत्काल वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये ॥ २० ½ ॥

विसृज्य तं काशिपतिं त्रिशतं पृथिवीपतीन् ॥ २१ ॥
प्रहसन् राघवो वाक्यमुवाच मधुराक्षरम्।

काशिराजको विदा करके श्रीरघुनाथजी हँसते हुए अन्य तीन सौ भूपालोंसे मधुर वाणीमें बोले— ॥ २१ ½ ॥

भवतां प्रीतिरव्यग्रा तेजसा परिरक्षिता ॥ २२ ॥
धर्मश्च नियतो नित्यं सत्यं च भवतां सदा।